* श्री विमलनाथाय नमः *

श्री विमलनाथ पुराण

(भाषा टीका)

मूल लेखक—ब्रह्म० श्रीकृष्णदासजी महाराज। अनुवादक—पं० गजाधरलालजी शास्त्री,

प्रकाशक—दुलीचन्द परवार, मालिक—जिनवाणी प्रचारक कार्य्यालय ने

[illegible] जिनवाणी प्रेस १६१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता में

छापकर प्रकाशित किया।

दीपावली
वीर सं० २४६२

चम्पाशतक

(कवयित्री चम्पादेवी रचित)

साहित्य शोध विभाग
दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीरजी, जयपुर

ओंनमः सिद्धेभ्यः ।

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः । कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका । मुनिभिरुपासिततीर्थी सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

परमगुरुवे नमः परम्पराचार्यश्रीगुरुवे नमः ।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म्मसंबन्धकं भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्रीविमल-पुराणनामधेयं, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारतामासाद्य श्रीब्र०कृष्णदासजी विरचितम् ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी । मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोस्तु मंगलम् ॥

वक्तारः श्रोतारश्च सावधानतया श्रृणवन्तु ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
महाराज श्रेणिकके चरित्रका विस्तारसे वर्णन	१
भगवान विमलनाथके पूर्णभवके जीव राजा पद्मसेनके सहस्रारेंद्र भवकी विभूतिका वर्णन	५७
भगवान विमलनाथका जन्म और उनके जन्म कल्याणके उत्सवका वर्णन … …	७०
भगवान विमलनाथकी दीक्षा प्रतिनारायण मधुनारायण स्वयंभू और वलभद्र धर्मकी विभूतिका वर्णन भगवान विमलनाथके समसरणमें मेरु और मन्दिरनामके राजकुमारोंका आगमनका और भगवान विमलनाथके उपदेशका वर्णन … … …	८३
मुनिराज वैजयन्त संजन्त और जयन्तका दीक्षा ग्रहण संजयन्तको घोर उपसर्ग और और मोक्ष प्राप्ति जयंतका धरणेंद्र होना और आदित्याभदेवके साथ समागम इत्यादि वर्णन	१२७
राजा सिंहसेनके जीव श्रीधर देवकी विभूतिका वर्णन … … …	१४७
रानी रामदत्ताके जीव रत्नमाला और अच्युत देव पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध और अच्युत देव एवं सिंहसेनके जीव वज्रायुधका सर्वार्थसिद्धि गमन आदि वर्णन … …	१६६
मेरु और मन्दिर नामके राजपुत्रोंकी दीक्षा ग्रहण और भगवान विमलनाथका निर्वाण गमन वर्णन … … …	१[illegible]
मेरु मंदिरका ध्यान और उपसर्ग एवं उनका निर्वाण कल्याण आदि वर्णन प्रशस्ति	[illegible]१

श्रीबृहद् विमलनाथपुराण

ग्रन्थकारका मंगलाचरण

सर्वेशं शंकरं सिद्धं वृषीयांसं प्रजापतिं । समीडकेऽहकं सिद्ध्यै लेखेशादीडितं जिनं ॥१॥

भाषाकारका मंगलाचरण

वंदौं विमल जिनेशपद शांतिसुधारसपान । हर्ता भवदुखके विमल सुखमय मोक्षनिदान ॥१॥

जो आदीश्वर भगवान सर्वेश—संसारवर्ती समस्त जीवोंके स्वामी हैं। शंकर—समस्त संसारका कल्याण
करनेवाले हैं। सिद्ध—ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंसे रहित सिद्ध परमात्मा हैं। प्रजापति युगके आदिमें असि
मषि ऋषि आदिकी सृष्टिका विधान बतलानेके कारण ब्रह्मा स्वरूप हैं एवं जिनकी स्तुति बड़े बड़े देवोंके इन्द्र
भी करते हैं उन जिनेंद्र भगवान आदिनाथको मैं (ग्रन्थकार) इस ग्रन्थके आदिमें मस्तक झुकाकर नमस्कार
करता हूं॥ १ ॥ भगवान आदिनाथके सिवाय अजितनाथ आदि अन्य तिर्थंकरोंको भी मैं सादर नमस्कार करत
हूं जो कि ज्ञानके सूर्यस्वरूप हैं एवं कर्मरूपी वैरियोंका सर्वथा नाशकर मोक्षरूपी साम्राज्यके स्वामी हैं ॥ २ ।
तेरहवें तिर्थंकर भगवान विमलनाथको भी मैं नमस्कार करता हूं जो विमलनाथ भगवान समस्त कर्मरूपी मलों
रहित होनेके कारण विमल हैं। विमलज्ञान—केवलज्ञानसे शोभायमान हैं एवं जिस प्रकार धूलिसे व्याप्त पृथ्वी
तलको मेघ शांत कर देता है उसी प्रकार मिथ्याज्ञानसे परिपूर्ण समस्त जगतको शांति प्रदान करते हैं—समस्त
जगतके मिथ्याज्ञानको नष्ट करनेवाले हैं ॥३॥ अर्हंत सिद्ध आचार्य आदि पांचों परमेष्ठियोंके गुणोंकी भी मै स्तु

करता हूं क्योंकि ये पांचों परमेष्ठियोंके गुण अहिंसा आदि पांचों पापोंके नाश करनेवाले हैं एवं सम्यग्ज्ञान आदि गुण स्वरूप मुक्तामयी भूषण हैं अर्थात् जिस प्रकार सुन्दर मोतियोंके बने भूषण शरीरकी शोभा बढ़ानेवाले होते हैं उसी प्रकार परमेष्ठियोंके गुण भी आत्माको आदर्श बनानेवाले भूषण हैं ॥४॥ मैं उस सरस्वती देवीको भी अपने कल्याणकी इच्छासे नमस्कार करता हूँ जो कि महा मनोज्ञ शोभासे परिपूर्ण है। सुवर्णके समान कांतिकी धारक है। समस्त जगतकी माता है। हंसकी जिसकी सवारी है और भगवान ऋषभ देवके मुखसे जिसका उदय हुआ है ॥५॥ जो महानुभाव आचारांग आदि बारह अंगोंके पारगामी हैं। ध्यानमें लीन हैं। मोक्षमार्ग प्रदान करनेवाले हैं और समस्त संसारको अपने वशमें करनेवाले दुष्ट कामदेवके जीतनेवाले हैं उनको भी मैं अपने चित्तमें पूर्ण भक्ति रखता हूँ ॥६॥ मैं विद्याधरोंके समान गुरुओंको भी नमस्कार करता हूँ क्योंकि जिस प्रकार विद्याधरगण आकाशमें गमन करनेवाले हैं उसी प्रकार गुरुगण भी विशिष्ट सामर्थ्यसे तपे गये तपके द्वारा आकाशगामिनी ऋद्धिकी प्राप्तिसे आकाशमें गमन करनेवाले होते हैं। जिस प्रकार विद्याधरगण गम्भीरता धीरता आदि गुणोंके धारक होते हैं उसी प्रकार गुरुगण भी गम्भीरता धीरता आदि गुणोंकी खान होते हैं। जिस प्रकार विद्याधरगण 'चित्विषः,। चित-विद्याओंसे देदीप्यमान रहते हैं। उसी प्रकार गुरुगण भी ज्ञान आदि गुणोंसे जाज्वल्यमान रहते हैं। जिस प्रकार विद्याधरगण 'रामसेनान्' सीताहरणके समय रावणसे युद्धके समय रामचन्द्रके सेनास्वरूप हुये थे उसी प्रकार 'रमंते योगिनोऽस्मिन्निति रामः' अर्थात् जिनके ध्यानमें मुनिगण आनंद का आस्वादन करैं वे राम-सिद्धपरमेष्ठी कहे जाते हैं। उन सिद्ध परमेष्ठीकी निर्ग्रन्थ गुरुगण सेनास्वरूप हैं क्योंकि मुख्यरूपसे सिद्धपरमेष्ठीको ही उन्होंने अपना पूर्णस्वामी समझ रक्खा है। जिस प्रकार विद्याधरगण 'महाविद्यान्' अनेक महाविद्याओंके धारक होते हैं उसी प्रकार गुरुगण भी महाज्ञानके धारक हैं। जिस प्रकार विद्याधरगण 'कीर्त्या रामयशोधरान्' कीर्तिके साथ रामचन्द्रके यशको ग्रहन करनेवाले थे अर्थात् समान जातीय और अपना स्वामी होनेपर भी वे रावणके विजय होनेपर उसकी कीर्तिसे अपनी कीर्ति नहीं समझते थे क्योंकि उसने पर स्त्रीहरणरूप पातक किया था किन्तु वे रामचन्द्रके विजय करनेपर जो उनकी कीर्ति संसारमें फैली थी उससे अपनी कीर्ति समझते थे उसी प्रकार गुरुगण भी सिद्धोंके यश-स्वरूपकी कीर्ति पूर्वक धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् उनके निष्कलङ्क स्वरूपका ध्यान करना ही अपना पूर्ण कर्तव्य समझते हैं। इन विशिष्ट शक्तिके धारक गुरुओंके सिवाय और भी ज्ञानी पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी महात्मा विशेष रूपसे हुए हैं उन्हें भी मैं

[इ]स ग्रन्थके प्रारम्भमें भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥७-८॥ महान बुद्धिके धारक जिनसेन आदि पूर्व आचार्योंने

इस ग्रन्थके प्रारम्भमें भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥७-८॥ महान बुद्धिके धारक जिनसेन आदि पूर्व ...
जिस रूपसे भगवान बिमलनाथके चरित्रका उल्लेख किया है ठीक उसीके अनुसार मैं भगवान बिमलनाथके
पुराणके कहनेका इच्छुक हूँ अर्थात् मैं जो इस पुराणको कह रहा हूँ वह स्वतन्त्ररूपसे अपना मन गढ़न्त नहीं
कह रहा हूँ किन्तु भगवान जिनसेन आदिके वचनोंके अनुसार कह रहा हूँ ॥९॥ ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रगट
करते हुए कहते हैं कि कहां तो यह भगवान विमलनाथका महागम्भीर पुराण और कहां मेरी अत्यन्त अल्प
बुद्धि। तथा कहां तो जिनसेन सरीखे पुराण पारीण कवि और कहां मैं अत्यन्त तुच्छ, तथापि महाबुद्धिरूपी
तरंगोंकी मालासे व्याप्त शास्त्रपारंगत आचार्यरूपी समुद्रोंके सामने मैं गामठ सरीखा हूँ अर्थात् गामठका अर्थ
प्रकारणसे यहांपर खाई है तो जिस प्रकार खाईका जल खास समुद्रका ही जल होता है परन्तु वह समुद्ररूपसे
नहीं होता उसी प्रकार मैं भगवान जिनसेन आदिके सामने तुच्छ हूँ तथापि उनकी महाबुद्धिके द्वारा मुखसे
निकले बचन मेरे हृदयमें भी विद्यमान हैं इसलिये इस पुराणमें जिन बचनोंका मैंने उल्लेख किया है वे बचन
भगवान जिनसेन आदिके ही बचन मानकर प्रमाणिक समझना चाहिये इस रूपसे यह बात ठीक हैं कि मैं भग
वान जिनसेन आदिके सामने तुच्छबुद्धिका धारक हूं तथापि मेरे मनमें जो चरित्र विद्यमान है उसे मैं अपनी
थोड़ीसी बुद्धिसे भी वर्णन करनेका विशेष आकांक्षी हूं यहांपर यह कल्पना न कर बैठना चाहिये कि जब जिन-
सेन आदि सरीखे उद्भट विद्वान हैं तब तुम्हारी आवश्यकता क्या है ? क्योंकि जहांपर सूर्यका प्रवेश नहीं होता
वहांपर दीपकसे भी काम चला लिया जाता है अर्थात् जो महानुभाव जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वानोंके
गंभीर बचनोंका तात्पर्य नहीं समझ सकते वे मेरे साधारण बचनोंसे अर्थलाभ कर सकते हैं। इसलिये मेरे द्वारा
किये गये पुराणका वर्णन व्यर्थ नहीं।१०।११। फिर भी यह बात है कि मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे कुछ कहूँ
तब तो वह कल्पना भगवान जिनसेन आदिकी कल्पनाके सामने फीकी मानी जा सकती है क्योंकि उनकी बुद्धि
विशाल है और मेरी तुच्छ है परन्तु सो तो बात है नहीं किन्तु मुझसे महान और उत्कृष्ट पूर्व आचार्योंने जो
कहा है क्रमसे मैं उसीको कहता हूँ। यहां पर भी यह न समझ बैठना चाहिये कि जब तुम्हारी बुद्धि तुच्छ है
तब बिमलनाथ पुराण सरीखे विशाल कार्यमें तुम्हारा प्रवृत्त होना व्यर्थ है क्योंकि लोकमें ऐसी कहावत है कि
अगस्त नामका ऋषि मामूली था परन्तु वह सारे समुद्रको पी गया था इसलिये क्षुद्र अगस्त ऋषिने जब
विशाल समुद्रको पी डाला था तब अल्प बुद्धिका धारक मैं भी विशाल पुराणका वर्णन कर सकता हूँ क्या

आश्चर्य है ? ॥१२॥ बहुतसे लोग स्तुति करनेवालोंको अच्छा समझते हैं और निन्दा करनेवालोंको बुरा समझते हैं परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि यह बात मुझे पसन्द नहीं मैं तो यह कहता हूं कि स्तुतिके करनेवाले सज्जन भी संसारके अन्दर वृद्धिको प्राप्त हों और निन्दाके करनेवाले भी विशेष रूपसे वृद्धिको प्राप्त हों क्योंकि उनके भयसे कविकी विशुद्धता बढ़ती है। दुर्जन जितने जितने दोष निकालते जायंगे कविता भी उतनी ही उतनी शुद्ध होती चली जायगी ॥१३॥ अथवा सज्जन और दुर्जनोंके सामने संसारमें हंसी करानेवाली इस व्यर्थ प्रार्थनासे भी क्या प्रयोजन क्योंकि यदि कविके अन्दर गुण होगा तो जिस प्रकार कमलकी सुगंधि पवनके द्वारा चारों ओर फैल जाती है उसी प्रकार उस गुणके द्वारा कवित्वकी शक्तिकी प्रशंसा भी चारों ओर फैल जायगी ॥१४॥ ग्रन्थकार अपने पवित्र भाव झलकाते हुये कहते हैं कि—मैं भगवान ऋषभ देवके चरण कमलोंका भ्रमर बन इस भगवान विमलनाथके पुराणको बड़े आदरसे कह रहा हूँ यह पुराण मामूली पुराण नहीं किन्तु इसके अन्दर बहुतसे भव्य जीवोंकी कथा और उपकथाओंका वर्णन है। धर्म नामके बलभद्र स्वयंभू नामके नारायणके पवित्र चरित्रका कथन है इसलिये उनके निमित्तसे यह पुराण समुद्रके समान गम्भीर है अतः मनको स्थिर करने पर ही हर एक विषय का पठन पाठन, हित करनेवाला होगा ॥१५॥१६॥

मध्यलोकके असंख्याते द्वीपोंके मध्यभागमें एक जम्बूद्वीप नामका प्रसिद्ध द्वीप है जो कि साक्षात् राजाके समान शोभनीक जान पड़ता है क्योंकि राजा जिस प्रकार विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान रहता है उसी प्रकार यह जम्बूद्वीप भी कुलाचल रूपी विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान है। राजा जिस प्रकार अनेक सुभटोंसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह जम्बूद्वीप भी भोगभूमि रूपी सुभटोंसे व्याप्त है। जिस प्रकार राजा अनेक स्त्रियोंसे सेवित होता है उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी गंगा सिन्धु आदि अनेक नदी रूपी स्त्रियोंसे सेवित है। राजा जिस प्रकार गर्जनासे परिपूर्ण किन्तु मधुर बोलनेवाला होता है। जम्बूद्वीप भी पद्म महापद्म आदि सरोवरोंके मनोज्ञ शब्दोंसे मधुर बोलनेवाला है। राजाके जिस प्रकार नेत्र होते हैं जम्बूद्वीपके भी सूर्य चन्द्रमारूपी नेत्र विद्यमान हैं। राजा जिस प्रकार आभरण-भूषणोंसे शोभायमान रहता है। उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी तारा रूपी भूषणोंसे शोभायमान है। राजाके जिस प्रकार पैर होते हैं जम्बूद्वीपके भी खगाचल विजयार्धपर्वत रूपी पैर मौजूद है। राजा जिस प्रकार पद्मराग आदि भूषणोंकी कांतिसे देदीप्यमान रहता है जम्बूद्वीप भी खानियोंमें विद्यमान पद्मराग आदि मणियोंकी कांतिसे व्याप्त हैं। राजा जिस प्रकार अस्त्रशस्त्रोंका धारक होता है जम्बूद्वीपके भी

जम्बूवृक्ष और शाल्मालिवृक्षरूपी शस्त्र विद्यमान है। राजाके जिस प्रकार हाथियोंके चीत्कार होते रहते हैं उसी
भी लवणोदधि समुद्रसे चारों ओरसे वेष्टित है। राजाके जिस प्रकार हाथियोंके कोलाहलोंके वेग ही प्रशस्त गजोंके चीत्कार
प्रकार जम्बूद्वीपके भी अनेक पत्तनोंमें रहने वाले प्राणियोंके कोलाहलोंके वेग ही प्रशस्त गजोंके चीत्कार
हैं। तथा यह जंबूद्वीप पवित्र एक लाख योजन चौड़ा है। विदेह क्षेत्र आदि क्षेत्र रूपी विशाल हृदयका
धारक है एवं चित्तको अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसी जम्बूद्वीपके ठीक मध्य-
भागमें एक सुमेरु नामका पर्वत है जो कि एक लाख योजन प्रमाण ऊंचा है। अपनी शोभासे अपने समीप-
वर्ती स्थानको शोभायमान करने वाला है। त्रेसठ हजार योजनोंके इर्द गिर्दमें विद्यमान है। विचित्र कान्तिका
धारक है। सुवर्णमयी खोल स्वरूप है। अनेक चैत्यालयोंसे व्याप्त है एवं नन्दनवन सौमनस आदि बनोंसे
रमणीक है ॥ २२ ॥ २३ ॥ मेरुपर्वतके दक्षिण दिशामें भरत क्षेत्र है जो कि खगाचलों (पर्वतों) के समूहसे
धनुषके समान आकारवाला शोभायमान जान पड़ता है ॥ २४ ॥ इस भरत क्षेत्रके अन्दर एक आर्य नामका
महाखण्ड है जो कि बत्तीस विशाल देशोंका धारक है देवेन्द्र और मनुष्योंको अनेक प्रकारके आश्चर्योंका
करनेवाला है ॥ २५ ॥ भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध नामका प्रसिद्ध देश हैं जो कि मनुष्योंकी अभिलाषा
पूरण करनेके लिये चिन्तामणि रत्नके समान है एवं हारके मध्यभागमें जिस प्रकार हीरा रत्न मनुष्योंके
चित्तको रंजायमान करनेवाला होता है उसी प्रकार भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध देश भी मनुष्योंके चित्तको
आनन्द प्रदान करनेवाला है ॥ २६ ॥ यह मगध देश घोष मटंब कर्वटोंसे अनेक प्रकारके वाहनोंसे बड़े बड़े
गांवोंसे और बड़े बड़े शहरोंसे व्याप्त है एवं अनेक प्रकारकी मनोज्ञ २ चीजोंका खजाना है ॥ २७ ॥ इस
देशके अन्दर बड़ी बड़ी विशाल नदियां हैं जो कि निर्मल जल और महा मनोहर कमलोंसे शोभायमान हैं एवं
राजहँस चकोर और सारस (स्याल) आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंसे शब्दायमान हैं ॥ २८ ॥ इसी देशमें
एक गांवसे उड़कर कुक्कुट दूसरे गांवमें जा सकें इस रूपसे बिलकुल पास पासमें बसे हुये गांव हैं और उसके
तालाव प्रपा (प्याऊ) पांथिकोंके मनको सन्तुष्ट करनेवाले महामनोहर जान पड़ते हैं ॥ २९ ॥ इस मगध देशके
अन्दर महामनोज्ञ सीधे वृक्षोंकी पंक्तियां विद्यमान हैं जो कि नाना प्रकारकी लताओंसे व्याप्त हैं। घूमते हुए
भौंरोंकी मधुर भुनभुनाहटसे चित्तको हरण करनेवाली हैं एवं कोकिलाओंकी मीठी मीठी ध्वनियोंसे शोभायमान
हैं ॥३०॥ इस देशके धनी मनुष्य स्वभावसे ही दानी हैं—आहार आदि किसी भी दानका अवसर देख कभी

भी उससे मुंह मोड़नेवाले नहीं। अत्यन्त धर्मात्मा हैं सदा सत्य बोलनेवाले हैं एवं मोक्षलक्ष्मीकी अभिलाषासे सदा ध्यानी और ज्ञानी हैं ॥ ३१ ॥

इसी मगध देशके अन्दर एक राजगृह नामका नगर है जो कि परम पवित्र और उत्कृष्ट है, सदा अनेक प्रकार की ध्वजाओंसे शोभायमान रहता है अतएव अपनी दिव्य शोभासे यह इन्द्रकी राजधानी स्वर्गलोककी उपमा धारण करता है ॥३२॥ उस समय यह नगर अनेक प्रकारके धान्योंसे व्याप्त था। इसमें रहने वाले मनुष्य परम धर्मात्मा थे। नाना प्रकारके कार्य और कौशलोंके पारगामी थे एवं प्रत्येक कामके करनेमें बड़े उत्साही थे इसी-लिये वे राजगृहपुरको शोभा स्वरूप थे ॥३३॥ राजगृहपुरके अन्दर रहनेवाली सुन्दरियां भी कामदेवसे देदीप्य-मान अङ्गकी धारक थीं। हरणियोंके समान नेत्रोंवाली थीं। कोकिलाओंके समान सुरीली थीं। विशाल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थीं। मन्द मन्द चलनेवाली थीं। अत्यन्त शीलवती थीं। अपने कान्ति परिपूर्ण मुखरूपी चन्द्रमाओंसे अपने महलोंको प्रकाशमान करती थीं। दान पूजा आदि जितने भी पवित्र कार्य हैं उसमें लीन थीं। वे जितनी भी क्रियायें करतीं थीं व्रत और आचारके अनुकूल करती थीं इसलिये उनकी सारी क्रियायें निर्दोष होनेसे अत्यंत मनोहर होतीं थीं तथा राजगृहपुरमें नर नारियोंका इतना जमघट था कि वहांकी नारियां आने जानेसे तथा स्तन और आलिङ्गनोंके संघर्षणोंसे कामियोंके हृदयोंमें काम जनित दाह उत्पन्न कर देतीं थीं। अतएव वे मनको हरण करनेवाली होतीं थीं ॥३४—३६॥

इस प्रकारके महामनोहर राजगृह नगरका रक्षण करनेवाला राजा उपश्रेणिक था जो कि रजनीश—चन्द्रमा-के समान महामनोहर था। चन्द्रमा जिस प्रकार कुवलय—रात्रिविकासी कमलोंको आनन्द प्रदान करनेवाला होता है उसी प्रकार वह राजा भी कुवलय—पृथ्वी मण्डलको आनन्द प्रदान करनेवाला था। चन्द्रमा जिस प्रकार चकोर जातिके पक्षियोंको आनन्द प्रदान करता है उसी प्रकार वह राजा भी लोकरूपी चकोर पक्षियोंको आनन्द प्रदान करनेवाला था। वह महानुभाव राजा बैलके समान उन्नत स्कन्धोंका धारक था। प्रतापी था। समस्त शत्रुओंका जीतना खेल समझता था। विशाल भुजाओंका धारक था। सुभट था। सुन्दरतामें दूसरा कामदेव सरीखा था। दानी धर्म्मात्मा गुणवान और ज्ञानवान था। उत्तम क्रियाओंके करनेमें पूरा घमण्ड रखता था। महान धीर और वीर था। फूली हुई गर्दनसे युक्त था। कमलोंके समान शोभायमान हाथ तथा चक्र मच्छी और जौके चिन्होंसे शोभायमान पैरोंका धारक था ॥३७—३६॥

विमल०

महातेजस्वी राजा उपश्रेणिककी पटरानीका नाम इन्द्राणी था ...
प्रदान करनेवाली थी। कामदेवकी प्रिया रतिको भी अपनी शोभासे नीचा दिखाने वाली थी। चन्द्रमाके समान
मुखसे शोभायमान थी। हरिणीके समान विशाल नेत्रवाली थी। राजाको अपने जीवसे भी अधिक प्यारी थी
एवं अपनी अनुपम सुन्दरतासे इन्द्रकी प्यारी दूसरी इन्द्राणी सरीखो थी। उस महारानी इन्द्राणीकी काली
लम्बी चिकनी वेणी (चोटी) काली नागिनी सरीखो थी और वह मुखरूपी चन्द्रमासे अमृत पीनेकी अभिलाषा-
से उसके मस्तकपर विद्यमान ऐसी जान पड़ती थी उस महारानीका ललाट भाग आधे चन्द्रमाके समान शोभा-
यमान था क्योंकि चन्द्रमा जिस प्रकार हिरणके चिह्नका धारक माना जाता है, उसी प्रकार ललाट भी नेत्ररूपी
हिरणोंका धारक था। चन्द्रमा जिस प्रकार मण्डलके बीचमें (पारसेमें) रहता है ललाट भी उसी प्रकार सुवर्ण-
मयी कुण्डलरूपी चक्रके अर्ध भागमें था। इस प्रकार अपने मनोहर रूपसे कामदेवके समान वह राजा प्रीतिपूर्वक
उस रानी इंद्राणीके साथ जुदी जुदी ऋतुओंके नाना प्रकारके भोग भोगता था एवं हास्य नाना प्रकारकी क्रीड़ाओं
और विनोदोंसे वह भोगोंकी सुन्दरताका अनुभव करता था ॥४०—४४॥

महाराज उपश्रेणिकके महाराणी इन्द्राणीसे उत्पन्न पुत्र श्रेणिक था। वह कुमार श्रेणिक उत्तमोत्तम राजलक्ष-
णोंसे मण्डित था। उत्कृष्ट था और अपने मनोहर रूपसे कामदेवकी तुलना करना ॥ ४५ ॥ कुमार श्रेणिकके
सिवाय राजा उपश्रेणिकके और भी पाँच सौ पुत्र थे जिनके साथ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ वह
राजा सुखपूर्वक काल व्यतीत करता था ॥ ४६ ॥

इसी पृथ्वीपर एक चन्द्रपुर नामका नगर है। चन्द्रपुर नगरका स्वामी उस समय राजा सोमशर्मा था जो
कि अत्यन्त पराक्रमी और प्रसिद्ध था। राजा उपश्रेणिककी आज्ञा यद्यपि शुभ थी तथापि वह सोमशर्मा उनकी
आज्ञा मानना नहीं चाहता था ॥४७॥ राजा उपश्रेणिकको यह बात पसन्द न थी इसलिये शीघ्र ही उन्होंने एक
आज्ञापत्र लिखवाया। दूत बुलाकर उसे सौंपा एवं शीघ्रही उसे राजा सोमशर्माके पास भेज दिया ॥४८॥ दूत
का नाम मतिसागर था। राजाकी आज्ञासे वह चन्द्रपुरकी ओर चल दिया। सभामें पहुंचकर राजाको नमस्कार
कर और पत्र देकर अपने योग्य स्थानपर बैठ गया। पत्र पाकर राजा सोमशर्माने कहा—अरे दूत! कहांसे तु
आया और किसका यह पत्र लाया हैं? उत्तरमें दूतने कहा—राजन्! राजगृहके स्वामी प्रसिद्ध राजा हालमें
उपश्रेणिक हैं उन्होंने ही यह पत्र आपके लिये भेजा है। दूतके मुखसे यह वचन सुन राजा सोमशर्माने पत्र

ले लिया और उसे अपने मन्त्रीको बांचनेको दे दिया वह भी स्वस्ति और लक्ष्मीको प्रदान करनेवाले महामनोहर
सिरनामेंपर लिखे हुये भगवान ऋषभदेवके वाचक शब्दोंको-अर्थात् सिरनामेंको छोड़कर जो कुछ भी उसमें
आज्ञा लिखी थी इस प्रकार उसे बांचने लगा—

चन्द्रपुरीमें उनके स्वामी राजा सोमशर्माके कल्याणकी अभिलाषासे राजगृहपुरसे श्रीमान् महाराजा उपश्रे-
णिक यह आज्ञा प्रदान करते हैं कि समस्त बड़े बड़े सामन्त और राजा विनयपूर्वक मेरी आज्ञाका पालन करते
हैं उनके सामने तुम बहुत क्षुद्र राजा हो परन्तु अहंकारके पुतले होकर मेरी आज्ञा स्वीकार नहीं करते, ये
सर्वथा अनुचित है। आजतक जो हुआ सो हुआ परन्तु अबसे तुम्हारे लिये मेरी यह आज्ञा है कि यदि तुम्हें
राज करनेकी इच्छा है तो तुम यहांपर आओ और मेरी सेवा करो। बस पत्रके लेखको इस प्रकार सुनकर और
उसका भीतरी तात्पर्य समझ कर दूतको तो विदा कर दिया एवं "राजा उपश्रेणिक जिस उपायसे प्राण रहित
हो जायं वह उपाय मुझे करना चाहिये" ऐसा अपने चित्तमें विचार करने लगा। थोड़ी देर विचार करनेके बाद
उसने एक मायामयी घोड़ा तैयार किया जो कि अशिक्षित और दुष्ट था एवं उस घोड़ेको तथा और भी मुक्ता
फल आदि मनोहर चीजोंको राजा उपश्रेणिककी सेवामें भेंट स्वरूप भेज दिया ॥४६—५६॥ राजा शोमशर्माकी
भेजी हुई भेंट जिस समय महाराज उपश्रेणिकने देखी वे अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए। भेंटकी चीजोंमें सब
से उत्तम घोड़ा उन्हें जान पड़ा इसलिये उसके अच्छे बुरेकी परीक्षा करनेके लिये वे शीघ्र ही उसपर सवार हो
लिये और उत्तम क्रीड़ाके स्थानक वनकी ओर चल दिये। वह दुष्ट घोड़ा सर्वथा अशिक्षित था चित्तमें दुष्ट
अभिप्राय धारण किये था। बस जिस समय वह वनके अन्दर पहुंचा शीघ्रही उसने किसी भयंकर गढ़ेमें महाराज
राजा उपश्रेणिकको डाल दिया और तत्काल कहीं चला गया ठीक ही है भाग्यकी महिमा दुर्निरीक्ष्य है—क्यासे
क्या होगा, यह सूझ नहीं पड़ता ॥५६—५८॥ महाराज उपश्रेणिकके इस प्रकार लापता हो जानेपर उनके
श्रेणिक आदि पुत्रोंको बड़ा दुःख हुआ। अपने पूज्य पिताको वे इधर उधर खोजने लगे जब कहीं भी उनका
पता न लगा तो वे समस्त पुत्र लौटकर अपने राजमहलको चले आये ॥५९॥ अचानक ही महाराजके लापता हो
जानेपर महारानी इन्द्राणी विलाप करती करती जमीनपर गिर गई। दयाजनक रोने लगी। हार आदि भूषण
तोड़कर फैंक दिये। चोटीके बाल बिखर गये एवं इस प्रकार कहने लगी—हा स्वामी ! मुझ अभागिनीको छोड़
कर आप कहां चले गये। हा प्राणप्यारे देव ! मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिसका फल यह हुआ कि

मुझे आपसे जुदा होना पड़ा ॥ ६१ ॥ हाय क्या मैंने मुनियोंकी निन्दा की थी वा कंद मूल आदिका भक्षण किया था अथवा धर्मवाक्योंका उलंघन किया जिससे तीव्र पापका बंध होकर मुझे यह दुःख भोगना पड़ा ॥६२॥ राजा उपश्रेणिकके कुटुम्बी जन तो इधर इस प्रकार दुःख मान रहे थे उधर जिस गढ़ेमें घोड़ेने उन्हें ले जाकर डाला था वह गढ़ा नरकसे भी अधिक दुर्गन्धमय था इसलिये उन्हें बड़ी व्यथा होने लगी। उन्हें उस समय सिवाय परमात्माके शरणके अन्य किसीका भी शरण न सूझ पड़ा इसलिये वे उन्हींके नामका जप वहां बैठकर करने लगे ॥ ६३ ॥ जिस बनके गढ़ेमें महाराज उपश्रेणिक पड़े थे उसी बनमें एक वैवच्छ (स्थ) वास नामकी भीलोंकी पल्ली थी। उस पल्लीका स्वामी यम (यमदण्ड) नामका भीलोंका राजा था जो कि क्षत्रिय जातिका था और सदा वहींपर रहता था। राजा यमदण्डकी स्त्रीका नाम विद्युन्माली था। उससे उत्पन्न एक परम सुन्दरी कन्या थी जिसका शुभ नाम तिलका (तिलकवती) था क्रीड़ाका प्रेमी वह भिल्लराज यमदण्ड उस गढ़े में शोचनीय अवस्थामें पड़े राजा उपश्रेणिकको उसने देखा। प्रसिद्ध महाराजको इस प्रकार बुरी हालतमें देख वह विचारने लगा कि देखो कर्मकी विचित्रता, कहां तो यह राजगृहपुरका स्वामी उपश्रेणिक और कहां इसकी यह दुःखमय शोचनीय अवस्था! बस वह शीघ्र ही राजाके बिलकुल पास पहुंच गया एवं मनोहर शरीरका धारक वह मीठे प्यारे शब्दोंमें कुशल पूछने लगा। महाराज उपश्रेणिकने भी जो बात जिस तरह बीती थी सारी कह सुनाई। रंचमात्र भी न छिपाई क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है—किस समय नीचेसे ऊंचापन और ऊंचेसे नीचापन होगा किसीको जान नहीं पड़ता। अन्तमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रिय महानुभाव! तुम कौन हो और तुम्हारा निवासस्थान कहां है? उत्तरमें भिल्लराज यमदण्डने कहा—राजन्! जिस समय मेरा राज्य मेरे हाथसे चला गया और मैं राज्यरहित हो गया तबसे मैं इसी बनमें आ गया हूँ और यहीं पर रहने लगा हूँ। भयंकर गढ़ेमें गिरनेसे आपका शरीर पीड़ायुक्त हो गया है कृपाकर इस पीड़ाकी निवृत्तिके लिये आप मेरे घरपर चलें। भिल्लराजकी प्रार्थना राजा उपश्रेणिकने मंजूर कर ली। वे उसके साथ चले आये। घरमें आकर जिस समय उन्होंने यमदण्डका आचार भीलों सरीखा देखा उन्हें वह सहन न हो सका इसलिये शीघ्र ही उन्होंने यमदण्डसे कहा—भाई यमदण्ड! तुम्हारा घर स्वाचार—श्रावककी क्रियाओंसे रहित है मैं तुम्हारे घरमें भोजन नहीं कर सकता। उत्तरमें यमदण्डने कहा—कृपानाथ! यदि यही बात है तो आप मेरी बात सुनें—मेरे एक तिलकवती नामकी पुत्री है। सामुद्रिक शास्त्रमें कहे गये शुभ लक्ष-

णोंसे युक्त है। श्रावकोंके घरमें जैसी भोजन क्रिया प्रचलित है वैसा ही भोजन बना सकती है इसलिये भक्ति पूर्वक वह आपके अनुकूल भोजन बनाकर आपको जिमा सकती है। महाराज उपश्रेणिकने यमदण्डकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली एवं वे उसके हाथका बना महामिष्ट भोजन करने लगे ॥६४—७१॥ वह कन्या तिलकवती परम सुन्दरी थी। उसका सौन्दर्य और गुण देखकर महाराज उपश्रेणिकका चित्त ठिकाने न रहा। वे हृदयसे मोहित हो गये एवं अपने मनोहर दांतोंकी प्रभासे विशाल सभाको शोभायमान करनेवाले वे महाराज उपश्रेणिक भिल्लराज यमदण्डसे कन्या तिलकवतीकी याचना कर बैठे ॥७२॥ राजा यमदण्डने महाराज उपश्रेणिककी जिस समय यह याचना सुनी तो वह उनकी प्रार्थना नामंजूर तो न कर सका क्योंकि महाराज उपश्रेणिक नीति पूर्वक प्रजाके पालन करनेवाले एक महान् राजा थे परन्तु वह अपनी पुत्रीकी कल्याणकी इच्छासे इस प्रकार कहने लगा—

कृपानाथ! आप इस समय एक प्रधान राजा माने जाते हैं और आपके रनिवासमें अगणित सुन्दरियां मौजूद हैं जो कि सुन्दरतामें एकसे एक बढ़ी चढ़ी हैं, सम्भव है उनकी मौजूदगीमें मेरी पुत्री तिलकवतीको सुख चैन न मिले। अथवा पुत्रकी उत्पत्तिसे स्त्रियां विशेष सुख अनुभव करती हैं संभव है इसके पुत्र न हो जिससे भी इसे कष्ट भोगना पड़े। अथवा शुभ भाग्यसे उसके पुत्र भी हो जाय परन्तु अन्य पुत्रोंके विद्यमान रहते वह राजा न बन सके उनका सेवक ही बना रहे ऐसी दशामें भी मेरी पुत्रीको सुख मिलना कठिन है क्योंकि सेवासे जीवनका बिताना निरर्थक समझा जाता है इसलिये पुत्रीके सुखकी अभिलाषासे मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आप यह बात स्वीकार करें कि इस पुत्रीसे जो पुत्र हो वही राज्यका अधिकारी समझा जाय उसके रहते अन्य कोई पुत्र राजा न बनाया जाय तो मुझे आपको पुत्री देनेमें कोई उज्र नहीं, मैं सहर्ष उसे आपको प्रदान कर सकता हूँ। महाराजा उपश्रेणिक तो उस समय कामांध थे ही योग्य अयोग्यका कुछ भी विचार न कर राजा यमदण्डकी बात उन्होंने स्वीकार कर ली। सुन्दरी तिलकवतीके साथ उनका विवाह हो गया। राजा यमदण्डकी सेनासे वेष्टित हो बड़े ठाट बाटसे वे अपने राजधानीकी ओर चल दिये एवं अपनी नगरमें प्रवेश कर गये ॥७३—७६॥ अपने महाराजकी फिरसे प्राप्ति दुर्लभ जान नगर निवासियोंको बड़ा आनन्द हुआ। महाराजकी प्राप्तिकी खुशीमें राजगृह नगर ध्वजा पताका तोरण आदिसे सजा दिया गया एवं समस्त सामन्त मन्त्री आदिने भगवानकी पूजा अभिषेक आदि मंगलीक कार्य किये ॥७७॥ राजमहलमें प्रवेश कर राजा उपश्रेणिक रति

क्रीड़ाके योग्य पर्वत बगीचे और महलोंमें रमणी तिलकवतीके साथ सानन्द भोग भोगने लगे। कभी तो महा-राज उपश्रेणिकने नाना प्रकारके हाव भाव और विलासोंके साथ भोगोंके सुखोंका अनुभव किया एवं कभी कभी वे चुम्बन और आलिङ्गनोंसे भोगोंका रस आस्वादन करने लगे ॥७७ ७८॥ नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें आसक्त उन दोनोंके भोगोंका फलस्वरूप एक पुत्र हुआ जो कि राजलक्षणोंसे युक्त था 'चलाती, इस शुभ नामका धारक था एवं वह पुत्र बाल चन्द्रमाके समान दिन दिन बढ़ने लगा ॥७९॥ कामांध महाराज उपश्रेणिक चिलाती पुत्र को राज्य देनेका वायदा कर चुके थे इसलिये जिस समय कुमार चिलाती युवा हो गया महाराज उपश्रेणिकको चिन्ताने अपना स्थान बना लिया। वे मन ही मन सोचने लगे कि सब पुत्रोंमें कुमार श्रेणिक राज्यके योग्य है इसलिये हक प्राप्त तो राज्य श्रेणिकका ही है परन्तु मैं चिलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुका हूँ ऐसी दशा में क्या करूं ? बहुत कुछ सोच विचारके बाद महाराज उपश्रेणिकने ज्योतिषी बुलाया और उससे इस प्रकार कहने लगे—प्रिय ज्योतिषी ! तुम अनेक प्रकारकी कला और कौशलोंके पारगामी हो कृपाकर बताओ कि मेरे इन समस्त पुत्रोंमें राज्य प्राप्त करने वाला कौन पुत्र होगा ? क्योंकि जो बात लग्न विचार कर देखी जाती है और जो स्वामी भगवान केवली द्वारा देखी जाती है वह शुभजनक अर्थात् ठीक ही निकलती हैं ॥८०—८१॥ वह ज्योतिषी समस्त ज्योतिषियोंमें मुख्य था। महाराज उपश्रेणिकके वैसे वचन सुनकर वह कहने लगा—हे अनेक सामन्तोंके स्वामी राजा ! मैं राज्यकी प्राप्तिके कुछ निमित्तोंका वर्णन करता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

महाराज। राज्यकी प्राप्तिका सबसे पहिला निमित्त यह है कि आप अपने सब पुत्रोंको बुलाइये और उन्हें अपने अपने घर ले जानेके लिये एक एक घड़ा दीजिये जो प्रतापी पुत्र उस घड़ेको अपने शीशपर न रखकर किसी अन्य मनुष्य (चाकर) के शिरपर रखवाकर अपने घर ले जाय, समझ लो राज्य प्राप्त करने वाला वही है और वही बलवान और शत्रुओंको वश करनेवाला है अन्य नहीं ॥८३—८४॥ दूसरा, राज्यकी प्राप्तिका निमित्त यह है कि आप अपने समस्त पुत्रोंको बुलाकर प्रत्येकको एक एक कोरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कीजिये कि हर एक कुमारको ओसके जलसे भरकर घड़ा लाना होगा जो प्रतापी कुमार घड़ेको ओससे भरकर ले आवे समझ लो वही राज्यकी धुरी धारण कर सकता है अन्य नहीं। राज्यकी प्राप्तिका तीसरा निमित्त यह है कि पूआ खीर आदि नाना प्रकारके व्यंजनोंसे महामिष्ट भोजन आप तैयार कराइये। जिस समय भोजन तैयार हो जाय समस्त पुत्रोंको बुलाकर एक पंक्तिमें जीमनेके लिये बिठा दीजिये और पीछेसे उनपर भयंकर

कुत्तोंको छोड़ दीजिये जो प्रतापी पुत्र अपनी उग्र शक्तिसे उन कुत्तोंको हटाकर सानन्द भोजन करता रहेगा समझ लीजिये महाराज ! वही अपने मनोहर रूपसे कामदेवको भी जीतनेवाला कुमार राजा बनेगा अन्य नहीं। राज्य प्राप्तिका चौथा निमित्त यह है कि नगरमें आग लगानेपर जो पुत्र राज्यके मुख्य चिन्ह छत्र चमर और सिंहासनको लेकर भागे बस वही राजा बननेका अधिकारी है अन्य नहीं। तथा राज्य प्राप्तिका पाँचवां निमित्त यह है कि आप खाजे और लड्डुओंसे भरवाकर पिटारोंको रखवा दीजिये और जलसे परिपूर्ण कोरे घड़े जिनपर कि मोहर लगी हो और जिनका मुख वस्त्रसे ढांका हुआ हो रखवा दीजिये जिस समय यह कार्य हो चुके उस समय आप समस्त पुत्रोंको बुलाइये। उन्हें एक एक पिटारा और एक एक जलसे भरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कर दीजिये कि वे पिटारे और घड़ोंका मुख खोले बिना ही खाजे आदि पदार्थ खावें और पानी पीवें। समस्त पुत्रोंमें जो प्रतापी पुत्र यह कार्य करेगा बस वही राजा बनेगा अन्य राज्यका भार नहीं सह सकता। बस राज्यकी प्राप्तिके पांच निमित्त बतलाकर वह ज्योतिषी चुप रह गया ॥८५—९१॥ ज्योतिषीके कहे अनुसार महाराज उपश्रेणिकने भी पूर्वोक्त निमित्तोंसे राज्यकी प्राप्तिके योग्य पुत्रकी परीक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। समस्त परीक्षाओंमें पास कुमारश्रेणिकको ही पाया इसलिये बड़ी भारी चिन्ता उनके हृदयमें प्रविष्ट हो गई एवं वे मन ही मन दुःखित हो इस प्रकार विचारने लगे—

मैं चिलाती पुत्रको राज्य देनेका पहिले संकल्प कर चुका हूँ परन्तु ज्योतिषी द्वारा बतलाये गये निमित्तोंसे राज्यका अधिकारी गुणोंका प्रेमी कुमार श्रेणिक ही सिद्ध होता है ऐसी हालतमें क्या करूं। यदि मैं चलाती पुत्रको राज्य न देकर कुमार श्रेणिकको देता हूं तो मैं पहिले जो वचन दे चुका हूँ वह व्यर्थ होता है एवं बचन-के व्यर्थ होनेपर मेरे जीवनका कोई मूल्य नहीं होता क्योंकि संसारमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जो वचन हार हो गया वह पुण्य आदि सब हो उत्तम गुणोंका हारनेवाला हो गया—वचन हारनेवालेको आत्मामें पुण्य आदि कभी स्थान नहीं पा सकते। इसलिये मुझे क्या करना चाहिये कुछ सूझ नहीं पड़ता ? महाराज उपश्रे-णिकके प्रधान मन्त्रीका नाम सुमति था। वह मन्त्री सुमति गुणोंका समुद्र था। अत्यन्त सभ्य था एवं चिंता-को दूर करनेवाला था अन्तरंग चिन्तासे ग्रस्त महाराज उपश्रेणिकको उसने ताड़ लिया और शान्ति जनक मीठे शब्दोंमें वह उनसे यह कहने लगा—

महाराज ! आपके हाथियोंके समूहके समूह विद्यमान हैं। जोकि मदोन्मत्त हैं। खूब ऊंचे ऊंचे हैं एवं

अपनी सूड़से आकाशको स्पर्श करनेवाले हैं ॥९२—९६॥ आपके बहुतसे घोड़े हींस लगाते हैं जो कि अपनी
चालसे तांडव नाच नाचते हैं और पवनके समान शीघ्रगामी हैं। बड़े बड़े सुभट और योद्धा भी आपके यहां
मौजूद हैं जो कि रणके मैदानमें गर्जनेवाले हैं। आपके रनिवासमें बहुतसी रानियां हैं जो कि हरिणियोंके समान
सुन्दर नेत्रवाली हैं। बुद्धिपूर्वक बड़े प्रेमसे आपकी सेवा करनेवालीं हैं। अपनी सुन्दरतासे चित्त चुरानेवाली
हैं ॥९७--९८॥ देशोंके स्वामी जितने राजा थे वे समस्त आपने जीत लिये जिससे वे आपको मस्तक झुकाकर
नमस्कार करते हैं इस रूपसे जब आपके कोई बातकी कमी नहीं दीख पड़ती फिर नहीं मालूम होता आप किस
चिंतामें भीतर ही भीतर घुले जाते हैं—कौन चिंता आपके पीछे लगी हुई है। बस इतना कहकर जब मन्त्री
सुमति चुप रह गया तब उत्तरमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रियमन्त्री सुमति ! तुमने जो कुछ भी कहा है सब ठीक है परन्तु मेरी बात सुनो—मैं पहिले प्रसन्नता
पूर्वक चिलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुका हूँ परन्तु ज्योतिषीने अपने निमित्त ज्ञानसे राज्य प्राप्तिके
जो भी निमित्त बतलाये हैं उनसे इस विशाल राज्यका अधिकारी श्रेणिक ही सिद्ध होता है बस मेरी सारी
चिन्ताका कारण यही है क्योंकि ऐसा होनेसे मैं वचन हार होता हूँ ॥९९—१०१॥ मन्त्री सुमति बुद्धिमान था।
महाराज उपश्रेणिककी यह आत्मकहानी सुन उसने कहा—महाराज आप सुखपूर्वक रहें, कुमार श्रेणिकको मैं
अभी देशसे बाहिर किये देता हूं। श्रेणिकके चले जानेपर आप चिलाती पुत्रको राज्य देकर अपने वचनकी रक्षा
कर सकते हैं। बस इस प्रकार राजाको प्रसन्न कर मन्त्री सुमति कुमार श्रेणिकके पास गया। पहिले मीठे २
वचनोंमें बात चीत की पीछे कुछ चेहरेपर गौरव लाकर गंभीर वचन बोलने लगा—

कुमार ! राजगृह नगरमें इस समय तुम्हारा रहना उचित नहीं क्योंकि महाराज तुम्हारे ऊपर इस समय
अत्यन्त कुपित हैं। मंत्रीकी यह आश्चर्य भरी बात सुन कुमारने पूछा—महाराजका कोप मेरे ऊपर क्यों है ?
मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज उपश्रेणिकने किसी पुरुषके मुखसे यह निन्दित और क्षुद्र बात सुनी है कि
कुमार श्रेणिकने कुत्तोंका जूठा खाया है, जीमते समय कुत्तोंके आ जानेपर जिस प्रकार और कुमार उठकर
खड़े हो गये वह नहीं उठा था जीमता ही रहा था बस तुम्हारे ऊपर यही राजाके कोपका कारण है। तुम्हें अब
क्षण भर भी यहां नहीं रहना चाहिये क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'राजाका क्रोध महा दुर्गम—भयंकर
होता है। राजाके क्रोधके सामने विद्या ऐश्वर्य व्यापार विशिष्ट भोजन चातुर्य वाद करना और सरस्वतीका

विलास, सबके सब एक ओर किनारा कर जाते हैं—रंचमात्र भी किसीका आदर नहीं होता। मंत्रीकी यह विचित्र बात सुन कुमारने मनोहर वचनोंमें यह उत्तर दिया—

भाई मंत्री ! तुम्हारी बात मुझे युक्ति पूर्ण नहीं जंचती। आश्चर्यकी बात है कि जो अपने भोजनकी रक्षा नहीं कर सकते वे राज्यकी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ? भाई ! सारा संसार यह कह रहा है कि मैंने चतुरता और वीतरागसे भोजन किया है और वास्तवमें मेरा उसी तरह भोजन करना उपयुक्त था परन्तु वल्लभ—अपने प्रिय पुत्रके प्राणोंका हरण करनेवाला महाराजका यह कोप क्यों ? कुमारका यह युक्तिपूर्ण उत्तर सुन विज्ञ मंत्रीसे कुछ भी जवाब न बना, केवल वह इस प्रकार चापलूसी करने लगा—

कुमार ! यह तुम निश्चय समझो कि राज्य तुम्हारा ही है—तुम्हारे प्रतापके सामने अन्य पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं बन सकता परन्तु महाराजकी आज्ञा इस समय ऐसी ही है, वह तुम्हें निःसंकोच भावसे इस समय अवश्य पालन करनी चाहिये इसीमें कुशल है ॥१०२—११०॥ बलवानके सामने कुछ वश चल नहीं सकता। मंत्रीके इस प्रकारके दुर्वचन सुन कुमार श्रेणिकको बड़ा खेद हुआ एवं वे महाराज उपश्रेणिक द्वारा नियुक्त पांच (?) जासूस सुभटोंकी देख रेखमें खिन्न चित्त नगरसे निकाल दिये ॥१११॥ माताका प्रेम विलक्षण होता है कुमारको ऐसी हालतसे चले जानेपर उनकी मां इन्द्राणीको बड़ा दुःख हुआ। वह माता हा कामदेव ! हा पुत्र ! हा सुवर्णके समान देदीप्यमान कांतिके धारक ! एवं हा संध्याकालकी ललाईको फीकी करने वाले कुमार ! तू कहां गया ? इस प्रकार करुणाजनक स्वरसे रोने लगी ॥११२॥

कामदेवके समान सुन्दर शरीरके धारक कुमार श्रेणिकने मार्गमें जाते जाते एक नन्दिग्राम नामका गांव देखा जो कि गुणोंका साक्षात् बगीचा स्वरूप था। वह पुण्यवान कुमार उसमें प्रवेश कर गया। गांवके मध्यभागमें राज्यकी ओरसे बने सभा मंडपके पास पहुंचकर कुमार चकित दृष्टिसे उसे देखही रहे थे कि सामने एक इन्द्रदत्त नामका वैश्य दीख पड़ा। अपने समान उसे भी पथिक जान उसे मामा बनाया और उससे इस प्रकार कहने लगे–राज्यकी ओरसे यहांपर एक दानशाला खुली हुई है उसका स्वामी एक विप्र है। आओ अपन दोनों उसके पास चलें और उससे भोजनके लिये कहें। बस दोनोंके दोनों विप्रके पास गये परन्तु उसने इनकी एक भी न सुनी। विप्रोंने उन्हें सूखा ही टाल दिया। ठीक ही है विप्रगण ! विचित्र बुद्धिके धारक होते हैं—अपने घमण्डके सामने किसीकी भी नहीं सुनते ॥११३—११५॥ उसी गांवके अन्दर एक बौद्धोंका भी मठ था। कुमार

श्रेणिक विप्रोंके उत्तरसे हताश हो सेठ इन्द्रदत्तके साथ उसी मठमें जाकर प्रवेश कर गये और आनन्द वार्ता
करने लगे। वहांपर एक बौद्ध सन्यासी जो कि कुमार श्रेणिकको पहिचानता था, रहता था। कुमार श्रेणिकको
पहिचान कर उसने कुमारको भोजन आदिसे पूरा आदर सत्कार किया एवं अन्तमें कुमारके संतुष्ट हो जाने
पर वह इस प्रकार कहने लगा—

प्रिय कुमार! मालूम होता है तुम राज्य प्राप्तिकी कोई आशा न रख यहां वहां मारे २ फिर रहे हो और अत्यंत
दुःखका अनुभव कर रहे हो। तुम बौद्ध धर्मको धारण कर लो। इस बौद्ध धर्मकी कृपासे नियमसे तुम्हें राज्य
मिलेगा क्योंकि इसी बौद्ध धर्मकी कृपासे जो घोर विपत्तियां हैं वे संपत्तियां हो जाती है एवं जिस प्रकार विरागी
पुरुष धन धान्य आदिको छोड़ देता है उसी प्रकार बौद्ध धर्मके सेवन करने वालेको कष्ट छोड़कर भाग जाता है
उसे किसी प्रकारका कष्ट भोगना नहीं पड़ता विशेष क्या यह बौद्ध धर्म इतना उत्तम धर्म है कि न तो इससे
उत्कृष्ट धर्म संसारके अन्दर हुआ है न होगा ॥११७—११८॥ कुशाग्र बुद्धि कुमार श्रेणिकने बौद्ध साधुके कहे
अनुसार बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। सेठ इन्द्रदत्तके साथ वे नन्दिग्रामसे आगेको चल दिये एवं कौतूहली
और बुद्धिमान वह कुमार श्रेणिक मार्गमें इस प्रकार वार्तालाप करता करता चलने लगा—

मामा! आओ जिह्वारूपी रथपर सवार होकर अपन दोनों आनन्दपूर्वक शीघ्र चलें। कुमारकी यह चतुरता
की भी बात न समझकर सेठ इन्द्रदत्त कहने लगा—यह बालक तो मूर्ख जान पड़ता है, भला जिह्वारूपी रथपर
बैठकर भी कभी जल्दी जाया जा सकता है? ॥११९—१२१॥ मार्गमें कुछ दूर आगे जाकर एक नदी पड़ी।
कौतूहली कुमार श्रेणिक जूता पहिनकर ही उस नदीके जलमें चलने लगा। उसकी यह चेष्टा देख फिर इन्द्रदत्त
अपने मनमें विचार करने लगा कि यह बालक अवश्य मूर्ख है। आगे मार्गमें अनेक प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त
एक विशाल वृक्ष पड़ा उसे देखकर कुमारने मीठे स्वरमें कहा—मामा! आओ थोड़ी देर इस वृक्षके नीचे आराम
कर लें। कुमारके कहनेसे सेठ इन्द्रदत्त ठहर गया। कुमारने वृक्षके पत्तोंकी उसी समय एक छत्री बना और
मस्तकपर छत्री तानकर वह बैठा। कुमारकी यह चेष्टा देख इन्द्रदत्त विचार करने लगा। धूपके संतापको दूर
करनेके लिये मस्तकपर छत्री तानी जाती है। यह उत्तम वृक्ष धूपका संताप दूर करनेवाला है—छत्री तानकर
बैठनेकी कोई आवश्यकता नहीं परन्तु यह बालक इस वृक्षके नीचे भी मस्तकपर छत्री तानकर बैठा है इसलिये
यह बड़ा हठी और मूर्ख है ॥१२२--१२५॥ मार्गमें आगे चलकर एक गांव पड़ा उसे देख कुमारने इन्द्रदत्तसे

पूछा—मामा ! कृपाकर यह बताओ तो यह गांव उजड़ा हुआ है या बसा हुआ है ? कुमारकी यह बात सुन और
उनका असली तात्पर्य न समझ इन्द्रदत्तने अपने मनमें विचार किया कि यह बालक पक्का मूर्ख है क्योंकि यह
गांव अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पदार्थोंसे व्याप्त है तो भी व्यर्थ पूछता है कि यह उजड़ा हुआ है या बसा हुआ ?
॥१२६—१२७॥ आगे चलकर क्या देखा कि एक स्त्रीको बांधकर कोई पुरुष मार रहा है। उसे देख कुमारने
सेठसे पूछा मामा ! कृपाकर जल्दी बताओ तो कि जिस स्त्रीको यह पुरुष मार रहा है यह बंधी हुई है वा मुक्त—
छूटी हुई है। कुमारकी बातका तात्पर्य न समझकर फिर भी वह सेठ विचारने लगा कि यह बालक तो वज्र
मूर्ख है। सबको दीखती है कि यह स्त्री बंधी हुई है तो भी यह झूठा जवाब सवाल करता है। आगे चलकर
एक मुर्दा पड़ा उसे देखकर कुमारने पूछा—मामा ! कृपा कर कहो कि यह मुर्दा पहिले ही मर चुका है कि अभी
मरा है ? सेठ इन्द्रदत्त कुमारके इन वचनोंका भी तात्पर्य न समझ सका इसलिये पहिलेके समान वह पुनः भी
यही मनमें कहने लगा कि यह बालक भारी मूर्ख है। अभीके मरे मुर्देको भी नहीं जान सकता। आगे चलकर
एक शालि धान्योंका क्षेत्र पड़ा उसे देखकर कुमारने फिर इन्द्रदत्तसे पूछा—बताओ मामा ! इस खेतके मालिकने
इस खेतके फलोंको पहिले खा लिया है कि अब खायगा ? कुमारके वचनोंका तनिक भी तात्पर्य न समझ अबके
तो इन्द्रदत्त झुलझुला उठे क्योंकि वे समझते थे कि जब धान कटा ही नहीं तब पहिले कैसे खाया जा सकता है ?
कुमारने खेतको देखकर जो प्रश्न किया है वह वज्र मूर्खताका है इसलिये वे यही कहने लगे कि ऐसे मूर्खता
परिपूर्ण जीवनके लिये धिक्कार है ॥१२८—१३१॥ आगे चलकर एक हल दीख पड़ा। उसे देखकर कुमारने
इन्द्रदत्तसे पूछा—बताओ मामा ! इस हलमें कितनी शाखायें (हिस्से) हैं। कुमारके ये वचन सुनकर भी सेठ
इन्द्रदत्त उसे मूर्ख समझ चुप रह गये। आगे चलकर एक बदरीवृक्ष पड़ा उसे देख कुमार श्रेणिकने पूछा—
बताइये मामा ! इस वृक्षमें कितने कांटे हैं। कुमारका यह प्रश्न सुन इन्द्रदत्तके मनमें पूरा विश्वास हो गया कि
बालक अवश्य पूरा पागल है। बस इस प्रकार प्रश्न और वितर्क करते करते वे दोनों मार्गमें सानन्द गमन करते
जाते थे ॥ १३२–१३४ ॥ सेठ इन्द्रदत्तकी जन्मभूमि वेणातड़ाग नामका नगर था। मार्गमें चलते चलते जिस
समय वेणातड़ाग आया सेठ इन्द्रदत्त वहीं ठहर गया एवं कुमारसे यह कहने लगा कि भाई मेरा घर तो आ
गया, मैं अब अपने घर जाता हूँ, तुम अब यहांसे कहां जाओगे कहो ? उत्तरमें कुमारने कहा—इस समय तो
मैं इसी तालाबके किनारे ठहरूंगा। कुमारकी यह बात सुनकर इन्द्रदत्तने कहा—अच्छा ठीक है परन्तु मेरी

आज्ञाके बिना आगे मत जाना। बस ऐसा कहकर सेठ अपने घर चला गया। सेठ इन्द्रदत्तके ऐसे सूखे व्यव-
हारसे कुमार श्रेणिकको कुछ कष्ट हुआ। वे मन ही मन यही विचारने लगे कि वणिकोंके साथ की गई मित्रताके
लिये धिक्कार है। जो विद्वान कल्याणके इच्छुक हैं उन्हें वणिकोंके साथ मित्रता, सर्पोंके साथ क्रीड़ा जूआ
खेलना विष खाना स्त्रियोंकी संगति और खोटी संगतिका करना सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ १३८ ॥

सेठ इन्द्रदत्तकी एक नन्दश्री नामकी कन्या थी जो कि अपने मनोहर रूपसे अप्सराकी उपमा धारण करती
थी जिस समय सेठ इन्द्रदत्त घर पहुंचे उन्हें अत्यन्त थका हुआ जान नन्दश्री ताड़ गई कि इनके साथ कोई न
कोई अन्य मनुष्य भी आया है क्योंकि अकेला चलनेवाला मनुष्य अपने स्वभावानुकूल गतिसे चलता है इस
लिये विशेष नहीं थक सकता किन्तु साथमें अन्य मनुष्यके रहते दौड़ा दौड़ी चलना पड़ता है इसलिये विशेष
थकावट हो जाती है, इसलिये उसने शीघ्र ही पूछा—पिताजी! तुम किसी न किसीके साथ आये जान पड़ते
हो कृपाकर कहिये आपके साथमें जो आया है सो कौन है? उत्तरमें इन्द्रदत्तने कहा—पुत्री! मैं अवश्य किसी
अन्य पुरुषके साथ आया हूँ परन्तु मेरे साथ आनेवाला वज्र मूर्ख है। पिताके ऐसे वचन सुन नन्दश्रीने फिर
पूछा—पूज्य पिता। आपने यह कैसे जाना कि आपके साथ आनेवाला पुरुष मूर्ख है? उत्तरमें सेठ इन्द्रदत्तने
जिह्वारूपी रथपर सवार होकर चलना, जूता पहिने ही नदीमें प्रवेश कर जाना, वृक्षके नीचे छत्री लगाकर बैठना,
गांवको उजड़ा बसा कहना, रसीको बांधी छूटी कहना, यह मुर्दा आज मरा है वा पहिले, धान्यके खेतके फल
खा लिये वा खाये जावेंगे हल और बदरीके कांटोंके विषयमें जो भी बात चीत हुई थी सारी कह सुनाई। जिस
समय कन्या नन्दश्रीने सारी बातें सुनी उसे बड़ा हर्ष हुआ। शीघ्र ही उसने अपने पितासे कहा—कृपानाथ।
ऊपर कही हुई बातोंसे जो आपने उसे मूर्ख समझा है सो वह मूर्ख नहीं बड़ा भारी बुद्धिमान है। कुमारने
जो जो बातें कहीं थीं उनका खुलासा इस प्रकार है—उस कुमारने जो आपको मामा कहकर पुकारा था उसका
मतलब यह था कि संसारमें भानजा अत्यन्त माननीय और प्रिय होता है इसलिये मामा कहकर कुमारने आपके
विशिष्ट प्रेमकी आकांक्षा की थी। जिह्वारथका अर्थ कथा कौतूहल है। कुमारने जो जिह्वा रथ कहा वह भी उसका
कहना बहुत उत्तम था क्योंकि जिस समय सज्जन पुरुष मार्गमें थक जाते हैं उस समय वे उस थकावटको अनेक
[illegible] कथा कौतूहलोंसे दूर करते हैं। कुमारका लक्ष्य भी उस समय थकावट दूर करनेका ही था। कुमार जो
नदीके [illegible]लमें जूता पहिनकर घुसा था वह कार्य भी उसका एक बड़ी बुद्धिमानीका था क्योंकि जलके अन्दर

बहुतसे कंकड़ पत्थर और सर्प आदि जीव रहते हैं जो कि सूझ नहीं पड़ते, यदि जूता पहिनकर जलमें प्रवेश न किया जाय तो कंकर पत्थरोंके लगजानेका और सांप आदिके काटनेका भय रहता है इसलिये कुमारका जलमें जूता पहिनकर प्रवेश करना मूर्खताका कार्य न था। कुमार वृक्षके नीचे जो छत्री तानकर बैठा था वह भी उसका कार्य बुद्धिमानीका था क्योंकि वृक्षके ऊपरसे पक्षियोंकी बीट आदिका गिरना संभव है। छत्रीसे बचाव हो सकता है। नगरको देखकर कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि यह बसा हुआ है वा उजड़ा हुआ है वह प्रश्न भी कुमारकी बड़ी बुद्धिमत्ताका था क्योंकि जिस नगरमें धर्मात्मा मनुष्य और धर्मके आयतन विद्यमान हों वह नगर बसा हुआ माना जाता है और जिसमें ये बातें न हों वह उजड़ा समझा जाता है कुमारका तात्पर्य इसी बातको लेकर था। स्त्रीको बांधकर मारते देख जो कुमारने यह पूछा था कि यह स्त्री बंधी हुई है वा छूटी हुई है? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ी चतुरताका था क्योंकि बंधी हुईका अर्थ विवाहित है और छूटी हुईका अर्थ अविवाहित है। कुमारका खास तात्पर्य उस समय यही था कि यह पुरुष जो इस स्त्रीको मार रहा है यह स्त्री इसकी व्याहिता है वा भगाई हुई है। मरे मनुष्यको देखकर जो कुमारने यह प्रश्न किया था कि 'यह मुर्दा आजका मरा है वा पहिले मर चुका है?' यह भी उनका प्रश्न बडी निपुणताका था क्योंकि जो मनुष्य धर्मात्मा दानी तेजस्वी आदि उत्तम गुणोंका भण्डार होता है और वह मर जाता है उसको तो आजका मरा हुआ कहते हैं और जो दुर्गुणोंका खानि होता है वह भले ही आज ही मरा हो तो भी वह पहिलेका मरा हुआ ही माना जाता है। कुमारका आशय भी उस समय यही था। धान्यके खेतको देखकर जो कुमारने यह पूछा था इस खेतके स्वामीने इस खेतका उपभोग कर लिया है वा करेगा? यह प्रश्न भी कुमारका बडी बुद्धिमानीका था क्योंकि जो खेत कर्ज लेकर बोया जाता है उसके धान्यका तो पहिले ही उपभोग कर लिया जाता है और जो कर्ज न लेकर बोया जाता है उस खेतके धान्यको उसका स्वामी भोगेगा, ऐसा कहा जाता है। कुमारका प्रश्न भी उस समय इसी आशयको लेकर था। कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि इस हलमें कितनी शाखा हैं? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ा मौकेका था क्योंकि उस समय कुमारका यह आशय था कि इस हलके स्वामी कितने किसान हैं? इसलिये यह प्रश्न भी कुमारका मूर्खता परिपूर्ण न था। तथा इस बदरी वृक्षपर कितने कांटे हैं? यह जो कुमारने पूछा था वह पूछना भी उनका बड़ी कुशलतासे था क्योंकि कांटे दो प्रकारके होते हैं एक सीधे दूसरे टेढ़े। दुर्जनोंके वचन भी सीधे टेढ़े दोनों प्रकारके होते हैं कुमारका पूछना भी इसी आशयको लेकर था" इसलिये हे

पूज्यपिता ! जिस कुमारको आपने मूर्ख समझ रक्खा है वह बत्तीस शुभ लक्षणोंका धारक अत्यन्त बुद्धिमान है कृपाकर अब शीघ्र बताइये कि वह चतुर कुमार इस समय कहां है ? उत्तरमें इन्द्रदत्तने कहा—वह कुमार इस समय तालाबके किनारे बैठा है। मैं उससे यह कहकर आया हूँ कि मेरी आज्ञाके बिना तुम कहीं भी मत जाना इसलिये जबतक मेरी आज्ञा उसके पास न पहुंचेगी वह कहीं जा नहीं सकता। अपने पिताके ये मनोहर वचन सुन कुमारी नन्दश्री विचारने लगी यद्यपि कुमार संसारमें एक बुद्धिमान पुरुष रत्न है तथापि और भी उसकी परीक्षा कर लेना परमावश्यक है इसलिये शीघ्र ही उसने अपनी विपुलमती नामकी प्रियसखी बुलवाई और प्रेम-मय वचनोंसे उससे यह कहा कि मैं जिस कार्यके करनेकी तुमसे प्रेरणा कर रही हूँ उसे शीघ्र करो। देखो तालाब के किनारे कोई अन्य देशका पुरुष बैठा है। नखमें तेल भरकर तुम शीघ्र उसके पास जाओ और उससे कहो कि आप यह तेल लेकर शीघ्र स्नान करिये ॥ १४६ ॥ कुमारी नन्दश्रीके वचन सुन सखी विपुलमती शीघ्र ही तालाबके किनारे जा पहुंची। नन्दश्रीने जो कहा था सारा समाचार कुमारसे कह सुनाया एवं तेल लगाकर स्नान कर मेरे घर चलें, यह निवेदन भी कर दिया विपुलमतीके वचनोंपर थोड़ी देर तक कुमारने विचार किया एवं 'इस तेलको इस जलमें डाल दो, ऐसा कहकर उससे यह पूछा—तुम्हारे घर मुझे क्यों चलना चाहिये ? उत्तरमें मनोहरांगी विपुलमतीने कहा—प्रिय महानुभाव जिस महापुरुषके साथ तुम आये हो उसके एक नन्दश्री नामकी पुत्री है जो कि दिव्य सौंदर्यके भारसे शोभायमान है और शुभ है उसी कुमारीने आपको बुलाया है आप किसी प्रकारका सन्देह न करें। विपुलमतीकी यह बात सुन कुमारने पूछा तुम्हारा घर कहां है ? इसके उत्तरमें विपुलमतीने कुछ भी नहीं कहा उसके कानमें जो तालवृक्षके पत्तोंका बना भूषण था उसे धीरेसे दिखाकर वह चुपचाप अपने घरको चली गई। बुद्धिमान कुमारने अपनी चतुरतासे उसका इशारा समझ लिया एवं जिस घरमें तालवृक्ष हो वही कुमारी नन्दश्रीका घर है ऐसा विचार कर वह कुमार स्नानकर उसी घरकी ओर सीधा रवाना हो गया ॥ १५० ॥ विपुलमतीके मुखसे कुमारका आना सुन नन्दश्रीने अपने दरवाजेके सामने घोंटू पर्यन्त कीचड़ भरवा दी। ठीक दरवाजेके सामने पत्थर रखवा दिये जिससे यह जान पड़े कि भीतर जानेका रास्ता इन पत्थरोंके टुकड़ोंके ऊपरसे है एवं कुमारका कौतूहल देखनेके लिये वह सामने खिड़कीमें बैठ गई।१५१। नन्दश्रीके घरमें ताडका बृक्ष था ताड़के चिह्नसे उसी घरको नंदश्रीका घर जान कुमार उसके दरवाजेपर आ गये एवं दरवाजेके आगेका भाग कीचड़से भरा हुआ देख वे इस प्रकार मन ही मन विचारने लगे—नगरके

मध्यभागमें कीचड़ नहीं दीख पड़ती परन्तु इस मकानके सामने कीचड दीख पडती है इसलिये इस कीचडके होनेमें अवश्य कोई न कोई रहस्य छिपा हुआ है—क्या बात है सो कुछ जान नहीं पड़ता घरके भीतर जानेके लिये जो यह पत्थरके टुकडोंका मार्ग बनाया गया है जान पडता है मेरी बुद्धिकी परीक्षाके लिये यह धोखाबाजी की गई है यदि मैं इस पत्थरके टुकडोंके बने मार्गसे घरके भीतर जाऊंगा तो अवश्य नीचे कीचडमें गिर जाऊंगा तो सारे लोग मेरी हँसी करेंगे इसलिये मुझे कीचडमें होकर ही जाना चाहिये बस इस प्रकार विचारकर वे कीचडके भीतरसे जाकर—नन्दश्रीके दरवाजेपर पहुंच गये। कुमारके इस तीव्र कौशलको देखकर नन्दश्रीने मन ही मन उनके कौशलकी सराहना की एवं दिल्लगीसे फिर भी कुमारकी बुद्धिकी परीक्षाके लिये नन्दश्रीने अंजुलीप्रमाण जल उनके पैर धोनेके लिये सखीके हाथ भेजा। कुमार उस थोड़ेसे जलको देखकर मन ही मन विचारने लगे कि मेरे साथमें जो दिल्लगी हो रही है वह इसी धूर्त नन्दश्री द्वारा की जा रही है खैर, उन्होंने बांसकी भचट लेकर शीघ्र ही सारी कीचड़ उतार डाली और उस थोड़ेसे जलसे अपने पैर धो डाले। कुमारकी इस प्रकार बुद्धिमानी देख नन्दश्रीने मन ही मन उन्हें अत्यन्त चतुर समझ लिया। बडी खुशी हुई एवं अपनी सखीसे यह कहा कि कुमारको भोजनके लिये लिवा लाओ। नंदश्रीके कहे अनुसार सखीने कुमार को भोजनके लिये बुलाया। मनोहर अङ्गके धारक एवं राजलक्षणोंसे शोभायमान वह कुमार भी क्रीडापूर्वक नन्दश्रीके पास आ गया एवं जिस प्रकार अतिथि आकर बैठ जाता है उस प्रकार आकर बैठ गया ॥ १५९ ॥ अतिथिका जिस रूपसे स्वागत करना चाहिये नन्दश्रीने बड़े उत्साहके साथ उनका स्वागत किया एवं मनोहर वचनोंमें वह इस प्रकार कहने लगी—

महानुभाव! आइये इस आसनपर विराजिये और इच्छानुसार भोजन कीजिये ॥१६०॥ शुद्ध हृदयवाली नन्दश्रीके ये मनोहर बचन सुन कुमारने कहा—चकोरके समान नेत्रवाली मनोहरांगी! संसारमें तुम बड़ी चतुर सुनी जाती हो मैं भी कुछ चतुरताका अभ्यास रखता हूँ मैंने आज यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे पास बत्तीस चावल हैं यदि केवल उन्हींसे घी और शाक आदिसे परिपर्ण मेरे लिये भोजन तयार किया जायगा तो मैं उसे खाऊंगा बीच नहीं खा सकता। सुवर्णके समान प्रभावाली गौरांगी! यदि तुम इस रूपसे भोजन तैयार कर सको तो मैं खा सकता हूं। कुमारश्रेणिक जिस समय यह कह रहे थे विशिष्ट आनन्दसे उनकी बाणी कुछ कुछ स्खलित निकलती थी चतुर नन्दश्री स्खलित वाणीसे उनके मनका अभिप्राय समझ कहने लगी—कृपाकर उन

बत्तीस चावलोंको दीजिये मैं अभी आपके लिये मिष्ट और मनोहर भोजन तैयार करती हूँ ॥ १६५ ॥ कुमारने उसी समय बत्तीस चावल दे दिये। कुमारी नंदश्रीने शीघ्र उन्हें पीसकर पूवे बनाये। सखीको बुलाकर उन्हें बजार बेचनेके लिये भेज दिया। वह सखी भी बड़ी चतुर थी जहां ज्वारियोंका अड्डा था वहां पहुंची। ज्वारी लोग कपड़ा बिछाकर जिस समय जुआ खेलना प्रारंभ करने लगे उस समय उस सखीने इस प्रकार मनोहर बचनोंमें कहा—देखो भाइयो! ये पूवे जो मैं लाई हूँ देवमयी हैं। जो महानुभाव इन पूवोंको खावेगा वही उत्तम ज्वारी इच्छानुसार धन उपार्जन करेगा इसमें किसी बातका सन्देह नहीं। ज्वारियोंको कल कहां? बड़े आग्रहसे शीघ्र ही उन्होंने पूवे खरीद लिये। मुंहमांगा धन दिया एवं उस धनको लेकर वह सखी शीघ्र ही अपने घर आ गई ॥ १६६ ॥ कुमारी नंदश्रीने उस द्रव्यसे पूवा खीर आदि शीघ्र ही उत्तम व्यंजन तैयार कर दिये। कुमारको उनकी इच्छानुसार भोजन करा दिया एवं भोजनके बाद तांबुल देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया ॥१६९॥ कुमार श्रेणिकने अपनी मनोहर गतिसे मिष्ट वचनोंसे और तिरछी चितवनसे कुमारी नन्दश्रीको अपने में अनुरक्त कर लिया। कामवाणोंसे व्याकुल हो वह उनको ओर लालसा दृष्टिसे देखने लगी। कामके वशीभूत वह कुमारी कभी कभी अपना मनोहर अङ्ग कुमारको दिखाने लगी कभी दर्पणके समान अपने कपोलोंको तो कभी कभी मन्द मन्द मुसकानेसे मोतियोंके समान अपने दांतोंके दिखलानेकी चेष्टा करने लगी ॥१७१॥ अपने आपसी व्यवहारसे वे दोनों कुमार कुमारी कामवाणोंसे पीड़ित हो अपना अपना प्रेम व्यक्त करने लगे। सेठ इन्द्रदत्तको भी कुमारमें कन्याके अनुरागका पता लग गया, उन्होंने बड़ी खुशीसे दोनोंका आपसमें विवाह कर दिया ॥१७२॥ युवा कुमार श्रेणिक भी जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है रामचन्द्र सीताके साथ रमते थे और नागेन्द्र नागकुमारके साथ रमण क्रियासे उपयुक्त रहता है उस प्रकार रमणी नंदश्रीके साथ रमण क्रीड़ा करने लगे ॥१७३॥ कुछ कालके बाद रमण क्रीड़ा करते करते कुमारी नंदश्रीके गर्भ रह गया उस समय उसके एक दोहला भी हुआ जिसकी सिद्धि कठिन जान वह दिनों दिन कृश होने लगी। किसी दिन एकांतमें आलिङ्गन चुम्बनके बाद बड़े प्रेमसे कुमारने नन्दश्रीसे यह पूछा—प्रिये! मैं देखता हूँ दिनों दिन तुम कृश होती चलीं जातीं हो। नहीं जान पड़ता तुम्हारी कृशताकी कारण कौन चिंता है? तुम्हें उसे प्रगट करना चाहिये। कुमारका इस प्रकार विशेष आग्रह देख नंदश्रीने कहा—कृपाधार! प्राणजीवन प्राणनाथ! सुनिये मुझे यह दोहला हुआ है कि इस देशमें सर्वत्र सात दिन तक अभय दानकी प्रवृत्ति हो,

कोई भी जीव किसीको न सतावे। यदि मेरा यह दोहला पूर्ण हो जाय तब मुझे सुख मिले इसका पूर्ण होना कठिन जान पड़ता है इसीलिये मैं सदा कृश होती चली जाती हूँ मेरी कृशताका अन्य कोई कारण नहीं। प्राणप्यारी नंदश्रीका यह दोहला सुन कुमार श्रेणिकको भी उसको सिद्धिमें कठिनता सूझने लगी परन्तु अपनी निर्बलता न प्रगट कर अपने धीर वीर स्वभावसे उन्होंने उसे समझा दिया एवं कुछ उपाय खोजनेके लिये वे नदीके तटकी ओर चल दिये ॥१७७॥ नदीके किनारे बैठकर कुमार दोहलेको सिद्धिका उपाय सोच ही रहे थे कि उस समय एक नवीन ही घटना उपस्थित हो गई। उसी नगरका स्वामी एक वसुपाल नामका राजा था उसके किसी मदोन्मत्त हाथीने आलान—अपने बंधनेका खूंटा तोड़ डाला। वह दुष्ट गज समस्त पुर अर लोगोंको आकुलित करता, हथिनियोंको त्रास देता, अपनी उछल कूदसे सूर्यको ग्रहण करता, समस्त पृथ्वी-तलको कपाता एवं अपनी ऊंचाईसे आकाशमें चलता हुआ जिस जगह कुमार बैठे थे उसी जगह आया उस दुष्ट गजको अपने पास आता देख कुमार श्रेणिक मन ही मन सोचने लगे—यह गज बड़ा दुष्ट मालूम पड़ता है। इसे वश करनेकी किसीकी हिम्मत नहीं जान पड़ती इसे अवश्य वश करना चाहिये बस चित्तमें क्रोधकर तत्काल उठ बैठे और मुष्टियोंके प्रहारोंसे उस मदोन्मत्त हाथीको देखते देखते वश कर डाला ॥ १८१ ॥ हाथी जिस समय मदरहित शांत और सीधा हो गया कुमार उसके ऊपर चढ़ लिये उनका यह लोकोत्तर प्रभाव देख सारा लोक उनकी प्रशंसा करने लगा ॥१८२॥ राजा वसुपालके कानतक भी यह समाचार पहुंचा वह आकर कुमारसे मिला और कहने लगा—कुमार ! तुमने बड़े साहसका कार्य किया है मैं तुमसे प्रसन्न हूँ जो तुम्हें मांगना हो सानन्द मांग सकते हो। कुमार श्रेणिक सात दिन तक अभय दानकी चिन्तामें थे इसलिये राजासे उन्होंने यही कहा कि कृपाकर आप सात दिन तक अपने देशमें अभय दानकी घोषणा कर दें। राजा वसुपाल-ने कुमारकी बात स्वीकार कर ली और वह सुख पूर्वक अपना राज्य करने लगा। शुभ लग्न और शुभ योगमें रमणी नन्दश्रीके पुत्र हुआ। दोहलेके अनुसार उसका अभय कुमार नाम रक्खा गया। क्रमसे वह युवा हो गया एवं अनेक विद्याओंका भण्डार बन गया ॥ १८५ ॥ चतुर अङ्गके धारक कुमार श्रेणिक रमणी नन्दश्रीके साथ सानन्द क्रीड़ा करने लगे एवं रति क्रीड़ारूपी कमलमें इतने आसक्त हो गये कि जाता हुआ काल भी उन्हें नहीं जान पड़ने लगा ॥१८६॥ कुमार श्रेणिक तो उधर इन्द्रदत्तके घर रहने लगे इधर महाराज उपश्रेणिकको जब यह मालूम हो गया कि मेरी आयु बिलकुल समीप है तो उन्होंने समस्त सामन्तोंको इकट्ठा किया और

आयुके अन्तमें महाराज उपश्रेणिकका मरण
सबोंके समक्षमें चलाती पुत्रको राज्य प्रदान कर दिया ॥ १८७ ॥ उसके राज्यकालमें इन्द्राणी आदिक जो रानियां थीं वे
हो गया। वह राजा होकर प्रजाका पालन करने लगा। राजा चलाती तनिक भी उनके दुःख सुखपर ध्यान नहीं देता था
चोरोंके समान बड़े दुःखसे रहने लगीं। भले आदमियोंका विनाश करता
॥१८८॥ वह दुष्ट राजा अपने राज्यमें दुष्टोंकी बढ़वारी करता था और शिष्ट— अच्छी तरह विचार
था। समस्त प्रजा उसके शासनसे दुःखित थी। मंत्री मतिसागरको बड़ी चिन्ता हुई। कुमार श्रेणिकके पास भेज दिया।
कर उसने कुमार श्रेणिकको एक गूढ़ पत्र लिखा एवं दूतके हाथमें देकर उसे जिसे बांचकर कुमारके
जहांपर कुमार श्रेणिक रहते थे दूत सीधा वहां पहुंचा। कुमारके हाथमें पत्र दे दिया, जिसे बांचकर कुमारके
चित्तको बड़ी भारी शांति मिली ॥१९०॥ उन्होंने शीघ्र ही अपने श्वसुर इन्द्रदत्तसे राजगृह नगर जानेकी आज्ञा
माँगी। प्रियतमा नंदश्री और पुत्र अभयकुमारको वहीं छोड़ा एवं पांच हजार गूढ़ वेषधारी सुभटोंके साथ शीघ्र
ही राजगृह नगरकी ओर प्रस्थान कर दिया ॥ १९१ ॥ राजा चलातीने जिस समय कुमार श्रेणिकको सैन्यसे
मण्डित आया सुना साथमें बहुतसा द्रव्य लेकर वह शीघ्र ही नगरसे बाहिर निकल गया एवं अपने नानाके पास
जाकर भीलोंकी पल्लीमें रहने लगा ॥१९२॥ कुमार श्रेणिक उसी समय राजगृह नगरके महाराज बन गये एवं
बैलके समान पुष्ट स्कंधोंके धारक महा प्रतापी एवं छत्र और चमरोंसे शोभायमान वे महाराज श्रेणिक विशाल
हाथीपर सवार हो अपनी राजधानी राजगृह नगरमें प्रविष्ट हो गये ॥ १९३ ॥ राजलक्षणोंसे मण्डित महाराज
श्रेणिकने राजसिंहासन अलंकृत किया एवं समस्त देशोंको जीतकर वे सुख पूर्वक राज्य भोगने लगे ॥१९४॥

महाराज श्रेणिक सानन्द सिंहासन पर विराजमान थे कि उस समय एक आकाशगति नामका विद्याधर
राज सभामें आया और राजाको नमस्कार कर यह संदेशा कहने लगा—विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें एक
केरला नामकी नगरी है। उसका स्वामी राजा मृगांक है। राजा मृगांककी पटराणीका नाम मालतीलता है जो
कि अनेक गुणोंकी मन्दिर है और नातेमें मेरी भगिनी लगती है एवं उन दोनोंके विलासवती नामकी अत्यंत
सुन्दरी और यौवनसे मण्डित पुत्री है ॥ १९७ ॥ विवाह योग्य अपनी युवती पुत्रीको देखकर राजा मृगांकने
सुमति नामके मुनिराजसे पूछा था कि भगवान्! मेरी पुत्रीका पति कौन होगा? उत्तरमें मुनिराजने कहा था
कि राजगृह नगरके स्वामी राजा श्रेणिक इसके पति होंगे जो कि संसारमें एक प्रवल पराक्रमी राजा हैं। मुनि-
राजके ऐसे वचन सुन राजा मृगांक पुत्रीकी ओरसे निश्चिन्त हो रहने लगे। किसी समय मराल द्वीपके स्वामी

राजा रत्नचूड़ने रतिके समान सुन्दरी और कमनीय वर्णसे शोभित वह पुत्री देख ली और उसे मांग बैठा परंतु मुनि वचनके गाढ़ श्रद्धानी राजा मृगांकने रत्नचूड़को पुत्री नहीं दी। रत्नचूड़को यह बात सहन न हो सकी और उसने जलकर अपने सैन्य मण्डलसे केरला नगरी घेर ली। मैं यह समाचार कहनेके लिये आपके पास आया हूँ अब जैसा आप उचित समझें शीघ्र करें ॥ २०२ ॥ विद्याधर आकाशगतिकी यह बात सुन महाराज श्रेणिक बड़े कुपित हुए परन्तु "वहांपर भूमिगोचरियोंकी गति नहीं इसलिये जा नहीं सकते" ऐसा विचार कर वे सचिंत हो चुप रह गये महाराजको इस प्रकार सचिंत देख एक जम्बूकुमार नामके व्यक्तिने महाराजको नमस्कार किया और वह विद्याधर आकाशगतिके साथ शीघ्र केरला नगरीको चल दिया ॥२०४॥ केरला नगरीमें जाकर पापी रत्नचूड़के साथ उसने झगड़ा करना आरम्भ कर दिया। उसके महा उत्कृष्ट आठ हजार योधाओंको मार भगाया। दुष्ट रत्नचूड़को बांध लिया। उसे, मृगांकको और उसकी कन्याको साथ ले राजगृह नगरकी ओर चल दिये। जिस समय जंबूकुमार केरला नगरीकी ओर गया था महाराज श्रेणिकने भी अपने जानेकी तैयारी कर ली थी और वे चलते चलते विन्ध्याचलकी बनीमें केरल नामके पर्वतपर जाकर ठहर गये थे। यशस्वी जंबूकुमार सबोंको साथ ले जिस समय विन्ध्याचल पर्वतके पास आया उसे मालूम पड़ गया कि महाराज श्रेणिक यहीं ठहरे हैं। वह शीघ्र उनके पास गया और उन्हें नमस्कार किया। कन्या विलासवतीके साथ महाराज श्रेणिकका विवाह हो गया। मृगांक आदिके साथ उन्होंने बहुत स्नेह जनाया। वहांसे अपनी राजधानी राजगृह नगर लौट आये और रमणी विलासवतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ २०८ ॥ महाराज श्रेणिक सानन्द राज्य भोग कर रहे थे कि उन्हें नन्दिग्रामके विप्रोंकी दुष्टताका स्मरण हो आया और उन्हें लुटवानेके लिये कुछ मनुष्योंका शीघ्र ही वे प्रबन्ध करने लगे ॥२०९॥ मंत्री आदिने आकर महाराजको समझाया राजन्! नन्दिग्रामके विप्रोंका छिद्र-दोष, बिना प्रगट किये आपका यह कार्य अच्छा नहीं माना जा सकता इसलिये आप पहिले उनका कोई दोष प्रगट करिये, पीछे उन्हें दण्डित कीजिये क्योंकि यह कहावत है कि तुच्छ दोषके बदले जो कड़ा दंड देते हैं तो दंड देनेवाला स्वयं दोषी ठहरता है तब न्याय नहीं माना जाता सब लोग उसे अन्याय कहते हैं ॥२१०॥ ठीक ठीक कहकर महाराजने मंत्री आदिकी बात मान ली। शीघ्र ही एक बकरा मंगाकर सेवकोंके साथ उसे नंदिग्राम भेज दिया और यह आज्ञा कर दी कि नंदिग्रामके विप्र इसे खूब खिलावें पिलावें परन्तु यह ध्यान रक्खें कि न तो यह बकरा पुष्ट हो और न कृश हो। यदि मेरी इस आज्ञाका पालन नहीं किया गया तो मैं तुम्हारा

महाराजकी यह घोषणा सुन नंदिग्रामके
सर्वस्व लुटवा लूंगा और देशसे बाहिर निकलवा दूंगा ॥ २१२ ॥ यह कुछ भी उन्हें न सूझ पड़ा।
समस्त ब्राह्मण भयसे कांप गये, महाराजकी आज्ञाका किस प्रकार पालन करें राजगृह नगरके राजा बन गये हैं तो वह
वेणातट नगरके निवासी सेठ इन्द्रदत्तने जब यह सुना कि श्रेणिक मिलने आया और नंदिग्राममें ही दैवयोग
अपनी पुत्री नंदश्री और अभयकुमारको साथ ले उनसे विशेष रूपसे चिन्तित और दुःखित देख कुमार अभयने
से आकर ठहर गया ॥२१४॥ नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मणोंको अत्यन्त महाराज श्रेणिककी सारी आज्ञा कह
पूछा—भाई ! तुम लोग चित्तमें इतने दुःखित क्यों हो ? उत्तरमें विप्रोंने —व्याकुल होनेकी कोई बात
सुनाई। सुनकर कुमारने धीरज बंधाते हुये मिष्ट बचनोंमें इस प्रकार उनसे कहा और खूब उसे मिष्टान्न भोजन
नहीं है मैं तुम्हें एक उपाय बतलाता हूँ—दो बाघोंके बीचमें बकराको बांध दो आज्ञानुसार विप्रोंने वैसा
खवाओ। मिष्टान्नोंके खानेसे न तो वह पतला होगा और न मोटा होगा। कुमारकी था वैसा ही देख
ही किया। अर्धमास—पन्द्रह दिन रखकर उसे महाराजके पास भेज दिया। जैसा बकरा भेजा करने लगे ॥ २१८ ॥
महाराज श्रेणिक चकित रह गये एवं नंदिग्रामके विप्रोंकी चतुरताकी मन ही मन सराहना हाथीका वजन मांगा,
इसी तरह महाराज श्रेणिकने नंदिग्रामके विप्रोंसे राजगृह नगरमें बावड़ी मंगानेकी कही। दूध मंगाया, एक
काठका नीचे ऊपरका भाग पूछा, तिलके बराबर तेल मांगा, गाय भैंस आदिके दूधसे अन्य कूष्माण्डफल मांगा शिशु-
ही मुर्गा लड़ानेको कहा, बालूकी बनी रस्सी माँगी, घड़ामें भीतर ही भीतर बढ़ा हुआ राजगृह नगर बुलाया
ओंकी बुद्धि परीक्षा की और रात दिन आदिके विभागको छोड़कर बुद्धिमान मनुष्यको महाराज उपश्रेणिकने
वह सब कुमार अभयकी कृपासे पूरा किया गया। अन्तिम प्रश्नका खुलासा यह है कि राजगृह नगरमें
नन्दिग्रामके विप्रोंके पास यह संदेशा भेजा कि सबोंमें बुद्धिमान मनुष्य मय अन्य ब्राह्मणोंके न मार्गसे आवे न कुमार्गसे
आवे। उसके लिये यह कड़ी आज्ञा है कि न तो वह रातमें आवे न दिनमें आवे। न पैदल ही आवे परन्तु राजगृह नगर
आवे भूखे भी न आवे अफरे भी न आवे। किसी सवारीमें न आवे और न छींके बंधवा दिये। सब लोग
आवे अवश्य। महाराजका यह कठिन संदेश सुन कुमार अभयने गाड़ियोंके अन्दर खाली ही। गाड़ियोंका एक
उनमें बैठ गये, चनाका भोजन किया जिससे न पेट भरा ही माना जा सकता है और न साथ वे सबके सब राजाके
पहिया लीखपर चलाया गया और एक वे लीखपर चलाया गया बस अभयकुमारके भक्ति पूर्वक नमस्कार किया।
समीप पहुंचे एवं कुमार अभयने अपने पिताके चरणोंको साथमें गये विप्रोंके साथ

॥२२३॥ विनयशील पुत्र अभयकुमारको देख महाराज श्रेणिकको परमानन्द हुआ। स्नेहसे गद् गद् हो उसे छातीसे लगा लिया। उसके बुद्धिबलकी बड़ी भारी प्रशंसा की। कुमारने ब्राह्मणोंको क्षमा करा दिया एवं वह सुख पूर्वक राज सभामें बैठ गया ॥ २२४ ॥ महाराज श्रेणिकने अपनी प्यारी रानी नंदश्रीको पटरानीका पद प्रदान किया। कुमार अभयको युवराज बनाया और मन्त्री पद भी प्रदान किया जिससे उन्हें गया हुआ काल जरा भी न जान पड़ा ॥ २२५ ॥ इस प्रकार वे महाराज श्रेणिक बौद्धधर्मके परम भक्त बन सानन्द राज्य करने लगे। राजगृह नगरमें उस समय एक सागरदत्त नामका वैश्य रहता था। अत्यंत धनाढ्य और अनेक गुणोंका मंदिर था, उसकी दो स्त्रियाँ थीं, एक वसुमित्रा और दूसरी अछिदत्ता (वसुदत्ता) उनमें वसुमित्राके एक पुत्र था वसुदत्ताके कोई संतान न थी। किसी समय सेठ सागरदत्तका मरण हो गया और उस समय उन दोनों स्त्रियोंमें रात दिन कलह होने लगी। वसुदत्ताका कहना था कि यह पुत्र मेरा है और वसुमित्रा कहती थी कि यह झूठी है। यह पुत्र मेरा है। जब दोनोंका विवाद इतना बढ़ गया कि वे आपसमें अपना निबटेरा न कर सकीं तो वे महाराज श्रेणिकके समीप राज सभामें अपना न्याय करानेके लिये गईं। उनका विवाद सुन महाराज श्रेणिक भी अवाक् रह गये—कुछ भी न्याय न कर सके इसलिये कुमार अभयको बुलाकर उन्हें न्याय करनेकी आज्ञा दे दी ॥२३०॥ अभयकुमार भी बहुत देर तक तो यह विचार करते रहे कि इसका निबटेरा किस प्रकार किया जाय अन्तमें उन्हें एक बुद्धि सूझ गई। बालकको शीघ्र ही उन्होंने जमीनपर लिटा लिया एवं हाथमें छुरी लेकर वे यह कहने लगे कि अच्छा बाई! जब तुम दोनों ही इसे अपना अपना पुत्र बतलाती हो तो आधा आधा दोनों ले लो ॥२३१॥ कुमारका यह न्याय देख पुत्रकी असली माता वसुमित्रा एकदम कम्प गई एवं दया से आर्द्र हो वह इस प्रकार नम्र बचनोंमें कहने लगी—कुमार! कृपाकर यह पुत्र वसुदत्ताको ही प्रदान करिये मेरे पुत्र कभी भी नहीं हुआ इसलिये मेरा पुत्र यह नहीं है ॥२३२॥ वसुदत्ताके अन्दर किसी प्रकार दयाकी झलक न थी। कुमारने उस बालकको दयालु बसुमित्राका ही पुत्र जान उसे ही सुपुर्द कर दिया और अन्याय करने वाली वसुदत्ताको अपराधके अनुकूल दण्ड दिया। इस प्रकार पुत्रके लिये जो झगड़ा था न्यायकर कुमारने उसका निबटेरा कर दिया ॥२३३॥ मगध देशकी अमरावती नगरीमें एक बलभद्र नामका कुटुम्बी रहता था। उसकी स्त्रीका नाम भद्रा था जो कि बलभद्रको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी और पीन किन्तु स्थूल स्तनोंसे शोभाय-मान थी। उसी नगरीमें एक बसंत नामका क्षत्रिय पुरुष भी रहता था एक दिन रमणी भद्रा उसके देखनेमें आ-

गई जिससे वह उसके सौंदर्यपर मुग्ध हो कामबाणोंसे व्याकुल हो गया ॥२३५॥ शीघ्र ही उसने भद्राके पास अपनी दूती भेजी। भद्रा भी बसंत पर पूर्ण आसक्त हो गई जिससे बसंत मनमानी उसके साथ आनन्द रमण क्रीड़ा करने लगा। एक दिन भद्राको बाहिर जंगलमें जानेका अवसर मिल गया वह बनमें गई। दैवयोगसे एक मुनिराजसे उनकी भेंट हो गई। वे मुनिराज परम सुन्दर थे उन्हें देख भद्राका चित्त चलित हो गया एवं कामको सूचित करनेवाले वाक्योंमें वह इस प्रकार मुनिराजसे कहने लगी—प्रिय साधो! तुम सौन्दर्य और कलाओंके स्थान हो तुम्हें स्त्रियोंकी अभिलाषा पूरण करनी चाहिये। तुम जो यह ध्यान व्रत आचरण कर रहे हो यह तुम्हारा व्यर्थ है इसमें कुछ भी आनन्द नहीं प्राप्त हो सकना तुम्हें विषय भोगोंको आस्वादना चाहिये। भद्राके ये कड़वे वचन सुन उत्तरमें आत्मध्यानी मुनिराजने कहा—

अरी मूर्ख अबला! ऐसे कड़वे बचन क्यों तू अपने मुखसे निकालती है। तुझे लज्जा नहीं आती कि शक्तिमान भी अपने स्वामीको छोड़कर तू दूसरोंके साथ रमण क्रिया करती फिरती है देख ये दुष्ट भोग काले भुजंगके समान महा भयंकर हैं। सदा अनेक प्रकारके दुःखोंको देनेवाले हैं। सुन्दरताको नष्ट करनेवाले हैं इसलिये न मालूम बातसे पूरित तीव्रघावके समान इन भोगोंको लोग क्यों आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। अर्थात् बातसे पूर्ण घावमें विशेष खुजली पड़ती है इसलिये उसके छेड़नेमें कुछ कुछ सुख जान पड़ता है परन्तु खुजाते खुजाते घाव लोहू लुहान हो जानेसे अपरिमित दुःख भोगना पड़ना है उसी प्रकार भोगोंके छेड़े जानेपर प्रारम्भमें तो कुछ सुख जान पड़ता है परन्तु परिपाकमें अपरिमित कष्ट भोगना पड़ना है इसलिये विषय भोगोंमें लालसा रखना अपनेको दुःखमय गढ़ेमें पटकना है तथा और भी यह बात है कि संसारमें स्त्री पुरुषोंका शील ही भूषण है इस शीलके भंगसे पापका बंध होता है। पापसे नरक जाना होता है वहांपर महा भयंकर दुःख भोगना पड़ता है जिसे विद्वान् भी कवि अपनी वाणीसे वर्णन नहीं कर सकता ॥ २४१ ॥ मुनिराजकी यह विचित्र बात सुन भद्रा अवाक् रह गई। वह मन ही मन विचारने लगी कि यह मुनि हमारे पापको बात कैसे जानता है? बस उसी समय उसने शीलव्रत धारण कर लिया और अपने घर चली आई ॥२४२॥ बसंत रोजकी तरह भद्राके घर गया परन्तु उसने उसकी एक बात न सुनी। दूती भेजी, द्रव्यका लालच दिखा स्वयं जाकर चाटु वचन कहे परन्तु भद्रा उसके हाथ न आई। इसलिये वह अपने मनमें बड़ी चिन्ता करने लगा ॥२४३॥ एक दिन उस नगरीमें एक कपाली—मन्त्रवादी आया। उसके ढोंगका लोगोंपर प्रभाव पड़ गया। सबके सब उसे पूजने लगे।

बसंतने भी उसका आना सुना, वह शीघ्र ही उसके पास गया। अपनी अभीष्ट सिद्धके लिये भक्ति पूर्वक उसे नमस्कार किया। प्रति दिन भात नाना प्रकारके व्यंजन रस लाडू खाजे और पूवोंका भोजन कराकर उसे संतुष्ट करने लगा। ठीक ही है कामका अर्थी स्वार्थी मनुष्य क्या नहीं करता ॥२४५॥ बसंतकी सेवासे मन्त्रवादी संतुष्ट हो गया अपने ऊपर मन्त्रवादीको संतुष्ट देख बसंतने अपनी अभीष्ट सिद्धिकी प्रार्थना की। मन्त्रवादीने उसे बहुरूपिणी विद्या प्रदानकी जिसे बसंतने बहुत जल्दी साध लिया ॥२४६॥ एक दिन कामसे अत्यंत व्याकुल हो बसंतने जब कि बहुत रात्रि थी, मुर्गाका रूप धारण किया और बलभद्रके घरके पास कूजने लगा ॥२४७॥ भद्रा-का स्वामी बलभद्र यह समझ कि सबेरा हो गया, पशुओंके चरानेके लिये अपने खेतपर चला गया और बसंत बलभद्रका रूप धारण कर उसके घरके भीतर घुस गया। चतुर भद्राने चाल ढालसे निश्चय कर उस दुष्टको पहिचान लिया इसलिये उसने चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया। विशेष हुल्लड़ सुन बलभद्र वापिस लौट आया। दोनों ही समान रूपके धारक थे इसलिये दोनोंका आपसमें झगड़ा होने लगा इसलिये अपना न्याय करानेके लिये चलते चलते वे राजगृह नगर आ गये ॥२५०॥ सब झगड़ोंका निबटेरा प्रायः कुमारअभय ही करते थे जिस समय वे दोनों कुमारके पास आये, मनको प्रसन्न कर कुमारने कहा देखो भाई। तुम दोनोंमेंसे जो इस तूम्बीके छेदमें होकर बाहर निकल जायगा वही भद्राका पति समझा जायगा। यह काम करना असली बलभद्रकी शक्तिके तो बाहिर था कुमारकी बात सुनते ही नकली बलभद्र बसंत देखते देखते छेदमें घुसकर बाहिर निकल गया बस कुमारने उसे ही अपराधी समझ पकड़ लिया और दण्ड दिया ॥२५२॥ कुमारअभयने अपनी बुद्धिकी चतु-रतासे असली बलभद्रको भद्रा दे दी। इस न्यायके बाद कुमारअभय अत्यन्त बुद्धिमान प्रसिद्ध न्यायी माने गये ॥२५३॥ किसी दिन जलरहित कूवेमें एक अंगूठी गिर गई महाराज श्रेणिकने बिना किसी लागके कुमारको निकालनेके लिये आज्ञा दी कुमारने अपनी बुद्धिमानीसे बिना किसी लागके उसे बाहिर निकाल दिया इसलिये कुमारकी उस दिनसे और भी विशेष प्रसिद्धि हो गई ॥२५४॥

अमरावतीमें उस समय एक भरत नामका चित्रकार भी रहता था एक दिन जंगलमें जाकर उसने महाविद्या सिद्ध करनेके लिये पद्मावती देवीकी आराधना की। जिस समय वह विद्या सिद्ध हो गई तो नागोंका मुकुट धारणकर वह प्रत्यक्ष हुई और स्नेहमय वचनोंमें इस प्रकार कहने लगी प्रिय वत्स! जिस वरके मांगनेके लिये तुम्हारी रुचि हो उस वरको मांगो मैं तुमसे प्रसन्न हूं। उत्तरमें भरतने कहा महामाता! मुझे इस प्रकारकी चित्र

शुद्धि प्रदान करिये जिस चित्रशुद्धिकी कृपासे बिना देखे हुए पदार्थको भी पटपर अङ्कित कर सकूं। तथास्तु, कह कर महाविद्या सिद्ध हो गई। उस महाविद्याके प्रभावसे चित्रकार भरतकी सारे देशमें ख्याति हो गई एवं अपनी चित्रकलासे मैं समस्त लोकको आनन्दित करता हुआ सानन्द अपने घर रहने लगा ॥ २५८ ॥ अनेक सज्जनोंसे व्याप्त सिंधु देशमें एक विशाला नामकी नगरी है। उस समय उसका पालन करनेवाला राजा चेटक था और उसकी मुख्य पटरानी सुभद्रा थी। महाराणी सुभद्रासे उत्पन्न सात पुत्रियां थीं जो कि बिंबाफलके समान लाल ओठोंकी धारक थीं और कामदेवकी परम प्यारी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियदत्ता था और उसका कुण्डलपुरके स्वामी नाथवंशीय राजा सिद्धार्थके साथ विवाह हुआ था ॥ २६० ॥ दूसरी कन्या मृगावती का विवाह वत्स देशके कौशांबीपुरके स्वामी महाराज पिनाकके साथ हुआ था। तीसरी कन्या वसुप्रभा थी और उसका विवाह दशार्ण देशके हेरकच्छपुरके स्वामी राजा दशरथके साथ हुआ था तथा चतुर्थ कन्या प्रभावतीका विवाह कच्छदेशके रोरुकपुरके स्वामी महाराज महानुदयीके साथ हुआ था। बाकी ज्येष्ठा चन्दना और चेलना ये तीन कन्या अभीतक अविवाहित थीं। प्रसिद्ध चित्रकार भरत घूमता २ एक दिन विशाला नगरीमें आ पहुंचा। एक पट्टपर उसने सातों कन्याओंकी तसवीर अङ्कित की जो कि चित्रकलाके गुणोंसे युक्त थी तथा महाराज चेटकको दिखाई जिसे देख राजा चेटक भरतकी चित्रकलाकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ २६२ ॥ किसी दिन ज्येष्ठा आदि तीनों कन्यायें मिलकर चित्रकार भरतके पास गईं एक विचित्र प्रकारकी हँसी हँसकर इस प्रकार उससे कहने लगीं—चित्रकार! हम जब तुम्हारी चित्रकलादिकी निपुणता समझें जब तुम कुमारी चेलनीका नग्नरूप शीघ्र चित्रित कर दो चित्रकार भरतको यह बात कोई कठिन न थी, देखते देखते उसने चित्र बनाकर तैयार कर दिया एवं महाविद्याके प्रभावसे जो भी चेलनीके गुप्तस्थानोंमें तिल आदि चिह्न थे सब उस चित्रमें अङ्कित कर दिये ॥ २६५ ॥ संसारमें चुगल खोरोंकी कमी नहीं, चेलनीका वह नग्नचित्र देखकर एक चुगुलखोर शीघ्र राजा चेटकके पास पहुंचा और यह कहने लगा—राजन्। चेलनीके गुह्य स्थानोंके चिन्होंको देव भी नहीं देख सकते उन्हें यह आपका चित्रकार कैसे जानता है। यह बड़ी विचित्र बात है ॥ २६६ ॥ चुगुलखोरकी यह बात सुन राजा चेटकको भी भरतपर संदेह हो गया इसलिये वह बिना ही विचारे प्रबल ईर्षासे कुपित हो गया। राजाके क्रोधका पता चित्रकार भरतको भी लग गया। मारे भयके वह एकदम कंप गया और शीघ्र ही राजगृह नगरके लिये रवाना हो गया। राजगृहमें जाकर कन्या चेलिनीका चित्र महाराज श्रेणिकको दिखाया जिसे देख

वे चित्राम सरीखे निश्चल हो गये ॥ २६८ ॥ कुछ देर बाद स्वस्थ होनेपर उन्होंने भरतसे पूछा—कहो भाई ! चित्रमें अङ्कित यह मनोहर रूप किसका है ? महाराजको अपने अनुकूल समझ भरतने बड़े आदरसे कहा—राजन् ! आप सुनिये मैं समस्त वृत्तांत कहता हूं—सिंधु देशकी विशाला नगरीके स्वामी राजा चोटक हैं उनकी पटरानीका नाम सुभद्रा है उससे उत्पन्न एक चोलनी नामकी कन्या है जो कि गंभीर नाभिकी धारक है। कृशोदरी है। प्रौढ़ ओर उन्नत नितंबवाली है। बिंबाफलके समान ओष्ठवाली, कामदेवके आनन्दकी भूमि, विशाल हृदयको धारण करनेवाली चन्द्रमुखी एवं साक्षात् सरस्वती सरीखी है उसीका चित्र यह आपके सामने विद्यमान है। चित्रकार भरतसे इस दिव्य वर्णन युक्त कन्याको सुनकर महाराज श्रेणिक मन ही मन गहरी चिंतामें लीन हो गये। ठीक ही है चित्र मनुष्योंको शल्य (कील) के समान दुःख देता है अर्थात कीलके गड़ जानेपर जिस प्रकार गहरी वेदनाका अनुभव होता है उसी प्रकार चित्र भी हृदयमें चुभ जानेपर विशेष दुःख भुगाता है ॥ २७२ ॥ जिस समय महाराज चिंतामें लीन थे उसी समय कुमार अभय राज सभामें आये एवं अपने पूज्य पिता महाराजको दुःखित और चिंतित देख जल्दी उस दुःख और चिंताका कारण पूछने लगे—महाराजके मनमें जो बात थी उन्होंने कह दी एवं यह भी कहा कि यह बात होनी कठिन है। धीर वीर कुमार अभयने नरोत्तम महाराजको उत्तर दिया—दयालु पिता ! तुम्हें तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये जो बात आपको रूचेगी मैं उस पूरी कर दूंगा। कुमार अभयके ये वचन सुन पुनः महाराजने कहा—प्यारे पुत्र ! तुम अवश्य बुद्धिमान हो और हरएक कार्य कर सकते हो परन्तु तुम्हारे लिये यह कार्य करना कठिन होगा क्योंकि राजा चोटक जैनधर्मका भक्त है और मैं बौद्ध धर्मका सेवक हूँ इसलिये विधर्मी जान मुझे वह अपनी कन्या न दे सकेगा। धीर वीर कुमारने उत्तर दिया आप चिन्ता न कीजिये जिस रूपसे बनेगा मैं चोलनीकी प्राप्तिका ठीक उपाय करूंगा ॥ २७७ ॥ बस परम जिनधर्मी उस कुमारने क्या काम किया कि अनेक व्यापारियोंका स्वामी बन और कुछ जैन लोगोंको साथ लेकर छलसे विशाला पुरीमें जा पहुंचा। रत्नमयी भेंट लेकर वह राजा चोटकसे मिला। राजा चेटकने भी कुमारका पूर्ण सन्मान किया एवं इस प्रकार मनोहर वचनोंमें बात चीत की—आप महानुभाव मोक्षप्राप्तिके अभिलाषी धर्मात्मा हैं। मेरो इस पुरीमें आप ठहरें क्योंकि जो महानुभाव जैनी हैं। जैनधर्मका पालन करते हैं वे हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। मित्र हैं और धन एवं बांधव भी वे ही हैं। कुमार अभय अत्यन्त चतुर व्यक्ति थे राजा चेटकका जब उन्होंने यह आग्रह देखा तो उन्होंने राजमहलके पास

ही ठहरनेके लिये मकान लेनेकी प्रार्थना की। राजा चेटकने धर्मात्मा जान उनकी प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे
सानन्द वहां ठहर गये ॥ २८१ ॥ एक दिन कुमार अभय अपने साथियोंके साथ उत्साह पूर्वक बड़े उच्चस्वरसे
भगवान जिनेंद्रकी पूजा कर रहे थे। राज महलके समीप होनेसे बराबर शब्द रणवासतक पहुंचता था। पूजाकी
ध्वनि सुन ज्येष्ठा चन्दना और चेलनी तीन कन्यायें चलीं आईं और कुमार अभयसे इस प्रकार पूछने लगीं—
कामदेवके समान आकृतिके धारक महानुभाव। आपका यहांपर आना किस देशसे हुआ है ? उत्तरमें कुमारने
कहा—हम लोग राजगृह नगरसे आये हुए हैं जहांपर कि महाराज श्रेणिक न्याय पूर्वक प्रजाका अच्छी तरह
पालन करते हैं। कन्याओंने फिर पूछा—महाराज श्रेणिक कैसे राजा हैं ? कुमार अभयने उनके सामने महाराज
श्रेणिकका चित्रपट फैला दिया एवं स्पष्टरूपसे उनका स्वरूप दिखा दिया जिसे देख तीनों कन्यायें इस रूपसे
निश्चल खड़ी रह गईं मानों कील दीं हैं एवं इस प्रकार खेद प्रगट करतीं बोलीं—हे परम जिनधर्मी महानुभाव !
हमें इस प्रकारके उत्तम वरकी प्राप्ति कहां हो सकती है ? बुद्धिमान कुमार अभय उनके मनका भाव पहिचान
गये एवं "मैं महाराज श्रेणिकसे मिला सकता हूँ" ऐसा वायदा कर पहिलेहीसे अपने मकानसे राज महलतक
जो सुरंग खुदवा रक्खी थी उससे आनेका इशारा कर दिया। रूपकी लोलुपी वे कन्यायें सुरंगमें होकर अभय
कुमारके मकानकी ओर चल दीं परन्तु आते आते ज्येष्ठा और चन्दनाको कुछ संदेह हो गया इसलिये ज्येष्ठा
हार लेनेके बहाने और चन्दना अपनी मुद्री लेनेके बहानेसे पीछे लौट गईं। अकेली विचारी चेलना रह गई।
कुमार अभयने उसे अपनी ओर खींच लिया एवं उसे साथ लेकर राजगृहपुरकी ओर चल दिये ॥२८६॥ चेलिनी
के साथ कुमार अभयका आना सुन महाराज श्रेणिक अनेक सामंतोंसे वेष्टित हो उनके सन्मुख आये। जिनमती
नामके मन्दिरमें चेलिनीके साथ उनका पाणिग्रहण हो गया जिससे वे सुख पूर्वक रहने लगे ॥ २८७ ॥

एक दिन महारानी चेलिनी गृहस्थोंके आचारसे रहित बौद्धधर्मको आचरण करते महाराज श्रेणिकको देख
कर चित्तमें बड़ी दुःखित हुई एवं गद्गद् स्वरसे इस प्रकार रोने लगी—हा कामकी व्यथासे पीड़ित मुझे चतुर
अभय कुमारने ठग लिया। बातोंमें फुसलाकर विधर्मी राजाके साथ मेरा विवाह करा दिया। धर्मकी यहां कुछ
भी मर्यादा नहीं सूझ पड़ती इसलिये मैं इस समय क्या करूं ? क्योंकि बिना धर्मके जीवन विफल है ॥२८८॥
बस अत्यन्त दुःखित हो उसने खाना बोलना सब छोड़ दिया जिससे वह एकदम दुर्बल हो गई। उसकी ऐसी
दुःखदायी अवस्था देख महाराज श्रेणिकने पूछा—प्रिये ! क्या कारण है जो तुम दिनों दिन दुर्बल होती चली

जाता हो ? उत्तरमें चोलिनीने कहा—प्राणनाथ ! मेरा विवाह तो हुआ परन्तु मैं निकृष्ट स्थानमें लाकर डाल दी गई क्योंकि सिवाय जैनधर्मके संसारमें अन्य कोई भी धर्म नहीं सब धर्माभास हैं। राजन् ! जिस प्रकार महा-निकृष्ट कुत्तेके चमड़ेमें गंगाजल सरीखा पवित्र जल भर दिया जाता है, कौन पदार्थ कैसा है ? तनिक भी विचार नहीं किया जाता उसी प्रकार कुत्तेके चामके समान आपके घरमें मैं गंगाजल सरीखी आ गई हूँ तथा जिस प्रकार राहुके विद्यमान रहते भी उसकी स्त्री विधवा ही मानी जाती है अर्थात् परमतमें राहुको केवल शिरस्वरूप ही माना है इसलिये रोहिणीके लिये उसका रहना न रहना एकसा है उसी प्रकार बिना धर्मके मेरा महाराणीपद भी व्यर्थ है। तथा जो शूद्र पतित हैं उनके लिये वेद पढ़नेका अधिकार नहीं यदि वे पढ़ें तो उनका पढ़ना निकृष्ट माना जाता है उसी प्रकार मैं पवित्र वेदस्वरूप हूं यह घर पति शूद्रस्वरूप है इसलिये मेरा यहां रहना अयुक्त है अतः राजगृहमें आना मेरा बड़ा दुःखदायी हुआ। महाराणी चोलिनीके ऐसे वचन सुन उत्तरमें महाराजने कहा—हिरणीके समान नेत्रवाली महाराणी। जिस तरह तुम जैनधर्मको ही धर्म समझ रही हो उस प्रकार मेरा भी यह दृढ़ सिद्धांत है कि संसारमें बौद्धधर्म ही महाधर्म है। उससे बढ़कर कोई धर्म नहीं क्योंकि राज्य सुख धन जितने भी उत्तम पदार्थ हैं इस बौद्धधर्मकी ही कृपासे प्राप्त होते हैं। महाराणी चोलिनीको जैनधर्मका परिपूर्ण श्रद्धान था महाराजकी बात उसे सहन न हो सकी इसलिये उसने शीघ्र ही उत्तर दिया—राजन् ! भगवान जिनेन्द्र स्याद्वाद-अनेकांत वादके स्वामी हैं। राग द्वेषसे रहित हैं। ध्यानमें लीन हैं। केवलज्ञानसे युक्त होनेसे सर्वज्ञ हैं। स्वयं तरनेवाले और दूसरोंको भी तारनेवाले हैं। भगवान जिनेन्द्रके समान बौद्धधर्मके शोद्धोधन आदि देव नहीं हो सकते ॥ २९५ ॥ तथा जैनधर्मके अन्दर परिग्रहरहित निर्ग्रंथ गुरु माने जाते हैं। निर्ग्रंथ गुरुओंके समान संसारमें अन्य गुरु नहीं हो सकते बस इस प्रकार अपने मत-जैनमतका स्थापन कर और बौद्धमतका खंडनकर महाराणी चोलिनी शांत रह गई ॥ २९६ ॥ महाराज श्रेणिकने भी कुछ भी न कहकर यही कहा प्रियरानी ! तुम इच्छानुसार अपने देव जिनेंद्रकी पूजा आदि करो दुःख छोड़ो एवं जिस रूपसे तुम्हें रुचे एकाग्रचित्त हो अपने धर्मकी आराधना करो ॥ २९७ ॥ राजा श्रेणिकसे बौद्ध गुरुओंने सुना कि महाराणी चोलनीको जैनधर्मके अन्दर बड़ा आग्रह है इसलिये वे चोलनीके महलमें उसे समझानेके लिये आये और नी गुरुता प्रगट करते हुए यह कहने लगे—अरी मूर्ख लड़की ! तू जो जैन गुरुओंकी प्रशंसा करती है यह तेरा अज्ञान है। जैनियोंके गुरु कुगुरु हैं। यदि उन्हें नग्न मानकर ही गुरु माना जाय तो नग्न तो पशु भी हैं उन्हें भी गुरु मानना चाहिये। देख हमलोग

समझना चाहिये। बौद्ध
ज्ञानरूपी समुद्रकी पारपर पहुंचे हुए हैं—परम ज्ञानी हैं इसलिये हमको ही तुझे गुरु
गुरुओंके वचन सुन बुद्धिमती रानी चेलनीने विशेष विवाद करना उचित नहीं समझा बस यही उत्तर दिया
कि यदि आपका धर्म इतना उत्तम है तो मैं आप लोगोंको भोजन कराकर आपका धर्म ग्रहण करूंगी इस बातमें
जरा भी संदेह नहीं ॥ ३०० ॥ दूसरे दिन रानीने बौद्ध साधुओंको निमन्त्रण दे भोजनके लिये बुलाया। उन्हें
भोजनके लिये बैठा दिया। एक एक जूता उनका उठवा मंगाया। खूब पीसकर उसे निकृष्ट छाछमें डाल मसाला
मिला दिया और थोड़ा थोड़ा कर सबोंको परोस दिया गया। वे भी कोई स्वादिष्ट चीज जान खा गये। जब
बाहिर आकर अपने मठको जाने लगे तो जूते खोजने लगे। गुरुओंके जूतोंकी चोरीका राजमहलमें हुल्लड़ मचा
रानी चेलनीने भी वह हुल्लड़ सुना। उसने यही कहा कि बौद्धगुरु तो सर्वज्ञ हैं वे अपने दिव्य ज्ञानसे समझें
कि उनके जूते कहां हैं ? रानीके ये वचन सुन बौद्ध गुरु अवाक् रह गये। झक मार उन्हें यही कहना पड़ा कि
हमारा ज्ञान ऐसा नहीं जो यह बात जान सके। थोड़ी देर बाद निकृष्ट छाछ खानेके कारण उन्हें वमि हो गई।
वमिमें जूतोंके छिलके निकले इसलिये वे बड़े लज्जित हुए और चुपचाप अपने मठोंको चले गये ॥२०१॥ रानीने
बौद्ध गुरुओंका जो अपमान किया था सारा हाल महाराजसे जाकर सुनाया गया। अपने गुरुओंकी यह अवज्ञा
सुन उन्हें भी बड़ा क्रोध आया वे रानीके पास आये और उलहनोंके साथ उल्टी सीधी सुना कर यही कहने लगे
देखो रानी ! बौद्ध धर्म ही महा धर्म है उससे भिन्न अन्य कोई भी संसारके अन्दर उत्तम धर्म नहीं। तुम्हें
उसकी इस रूपसे अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। महाराजको कुपित देख रानी विशेष कुछ न कहकर यही कहने
लगी—महाराज ! यदि आप बौद्ध धर्मको ही सर्व श्रेष्ठ धर्म मानते है तो अच्छी बात है 'क्षणिक' धर्मके अनु-
यायी बौद्ध गुरु जिस समय ध्यानमें लीन होंगे उस समय मैं उनकी परीक्षाकर आपका धर्म धारण करूंगी आप
विश्वास रक्खें। एक दिन जब कि समस्त बौद्ध साधु ध्यानमें लीन थे उस समय रानी चेलनी उनके मठमें
गई। पासमें खड़े रहने वाले किसी मनुष्यसे यह सुनकर कि "यद्यपि इन साधुओंके शरीर यहां पड़े दीखते हैं
परन्तु इनकी आत्मा ध्यानके योगसे इस समय सिद्धालयमें विराजमान है" उनकी असली परीक्षा करनेके लिये
रानीने सखीके हाथसे मठमें आग लगवा दी। ढोंग कबतक चल सकता है ? आगको देखते ही वे समस्त साधु
मठ छोड़कर एकदम भाग गये। रानी चेलिनीके इस कृत्यका पता महाराज श्रेणिकको लग गया वे शीघ्र रानी
के पास आये और इस प्रकार उससे कहने लगे—रानी ! साधुओंके मठमें जो तूने आग लगाई है यह बड़ा ही

निन्दनीक और दुःखदायी कार्य किया है ऐसा निन्दनीक और दुःखदायी कार्य तुझे नहीं करना चाहिये। तूं तो जैनधर्मकी पालन करने वाली और दया करनेमें पंडिता समझी जाती है जरा बता तो सही तूने मठको जलाकर जीवोंके विध्वंस करनेका कार्य कैसे कर डाला ? महाराजके ये वचन सुन मुस्कराकर रानी चोलिनीने कहा—नरनायक प्राणनाथ ! एक मनुष्यके कहे अनुसार मैंने ये समझा था कि ये समस्त साधुगण मोक्षमें चले गये हैं। तथा यह निश्चित बात है कि जबतक शरीरोंके अन्दर लालसा रहती है तबतक संसारमें घूमना पड़ता है और संसारमें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। उनका यह समस्त दुःख नष्ट हो जाय इस आशासे मैंने उनके मठमें आग लगवा दी थी। मैं इसी विषयको लेकर एक कथा सुनाती हूँ आप ध्यान पूर्वक सुनें—वत्सदेशमें एक कौशांबी नामकी नगरी है जो कि पृथ्वीपर प्रसिद्ध और शुभ है। किसी समय उसका पालन करने वाला राजा वसुपाल था और उसकी रानीका नाम यशस्विनी था जिसकी कि कीर्ति अनुपम गुणोंसे सर्वत्र व्याप्त थी एवं वह संसारमें प्रसिद्ध और हरिणीके समान मनोहर नेत्र वाली थी ॥ ३०९ ॥ उस नगरीमें एक सागरदत्त नामका सेठ भी रहता था जो कि सागरके समान अपरिमित धनका स्वामी था, पराक्रमी था एवं राज्यमान्य और विद्वानोंमें श्रेष्ठ था ॥ ३१० ॥ उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था और वह सेठ सागरदत्तके मनरूपी (रात्रि-विकासी) कमलके प्रसन्न करनेमैं चांदनी सरीखी थी। चन्द्रमाके समान मुख वाली थी। विचारशील तन्वंगी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान थी ॥ ३११ ॥ उसी नगरीमें एक सुभद्रदत्त नामका और भी सेठ निवास करता था जो कि उत्तम क्रियाओंके करनेमें प्रधान था और धर्मकार्योंके करनेमें अत्यन्त बुद्धिमान समझा जाता था। उसकी स्त्रीका नाम अछिदत्ता था जो कि निर्मल मुखसे शोभायमान थी ॥ ३१२ ॥ दोनों सेठोंने आपसमें प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि मेरे पुत्र होगा और तुम्हारे पुत्री होगी अथवा मेरे पुत्री होगी और तुम्हारे पुत्र होगा तो उन दोनोंका आपसमें विवाह कर दिया जायगा इसमें कोई सन्देह नहीं। इस प्रतिज्ञाके बाद बहुत कालके बीत जानेपर सेठ सागरदत्तकी सेठानीसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमित्र रक्खा गया और उसका स्वरूप सर्प सरीखा था। तथा सेठ समुद्रदत्तके सेठानी अछिदत्तासे उत्पन्न एक पुत्री हुई जो कि रूप और कलाकी खानि थी और नागदत्ता उसका नाम था। प्रतिज्ञाके अनुसार उन दोनोंका विवाह हो गया और वे अपने भाग्यानुसार रहने लगे ॥ ३१५ ॥ नागदत्ताकी मा अछिदत्ता अपनी पुत्रके दुःखका स्मरण कर रो रही थी कि उसपर नागदत्ताकी दृष्टि जा पड़ी एवं अपनी माताको रोते देखकर वह इस प्रकार कहने लगी—मा ! बिना

कारण तू इस समय क्यों रो रही है ? उत्तरमें अछिद्त्ताने कहा—पुत्री ! तू तो मृगलोचनी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान परम सुन्दरी है और तुझे पति सर्पके आकारका मिला है। प्रियपुत्री ! मैं इसी दुःखका स्मरण कर रो रही हूँ ॥ ३१७ ॥ माताके ये वचन सुन नागदत्ताने कहा—मा ! तू किसी प्रकारका दुःख मत करे, मेरा पति रातमें सर्पका शरीर छोड़कर मनुष्यका रूप धारण कर लेता है। समस्त रात्रि मनुष्य रूपसे ही मेरे साथ रमण किया करता है किन्तु जब प्रातःकाल होता है उस समय पुनः सर्पका शरीर धारण कर लेता है और सारे दिन सर्पाकारसे रहता है। पुत्रीके ये वचन सुन अछिद्त्ताने कहा यदि यह सत्य है तब वह सर्पका शरीर मेरे पास भेज देना जिससे मुझे भी निश्चय हो जाय। नागदत्ताने अपनी माकी बात मान ली। अवसर पाकर एक दिन वह सर्पका शरीर उसने अपनी माके पास भेज दिया। उसकी माने उसे अग्निमें जला दिया बस उस दिनसे वह नागदत्ताका पति मनुष्यरूपसे ही रह गया। प्रिय महाराज ! यही समझ कर मैंने बौद्ध सन्यासियोंके मठमें आग लगवा दी थी क्योंकि मुझे निश्चय हो गया था कि समस्त बौद्ध साधु तो सिद्ध होकर मोक्षमें जा विराजे हैं। ये जो इनके कलेवर रह गये हैं वे व्यर्थ पड़े हैं। इनको जला देना ही अच्छा अन्यथा फिर उन्हें आकर इन कलेवरोंको धारण करना पड़ेगा और दुःख सहना होगा ॥ ३२१ ॥ महाराणी चेलनाके ये वचन सुन महाराज कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सके किन्तु असमर्थ हो यही कहने लगे बावा ! तुझे सूझे सो कर तुझसे कुछ कहना व्यर्थ है ॥ ३२२ ॥ एक दिन महाराज श्रेणिक अनेक सुभटोंके साथ शिकारके लिये गये। वनके मध्यभागमें उन्हें यशोधर नामके मुनिराज दीख पड़े। उन्हें देख अपने साथी सुभटोंसे उन्होंने पूछा—नग्न जटाधारी निश्चल और अपने शरीरकी प्रभामण्डलसे व्याप्त यह कौन है ? उत्तरमें सुभटोंने कहा कृपानाथ ! यही तो महाराणी चेलिनी का गुरु है। राजा श्रेणिक तो महाराणी चेलिनीसे अपने गुरुओंका बदला लेनेके लिये लालायित थे ही। "यह चेलिनीका गुरू है" यह बात सुनते ही मारे क्रोधके उनकी आत्मा भभक उठी वे मन ही मन विचारने लगे— रानीने अनेक प्रकारके उपद्रव कर इस समय मेरे गुरु व्याकुल कर रक्खे हैं। इस समय रानीसे गुरुओंका बदला लेनेका मुझे अवसर मिला है बस इस प्रकार पापोंका संचय करने वाला विचार कर यमराजके समान राजा श्रेणिकने तेज दाढ़ोंके धारक शीघ्र ही पांचसौ कुत्ते मुनिके ऊपर छोड़ दिये परन्तु जैसे ही वे मुनिराजके पास पहुंचे उनके प्रभावसे कुत्तोंकी यह विचित्र दशा देखकर राजा श्रेणिकका क्रोध और भी अधिक भभक गया वे कहने लगे इस दुष्ट पाखंडीने मन्त्रोंसे कुत्तोंको कील डाला बस स्वयं वह मूर्ख राजा मुनिराजकी ओर झपटा और

भयंकर महानागको मार कर उनके गलेमें छोड़ दिया ॥ ३२८ ॥ राजा श्रेणिक राजगृह नगर लौट आये। राज-काजकी विशेष झंझटसे तीन दिन तक तो वे रानी चेलिनीके महलमें न जा सके। चौथे दिन वहां गये और ठीक आधी रातके समय मुनिराजके साथ जो दुर्व्यवहार उन्होंने किया था वह सारा हाल रानी चेलनासे कह सुनाया धर्म भक्त रानी चेलनाने जिस समय भयंकर समाचार सुना वह एकदम कांप गई और अनेक प्रकारसे शोक करने लगी। उसकी यह दुःखित अवस्था देख महाराज श्रेणिकका भी हृदय पसीजने लगा वे बार बार महा-राणीसे यही कहने लगे—सुन्दरी तू रंचमात्र भी शोक न कर। वह मंत्रवादी पाखण्डी साधु था। गलेसे सर्प फेंककर वह अवश्य कहीं चला गया होगा। महाराजके ये वचन सुन चेलिनीने कहा—राजन्! यदि वह मेरा पवित्र गुरु होगा तो वह महामुनि वहांका वहीं विराजमान होगा वहांसे कहीं भी न जा सकेगा। ऐसा कहकर वह रानी चेलिनी उसी समय राजाके साथ मुनिराज यशोधरके स्थानपर पहुंची। मुनिराज एकदम ध्यानारूढ़ थे—मुझे क्या कष्ट दिया जा रहा है इस बातका उन्हें रंचमात्र भी विचार न था। मुनिराजको ध्यानारूढ़ देख धर्मभक्त चेलना हाय हाय कहने लगी। जल्दीसे पासमें जाकर सड़सीसे सर्प खींच कर नीचे डाल दिया। चिउंटी भी पोंछकर साफ कर दी। पीछे धर्मध्यानमें स्थित उन मुनिको भक्ति पूर्वक प्रणाम किया ॥ ३३२ ॥ वे मुनिराज परम वीतरागी थे। सदा शत्रु और मित्रोंमें समानताकी भावना भाते रहते थे। जिस समय "तुम्हारी धर्मवृद्धि हो" यह मुनिराजने आशीर्वाद दिया—अपनी भक्त रानी और द्वेषी राजामें कुछ भी भेद-भाव न रख दोनोंको समान रूपसे समझा। उस समय मुनिराजकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लज्जित हुए एवं अपने मनमें उग्र दुःख करने लगे ॥ ३३९ ॥

मुनिराजके शिष्ट वर्तावसे वे मन ही मन यह विचारने लगे हाय मैंने श्रीमुनिराजके मारनेका घोर पाप किया है, मुझे धिक्कार है। मुनिराज दिव्य ज्ञानी थे अपने ज्ञानसे उन्होंने राजाके मनकी बात जान ली इसलिये वे यही कहने लगे कि—राजन्! तुम्हें अपने चित्तमें किसी प्रकारका दुःख नहीं करना चाहिये जो शुभ और अशुभ कर्म किया गया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥ ३३६ ॥ मुनिराजके ये अचरज भरे वचन सुन महाराज श्रेणिकने चेलिनीसे कहा—प्रिये! मेरे मनकी भीतरकी बात मुनिराजने कैसे पहिचान ली? उत्तरमें चेलिनीने कहा—प्राणनाथ! इस बातके लिये आप क्या अचरज कर रहे हैं मुनिराजने जो आपके मन-का भाव पहिचान लिया यह तो बहुत ही तुच्छ बात है यदि आप पूछना चाहें तो अपने पूर्वभवोंका भी हाल

पूछ सकते हैं। चेलिनीकी यह बात सुनकर महाराज श्रेणिकने अपने पूर्वभवोंको पूछने की मुनिराजसे लालसा
प्रगट की। मुनिराज भी अपनी गम्भीर ध्वनिसे इस प्रकार कहने लगे—इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र सम्बन्धी
आर्य खण्डमें एक सूरकांत नामका देश है। इस सूरकान्त देशमें एक सूरपुर नामका नगर है उसका स्वामी
राजा मित्र था। उसकी पटरानीका नाम भामिनी था और उन दोनोंके सुमित्र नामका पुत्र था। राजा मित्रके
प्रधान मन्त्रीका नाम मतिसागर था उसकी स्त्रीका नाम रूपिणी था और उससे सुषेण नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था।
राजपुत्र सुमित्र मन्त्रिपुत्र सुषेणके साथ सदा क्रीड़ा करता था। सरल चित्त मन्त्रिपुत्रको वह खेलते समय सदा
सन्ताप दिया करता था एवं जमीन पर डालकर खूब मुक्कोंकी मार मारता था ॥३४२॥ एक दिन वे दोनों बावड़ी
पर जल क्रीड़ा करनेके लिये गये एवं कमलके पत्तोंसे मुंह ढांककर जलके भीतर पैठ गये ॥ ३४३ ॥ कदाचित्
विवेकशाली सौर विशाल नेत्रोंके धारक राजपुत्र सुमित्रको राज्यकी प्राप्ति हो गई। उसे राजा जान मंत्रिपुत्र
सुषेण मन ही मन भ्रमसे यह विचार करने लगा—यह राजा सुमित्र जिस समय कुमार था उस समय भी
मुझे मर्यादासे अधिक सन्ताप देता था। अब यह राजा हो गया है इसलिये यह अब और भी संताप देगा,
बस ऐसा मनमें पंक्का विचार कर वह सीधा बनमें मुनिराजके पास चला गया। उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया
दिगंबरीदीक्षा धारण कर ली एवं सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगा ॥ ३४५ ॥ सुमित्र खिलाड़ी स्वभावका
मनुष्य था सुषेणसे वह किसी प्रकारका द्वेष नहीं रखता था किन्तु उसे बड़े प्रेमसे देखता था। दिगंबरी दीक्षा
ले लेनेके कारण जब सुमित्रका सुषेणसे मिलाप न हो सका तो वह स्नेहसे प्रेरित हो सुषेणको देखनेके लिये
उसके घर गया परन्तु वहांपर उसे मालूम हुआ कि वह मुनि हो गया है इसलिये वह बहुत दुःख मानने लगा
॥३४६॥ एक दिन राजा सुमित्रने सुनी कि सूरपुरके बनमें मुनिराज सुषेण पधारे हैं, वह बड़े प्रेमसे बहुश्रुतके
जानकार मुनिराज सुषेणकी वन्दनाके लिये चल दिया ॥ ३४७ ॥ पास जाकर भक्ति पूर्वक मुनिराजको प्रणाम
किया एवं स्नेहसे विह्वल हो इस प्रकार कहने लगा—हे मित्र! तुम घर चलो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य
दूंगा—किसी बातका तुम्हें क्लेश न होगा। उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन्! संसारमें तप सर्वोत्तम पदार्थ
है, इसीसे राज्य प्राप्त होता है इसीसे स्वर्ग इच्छानुसार द्रव्य मोक्ष एवं संसारके अन्य सुख भी प्राप्त होते हैं।
रतिके समान सुन्दरी स्त्रियां भी इसीसे प्राप्त होती हैं विशेष क्या, संसारमें कोई भी ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं जो
तपसे न मिलती हो ॥३४६॥ मुनिराजके ऐसे गंभीर वचन सुन राजा सुमित्रसे अन्य उत्तर तो न बना किन्तु

बड़े आदरसे वह यह कहने लगा—महाराज ! संसारको बढ़ाने वाले घरमें आनेकी यदि आपकी इच्छा नहीं है तो आप सुख पूर्वक भोजनके लिये मेरे मन्दिरमें तो अवश्य पधारें इसका उत्तर भी मुनिराजने यह दिया—यदि मैं इस रूपसे भी तुम्हारे मंदिरमें भोजनके लिये आऊंगा तो अनुमोदना दोष लगेगा क्योंकि करना कराना और अनुमोदन करना ये प्रायः एक समान हीहैं तथा इस अनुमोदन दोषसे व्रत भंग होगा और व्रतके बिना संसारमें जीना व्यर्थ है। मुनिराजका यह उत्तर सुन राजा सुमित्र और अधिक कुछ न बोल सका बस मुनिराजके बचन सुन और उन्हें नमस्कार कर राजमहल लौट आया एवं अपने पुत्रके समान प्रजाको रंजन करने लगा। एक दिन बैठे ही बैठे उसके मनमें उचंग उठ खड़ी हुई। उसने समस्त नगरमें ड्योढ़ी पिटवा दी और यह घोषणा कर दी—समस्त प्रजाको सूचित किया जाता है कि मुनिराज सुषेणको कोई भी आहार न दे। मेरी आज्ञा न मानकर जो उन्हें आहार देगा वह राजकी ओरसे दण्डित किया जायगा क्योंकि उन्हें आहार देनेका पूरा संकल्प मैंने कर लिया है। केवल मैं ही उन्हें आहार दूंगा ॥ ३५४ ॥ एक मासके उपवासके बाद ध्यान शील वे मुनिराज सुषेण एक दिन आहारके लिये नगरमें आये मुनि चर्याके अनुकूल वे जहां तहां घरोंमें घूमें परन्तु राजाके भयसे किसीने भी उन्हें आहार दान न दिया ॥३५५॥ जिस समय वे राजमहलमें आहारके लिये गये तो उस समय राजा सुमित्रके किसी बैरीका दूत राज सभामें आ गया। उसकी गड़बड़में राजा उन्हें न देख सका। वे मुनिराज अन्तराय कर्मका प्रबल उदय जान बनको चले गये ॥ ३५६ ॥ दो मासके उपवासके बाद वे पुनः पारणाके लिये नगरमें आये। मुनिचर्यानुसार सर्वत्र घूमकर वे आहारके लिये राजमहलमें गये। जिस समय मुनिराज राजमहलमें प्रविष्ट हुए उसी समय राजा सुमित्रके किसी दुष्ट गजने अपने बन्धनका खूंटा तोड़ डाला। सारे महल और नगरमें खलबली पड़ गई बस उस दिन भी मग्न अपने रणवासके राजा मुनिराज को न देख सका एवं दो पक्षोंका और भी आहारका नियम लेकर वे मुनिराज बनको चले गये ॥ ३५८ ॥ तीन मासके उपवासके बाद वे पुनः पारणाके लिये नगरमें आये। आहारके बिना उनका शरीर एकदम क्षीण हो गया था और बड़ी बड़ी जटायें बढ़ गईं थीं परन्तु जिस समय मुनिराजने नगरमें प्रवेश किया उसी समय प्रलय कालके समान नगरमें आग लग गई इसलिये किसी राजादिकी दृष्टि मुनिराज पर न पड़ी। वे अपना अन्तराय समझ बनको लौट गये। उनकी दुःखदायी क्षीण दशा देख कुछ लोग आपसमें कहने लगे—यह राजा बड़ा भारी पापी है न तो स्वयं मुनिराजको भोजन देता है और यदि कोई अन्य दाता देवे भी तो उसे देने नहीं

हो गये । चलते
देता । बस पुरवासी लोगोंके ये शब्द सुन मुनिराज अशुभ कर्मके उदयसे राजापर आग बबूला हो गये । चलते
चलते तीव्र क्रोधसे उनके पैर लटपटाने लगे । असमर्थतासे जमीनपर गिर गये एवं तीव्र क्रोधसे अज्ञानी बन
यह महादुष्ट निदान किया—कि मैं आगे ऐसा होऊं जो इस दुष्टको मार सकूं ॥३६२॥ निदानके तीव्र पापसे वे
व्यन्तर जातिके देव हुए । हा ! इस प्रकारके अनर्थके कारण निदानके लिये धिक्कार है । राजा सुमित्र भी मुनि-
राजका इस प्रकार मरण सुन बड़ा दुःखित हुआ एवं उसी दुःखमें राजकाज त्यागि वह मिथ्या तपस्वी हो गया ।
कुतपके प्रभावसे वह मिथ्या दृष्टि देव हुआ एवं वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिक हुए हो । तुम्हारे वक्षस्थलके
रुधिरका आकांक्षी वह सुषेणका जीव देव अपने निन्दित निदानसे रानी चेलिनीके गर्भमें अवतीर्ण हो गया है
उसका नाम कुणिक होगा वह तुम्हें कठहरेके अन्दर बन्द रक्खेगा एवं उसके निमित्तसे उस कठहरेके अन्दर
ही नियमसे तुम्हारा मरण होगा ॥३६५॥ मुनिराजके मुखसे अपने पूर्व भवका वृत्तांत सुन राजा श्रेणिकको भी
अपने पूर्व भवका स्मरण हो गया एवं जैनधर्मका श्रद्धानी हो वह अपने राजमहल लौट आया ॥ ३६६ ॥ बौद्ध
साधुओंने सुना कि राजाने बौद्धधर्मका आचरण छोड़ दिया है और वह जैनधर्मका सेवक बन गया है । वे सबके
सब राजाके पास आये, बहुतसी तर्क वितर्कें हुईं । अन्तमें जब उनकी एक भी न चली तो उन्होंने यही कहा—
राजन् ! तुम जैनधर्मको धारण तो करते हैं परन्तु ठीक समझ सोचकर धारण करना जिससे पीछे पश्चाताप न
करना पड़े ॥ ३६७ ॥ बौद्ध गुरुओंके बचनोंका राजा पर कुछ असर पड़ गया । जैनधर्मकी परीक्षाका कौतूहल
उसके शिरपर सवार हो गया । एक दिन उसने आहारके स्थानपर रानीसे छिपाकर कुछ हड्डी आदि अपवित्र
पदार्थ गढ़वा दिये और रानीसे यह कह दिया कि तुम जैन मुनियोंको आहार दान दिया करो । रानी चेलिनी
बड़ी चतुर थी उसने राजाका अभिप्राय पहिचान लिया और वह चौकन्नी हो गई ॥३६८॥ एक दिन तीन मुनि-
राज मन्दिरमें आहारके लिये आये । रानीने तीन अंगुली उठाकर यह भाव प्रगट किया कि मनोगुप्ति बचनगुप्ति
और कायगुप्ति तीनों गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मन्दिरमें आहारके लिये ठहरें । तीनों गुप्तियोंका धारक एक
भी मुनि न था इसलिये वे अपनी दो दो अंगुलियां दिखाकर बनको चले गये । उनके बाद एक गुणसागर नाम
के मुनिराज आये । रानीने उनको भी तीन अंगुली उठाकर अपने हृदयका भाव प्रकट किया, वे मुनि तीनों
गुप्तिओंके धारक थे एवं तीन गुप्तिओंका धारक नियमसे अवधिज्ञानी होता है इसलिये वे अवधिज्ञानी भी थे
बस रानीके बचनानुसार उन्होंने अपनेको उपयुक्त समझा । वे खड़े रह गये राजाने उनके चरणोंका प्रक्षाल

किया। घरके मध्य भागमें आहारके लिये वे भाव पूर्वक जाकर स्थित ही हुए थे कि उन्होंने अवधिज्ञानकी ओर अपना उपयोग लगाया एवं अवधिज्ञानके बलसे चाम हड्डी आदि अपवित्र पदार्थोंको उन्होंने जान लिया। वे अपना अन्तराय समझ बनकी ओर चले गये। गुणसागरके विषयमें तो राजाने कुछ भी नहीं कहा किन्तु उनसे पहिले जो तीन मुनिराज आहार बिना ही लिये बनको चले गए उनके विषयमें यह पूछा—प्रिय रानी ! तीन मुनि जो आहारके लिए राजमन्दिरमें आये थे वे बिना ही आहारके राज मन्दिरसे क्यों लौट गए ? उत्तरमें रानीने कहा—प्राणनाथ ! मैं भी कुछ नहीं समझ सकी चलो अपने दोनों उनके पास चलें और उनसे बिना आहार लिए लौट आनेका कारण पूछें। बस दोनों सवारियोंपर चढ़कर बनकी ओर चल दिये ॥ ३७४ ॥ सबसे पहिले वे धर्मघोष नामक मुनिराजके पास गये। उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं राजाने इस प्रकार उनसे पूछा स्वामिन् ! आहारके लिये आप राजमन्दिर पधारे थे परन्तु आहार बिना ही ग्रहण किये आप वापिस क्यों चले आये। उत्तरमें मुनिराजने कहा—सुनो राजा जिस समय हम राजमन्दिरमें आहारके लिये गये थे उस समय रानी चेलिनीने तीन अंगुली उठाकर यह प्रगट किया था कि तीन गुप्तियोंके पालक मुनिराज मेरे यहां आहारके लिये तिष्ठें। जिनके तीनों गुप्तियां न हों वे न तिष्ठें। हमारे तीनों गुप्तियां नहीं थीं इसलिये हम वहां आहारके लिये नहीं ठहरें। न ठहरनेका अन्य कोई कारण न था। मुनिराजके ये वचन सुन राजा श्रेणिकने पूछा—महाराज ! तीनों गुप्तियोंमें आपके कौनसी गुप्ति नहीं है ? मुनिराजने कहा—हमारे मनोगुप्ति नहीं है। राजाने फिर पूछा महाराज ! आपके मनोगुप्ति क्यों नहीं है ? उत्तरमें मुनिराजने अपने मनोगुप्ति न होनेका कारण इस प्रकार खुलासारूपसे वर्णन किया—कलिंगदेशमें एक दन्तपुर नामका नगर है। मैं वहांका एक बहुत बड़ा राजा था। भोजनके लिये विहार करता करता मैं एक कौशांबी नगरीमें जा निकला। वहांके राजाके मंत्रीका नाम गरुड़दत्त था और उसकी स्त्री गरुड़दत्ता थी। गरुड़दत्ताने मुझे आहारसे लिये ठहरा लिया और विधिपूर्वक वह मुझे आहार देने लगी। जिस समय वह केवल मुझे ही आहार दे रही थी प्रबल कर्मके उदयसे एक ग्रास मेरे हाथसे नीचे जमीनपर गिर गया। ग्रासके गिरते ही मेरी दृष्टि भी उस ग्रासपर पड़ी। रमणी गरुड़दत्ताका पैरका अंगूठा मुझे दीख पड़ा कर्मकी प्रबलतासे उस अंगूठेके देखनेसे मुझे अपनी स्त्रीके अंगूठेका स्मरण उठ आया एवं सहसा मेरे मनमें यह भावना खड़ी हो गई कि अहा ! ऐसा ही सुन्दर अंगूठा मेरी रानीका था। बस राजन् ! उस दिनसे आज तक मेरे मनोगुप्तिका उदय नहीं हुआ इसलिये तीनों गुप्तियोंके न रहनेके कारण मैं राज मन्दिरमें

आहारके लिये न ठहर सका ॥ ३८३ ॥ मुनिराज धर्मघोषकी कथा सुन राजा श्रेणिक उन्हें नमस्कार कर वहांसे उठे। जिनपाल नामक मुनिराजके पास गये वे भगवान उस समय भगवान ऋषभदेवका ध्यान कर रहे थे राजा ने पास आकर उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और यह पूछा—पूज्य मुनिराज! आप मेरे राजमन्दिरमें आहारके लिये गये थे परन्तु आहार बिना ही लिये आप चले आये इसका कारण क्या? उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन् मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये मैं राजमन्दिरमें आहारके लिये नहीं ठहरा। राजाने पुनः पूछा—महाराज! आपके कायगुप्तिका उदय क्यों नहीं हुआ? उत्तरमें मुनिराज अपना सारा हाल खुलासा रूपसे इस प्रकार कहने लगे। भूमितिलक पुरका स्वामी राजा प्रजापाल है। उसकी पटरानीका नाम धारिणी और उससे उत्पन्न एक मृगांक नामकी कन्या है। जो कि गोल और उन्नत नितम्बोंसे शोभायमान है। सूक्ष्मकटिभागकी धारक है और उसका बक्षःस्थल विशाल है। अत्यन्त रूपवती जान चण्डप्रद्योतन नामके राजाने उसे वसुपालसे सरलता पूर्वक मांगी थी परन्तु अभिमानी वसुपालने उसे नहीं दी। चण्डप्रद्योतने क्रोधसे भवक गया। राजा वसुपालको वश करनेके लिये वह चतुरंग सेनासे प्रास हो भूमितिलकपुरकी ओर चल दिया एवं अपनी बलवान सेनासे चारों ओरसे पुर घेर लिया ॥३८६॥ दोनों ही राजा रणकुशल थे। दोनोंका आपसमें प्रति दिन युद्ध होने लगा। उस महारण रूपी समुद्रसे जिनके मस्तक भालोंसे कटे हुये हैं ऐसे पुरुष युद्ध करने लगे। शस्त्रोंके कठोर प्रहारोंसे बड़ी बड़ी हाथीरूपी महाशिलायें पड़ने लगीं। बहुतसे वीरोंका क्षय होने लगा ऐसे भयङ्कर संग्राममें राजा प्रजापालको हार खानी पडी ॥३९२॥ हारकर प्रजापाल खिन्न हो घरमें बैठा ही था कि वनपालके मुखसे उसने मुझ जिनपालका वनमें आना सुना और मेरी वन्दनाके लिये चल दिया एवं मेरे पास आकर और नमस्कार कर वह इस प्रकार विनय पूर्वक कहने लगा—

भगवन्! मैं आपके शरणमें आया हूँ आप मेरी रक्षा कीजिये। सेवकको दुःखी जान उसकी शीघ्र चिन्ता मेटिये मैं तो उस समय कुछ भी नहीं बोला परन्तु वनदेवताकी ओरसे यह आकाश ध्वनि हुई कि—प्रजापाल! तुम किसी प्रकारका भय मत करो विजय तुम्हारी ही होगी। राजा प्रजापालने वन देवताकी इस ध्वनिको मुनिका वचन जानकर और यह पक्का श्रद्धान कर कि मुनियोंका वचन सत्य होता है, वह अपने राजमहल लौट गया एवं तैयारी कर रणभूमिमें आ धमका ॥३९६॥ राजा चण्डप्रद्योतनको किसी कारणसे यह भ्यास गई कि राजा प्रजापालकी ही विजय है इसलिये वह उसे जैनी मान अपने घर जाने लगा। रणके लिये सर्वथा तैयार

पास भेजे और वे कहने लगे कि भाई रणको छोड़कर
राजा प्रजापालने अपने कुछ सुभट राजा चण्डप्रद्योतनके
तुम क्यों जा रहे हो ? उत्तरमें राजा चण्डप्रद्योतनने गंभीर वचनोंमें कहा—समस्त जैनी मेरे बन्धु हैं और मित्र
हैं मुझे उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। राजा प्रजापालके सुभटोंने चण्डप्रद्योतनका सन्देशा उससे जाकर
कह दिया। चण्डप्रद्योतनके ये वचन सुन राजा प्रजापाल प्रसन्न हो गया एवं कामकी मन्जरी स्वरूप अपनी
मृगनयनी कन्याका उसके साथ विवाह कर दिया ॥४००॥ रमणी मृगांका और चण्डप्रद्योतन एक दिन आपस
में रमण क्रीड़ा कर रहे थे उस समय चण्डप्रद्योतनने कहा—प्रिये तुम्हारा पिता जैनी था इसलिये मैंने उसे रण-
संग्राममें छोड़ दिया था यदि कोई दूसरा होता तो मैं उसे नहीं क्षमा करता। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन
रमणी मृगांकाने कहा—प्राणनाथ ! मुनिराज जिनपालने उन्हें अभय दान दिया था इसलिये वे आपसे नहीं
जीते जा सके। अपनी रानीके ऐसे वचन सुन चण्डप्रद्योतनको बड़ा आश्चर्य हुआ वह कहने लगा—मुनियोंकी
तो शत्रु मित्रमें समान बृत्ति रहती है इसलिये न तो वे किसीसे द्वेष कर सकते हैं और न किसीसे राग कर
सकते हैं। तुम जो कह रही हो यदि वह बात सत्य ही है तो चलो अपन मुनिराजके पास चलें और यथार्थ
बात उनसे पूछें बस वे दोनों मुझ जिनपालको बन्दनेके लिये चल दिये। मुझे देखकर भक्ति पूर्वक नमस्कार
किया एवं अपने हृदयका भाव राजा चण्डप्रद्योतन इस प्रकार व्यक्त करने लगा—भगवन् ! योगी लोग किसी
का तो अभय चिन्तवन करें और किसीका नाश चिन्तवन करें क्या यह बात जैनसिद्धान्तमें ठीक मानी गई है ?
मैंने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। मौन धारण कर ध्यान करने लगा। रानी मृगांकाने कुछ भी उत्तर न
देते जब मुझे ध्यान लीन देखा तो उसने राजा चण्डप्रद्योतनसे कहा—नाथ ! मुनिराजने अभय दानका सूचक
वचन नहीं कहा था किन्तु उस प्रकारकी आकाश ध्वनि हुई थी। रमणी मृगांकाके ऐसे वचन सुन दोनोंकी
भ्रान्ति मिट गई और वे दोनों अपने राजमहल लौट आये। मैं भी उस उपसर्गसे अपनेको मुक्त जान राज-
मन्दिरमें आहारके लिये गया। रानी चेलिनीने तीन अंगुली उठाकर यह बात प्रगट की थी कि—यदि आप तीन
गुप्तियोंके धारक हों तो मेरे मन्दिरमें आहारके लिये ठहरें बीच नहीं। राजन् ! हमारे तीन गुप्तियां थीं नहीं
इसलिये हम राजमन्दिरमें आहारके लिये स्थित न हो सके क्योंकि यह नियम है जो मुनि तीन गुप्तियोंके धारक
होते हैं वे नियमसे अवधिज्ञानी होते हैं और उससे वे अवधिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंको जानते हैं किन्तु जिन
के तीन गुप्तियां नहीं होतीं उनके अवधिज्ञान भी नहीं होता ॥ ४०९ ॥ मुनिराज जिनपालके ये वचन सुन

महाराज श्रेणिकने जैनधर्मकी बड़ी भारी प्रशंसा की। वे रानी चेलिनीके साथ वहांसे उठकर मुनिराज मणिमालाके पास गये और उनसे इस प्रकार पूछने लगे—पूज्य मुनिराज! राजमन्दिरमें आप आहारके लिये पधारे थे परन्तु आहार बिना ही लिये आप क्यों चले आये? उत्तरमें मुनिराज मणिमालीने कहा—रानी चेलिनीने तीन अंगुलियां उठाकर यह प्रकट किया था कि तीन गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मन्दिरमें आहारके लिए विराजें मेरे कायगुप्ति थी नहीं इसलिए हे राजेन्द्र! मैं राजमन्दिरमें आहारके लिए न ठहर सका। मेरे कायगुप्ति क्यों नहीं थी इसका खुलासा इस प्रकार है—इसी पृथ्वीपर एक मणिवत नामका देश है। उसमें एक मणिवत ही नामका नगर है। वहांका मैं मणिमाली नामका राजा था। मेरी स्त्रीका नाम गुणमाला था और मेरे पुत्रका नाम मणिशेखर था जो कि कुवेरकी उपमा धारण करता था इस प्रकार मैं सुख पूर्वक भोगोंको भोगता था और काल कहां चला जा रहा है? यह मुझे तनिक भी नहीं सूझ पड़ता था ॥४१४॥ मेरी स्त्री गुणमाला एक दिन मेरे केश संभाल रही थी। एक सफेद केश देखकर उसने कहा—यमराजका दूत आ पहुंचा है अब शीघ्र आत्माका हित करना उचित होगा ॥ ४१५ ॥ अपनी रानीके ऐसे वचन सुन मैंने ज्ञानके भण्डार अपने पुत्रको शीघ्र राज्य प्रदान कर दिया। शीघ्र अपने गुरुके पास चला गया और मैंने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥४१६॥ राजन्! विहार करता करता मैं एक दिन उज्जयिनी नगरी जा पहुंचा और उसकी श्मसान भूमिमें ध्यान की सिद्धिके लिये निश्चलरूपसे स्थिर हो गया। उसी समय एक कौलिक (कोरिया) मन्त्रवादी जो कि हड्डियोंके भूषणोंसे भूषित था। भूतोंका सेवक था और नग्नरूपका धारक था। महावैतालीय विद्या सिद्ध करनेके लिए वहां आया। मेरे शरीरको उसने मुर्देका शरीर समझा। कहींसे वह एक दूसरा मस्तक उठा लाया और उसने पीछेसे मेरे मस्तकके साथ जोड़ दिया। खीर पकानेके लिये उसने मेरे मस्तकको ही चूल बनाई और उसने अग्नि जलानी प्रारम्भ कर दी ॥४२०॥ जैसी जैसी वह भयङ्कर अग्नि जलने लगी मेरे मस्तककी पीड़ा भी बढ़ती चली गई। वह दाहका दुःख मुझे नरकका दुःख जान पड़ने लगा इसलिये उसकी ओरसे हटकर मैंने अपने चित्तको आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें लगाया ॥४२१॥ अग्निके सम्बन्धसे नसोंके संकुचित हो जानेसे मेरे दोनों हाथ ऊपरको उठकर दंडाकार सीधे खड़े हो गये। मेरे मस्तकपर जो रांधनेका पात्र रक्खा था नीचे गिर गया उसका दूध फैल गया, यह देख वह मन्त्रवादी भयसे भाग गया ॥ ४२२ ॥ मेरा सारा मस्तक दग्ध हो चुका था। प्रातःकाल होते ही वह वनके मालीने मुझे देखा मुझे महादुःखित जान शीघ्रही उस नगर निवासी

जैनियोंके पास पहुंचा और सारा हाल कह सुनाया। मेरी यह भयङ्कर अवस्था सुन वे सबके सब हा हा करने लगे। सबके सब मिलकर श्मसान भूमिमें आये। मुझे नमस्कार किया। अपने हाथोंसे उठाकर ने भव्य श्रावक मुझे उज्जयिनी ले आये। जिनदत्त नामक सेठके घरमें मुझे लाकर रख दिया। जिनदत्तने एक वैद्यसे मेरी निरोगताकी आशासे औषध पूछी। उत्तरमें वैद्यने भी बड़े प्रेमसे यह कहा कि—प्रिय वैश्य सरदार! लाक्षामूल तेलके बिना इस दाहकी शांति नहीं हो सकती इसलिये तुम्हें लाक्षामूल तेल लाना चाहिये। वैद्यराजकी यह बात सुन जिनदत्तने कहा—लाक्षामूल तेल तो यहांपर है नहीं कहिये कहां वह मिलेगा जिससे मैं उसे ले आऊं? उत्तरमें वैद्यने कहा—यहां एक शोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता है उसके घरमें लाक्षामूल तेल मिल सकता है। भव्य जिनदत्त लाक्षामूल तेलके बिना दाहकी आगका मिटना आदि कठिन जान वह शीघ्र ही सोमशर्माके घर गया। उसकी स्त्रीका नाम तुंकारी था उससे जाकर इस प्रकार कहने लगा—बहिन! तुम अनेक गुणोंकी भंडार और अनेक कला कौशलोंकी खजाना हो? मुनिराजका सारा मस्तक किसी दुष्टने जला दिया है। दाहकी बड़ी भारी आग भैरा रही है। उसको नाश करनेवाला तुम्हारे यहां लाक्षामूल तेल सुना है इसलिए कृपाकर जितना उसका मूल्य हो वह लेकर मुझे दे दो बड़ा उपकार होगा। उत्तरमें तुंकारीने कहा—भाई जिनदत्त! मैं मूल्य नहीं ले सकती मेरी अटारीमें बहुतसी तेलकी भरी शीशियां रक्खी हैं तुम्हें जितने तेलकी आवश्यकता हो उसके भीतरसे उठाकर ले जाओ ॥४२९॥ तुंकारीका यह सज्जन स्वभाव जान जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ। वह ऊपर अटारीमें चढ़ गया। ज्योंही उसने एक शीशी तेलकी भरी उठाई दिनारू होनेके कारण वह तत्काल टूट गई। शीशीको टूटी देख जिनदत्त भयसे कम्पित हो गया। डरता डरता वह तुंकारी के पास आया और कहने लगा—बहिन! वह शीशी तो फूट गई? उत्तरमें तुंकारीने कहा—भाई! यदि वह फूट गई तो और दूसरी ले जाओ। जिनदत्तने दूसरी भी उठाई परन्तु वह भी फूट गई। जिनदत्तने फिर तुंकारीसे उसके फूटनेका समाचार कहा। उत्तरमें तुंकारीने फिर भी अपने सज्जन स्वभावसे यही कहा अच्छा भाई! यदि वह दूसरी शीशी फूट गई तो तुम तीसरी ले जाओ। जिनदत्तने फिर भी तीसरी शीशी उठाई परन्तु फिर भी वह फूट गई इस प्रकार बारबार सात शीशी तक फूटतीं चली गईं एवं वह तुंकारी बराबर दूसरी दूसरी ग्रहण करनेकी आज्ञा देती गई। उसे रंचमात्र भी क्रोध नहीं आया। तुंकारीकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर सेठ जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ इसलिए प्रेमसे गद्‌गद् हो वह इस प्रकार कहने लगा—हे

जैसी अद्वितीय मक्षा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है वैसी किसी मुनिके अन्तर भी जल्दी नहीं दीख पड़ती
माता ! जैसी अद्वितीय मक्षा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है वैसो किसी मुनिके अन्तर भी जल्दी नहीं दीख पड़ती
सात शीशियोंके फूटनेसे तुम्हारी बहुत हानि हुई है तथापि तुम्हें तनिक भी क्रोध नहीं आया। जिनदत्तके ये
वचन सुन तुंकारीने कहा—भाई ! क्रोधका मैं भयंकर फल भोग चुकी हूँ इसलिये मैंने क्रोध एकदम करना
छोड़ दिया है। तुंकारीके ये वचन सुन जिनदत्तने कहा सो कैसे ? उत्तरमें तुंकारी इस प्रकार कहने लगी—
अनन्दपुर नगरमें एक शिवशर्मा नामका सेठ है जो कि धनमें राजाकी तुलना करता है। उसकी स्त्रीका नाम
कमलश्री है। सेठ शिवशर्माके आठ पुत्र हैं जो कि धनी और निर्भय हैं मैं एक पुत्री हूँ और मेरा नाम भट्टा
है ॥४३७॥ मैं इतनी घमण्डी थी कि मुझसे जो तू कहकर बोलता था वह मुझे विषसरीखा जान पड़ता था।
मेरे पिताका मुझपर गाढ़ स्नेह था। वे मुझे सुखी बनानेके लिये एक दिन राजाके पास गये और यह कहा—
मेरी भट्टापुत्री मुझे अत्यन्त प्यारी है और तुंकारसे चिढ़ती है इसलिये आप तथा कोई भी पुरवासी लोग
उससे तू न कहें। राजाने भी सेठ शिवशर्माका वचन स्वीकार कर लिया ॥ ४३८ ॥ जब राजाकी वैसी आज्ञा
मिल गई तब मेरा और भी अधिक साहस बढ़ गया और मैंने सबोंके सामने खुले शब्दोंमें यह कह दिया कि
जो कोई भी मुझसे तू कहकर बोलेगा मैं उसका अनर्थ कर डालूंगी। बस लोगोंने उस दिनसे मेरा नाम तुंकारी
रख दिया। यद्यपि मेरे पिता आदि मेरा पूरा आदर करते थे तथापि मैं सदा गुस्सा ही होकर घरमें रहती थी
॥ ४४० ॥ आनन्दपुरमें एक दिन मुनिराज गुणसागर पधारे। राजा आदि सब लोग उनकी बंदनाके लिये गये।
मैं भी गई। उपदेशके अन्तमें सबोंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार संसारसे पार करनेवाले व्रत नियम लिये,
मैंने भी शीलव्रतका नियम ले लिया ॥ ४४२ ॥ भाई जिनदत्त ! मैं उस दिनसे लेकर भाइयोंके साथ रहने
लगी। मेरे क्रूर स्वभावको जानकर कोई भी मेरे साथ विवाह करनेको राजी नहीं होता था। एक दिन मुझे
पूर्ण युवती देख मेरे माता पिता मेरे योग्य वर ढूंढनेके लिये चिन्ता करने लगे। सोमशर्मा नामका ब्राह्मण जो
कि इस समय मेरा स्वामी है ज्वारियोंके अड्डेमें जूआ खेल रहा था। दैवयोगसे वह अपने पासका सब धन हार
गया जिससे अन्य ज्वारी उसे बांधकर मुक्कोंकी मार मारने लगे। मेरा पिता भी दैवयोगसे वहां आ निकला
और वरके योग्य सुन्दर जान सोमशर्मासे यह कहने लगे—यदि तुम मेरी कन्याके साथ विवाह करना पसन्द
करो तो मैं तुम्हें छुड़ा लूं, परवश हो सोमशर्माको स्वीकार करना पड़ा एवं मेरे पिताने उसे छुड़ाकर यह प्रतिज्ञा
कराली कि मेरी पुत्रीसे तू कहकर न बोलना होगा ॥ ४४७ ॥ बस सोमशर्माने मेरे साथ विवाह कर लिया और

समय समयपर भोगोंसे जायमान सुख भोगे। एक दिन मेरा स्वामी नाट्यशालामें नाटक देखनेके लिये गया। देखते देखते आधी रात हो गई इसलिये आधी रातपर वह अपने घर लौटा एवं दरवाजेपर आकर इस प्रकार कहने लगा--प्रिय कमलनयनी ! कृपाकर आप द्वार खोलें। परन्तु मैंने दरवाजा नहीं खोला। मेरे स्वामीको क्रोध आ गया इसलिये वे यह कहने लगे—अरी ! तूने दरवाजा नहीं खोला। बस मैं मारे क्रोधके भबक गई। और कुछ भी न बोलकर एकदम घरसे बाहिर हो गई ॥४५०॥ वह समय ठीक आधीरातका था और मैं भूषण पहिने थी इसलिये चोरोंने मुझे देख लिया। मुझे पकड़कर वे अपने स्वामी भीम नामक भीलके पास ले गये और बड़े आदरसे भेंट कर दी ॥ ४५१ ॥ मेरे सौन्दर्यपर मुग्ध होकर भीमने कहा—वाले तू मेरी पत्नी हो। उत्तरमें मैंने कहा—भीम ! मैं कुल स्त्री हूं कुलस्त्रियोंके लिये यह कार्य करना युक्त नहीं। भीम कामसे अत्यन्त व्याकुल था उसने मेरी नहीं सुनी। वह बल पूर्वक कामसेवन करनेके लिये मेरे पास आ गया और डाट डपट करने लगा। शीलके महात्म्यसे बन देवी प्रगट हुई। उसने भीमको और उसके सेवकोंको फटकार डाला क्योंकि देवगण शीलकी प्रशंसा करते हैं। इस संसारमें शीलसे बढ़प्पन होता है तथा इस शीलसे चक्रवर्तीपना स्वर्गपना मोक्षपना भी दुर्लभ नहीं ॥ ४५४ ॥ जब भील भीमकी कुछ भी नहीं चली तब वह बड़ा क्रोधित हुआ एवं एक ऐसे व्यापारीके साथ जो कि निरन्तर पापरूपी कीचड़में फंसा रहता था और अत्यन्त दुष्ट था मुझे मूल्य लेकर वेच दिया ॥ ४५५ ॥ वह दुष्ट प्रतिदिन मुझे शक्कर आदि मिष्टान्न खवाता था हर एक पक्षमें मेरी नसोंसे रक्त निकालता था। उस रक्तसे कंबलोंको रंगता था एवं विशेषकर रेशमको रंगता था। जिस समय नसोंसे रक्त निकालता था उस समय मुझे भयङ्कर कष्ट होता था उसके पास यही लाक्षामूल नामका तेल था इसलिये मेरे शरीरके कष्टको वह दूर करता था। मैं भी परवश हो सदा भयभीत होकर उसके घर रहती थी। उस समय प्रतिक्षण मुझे इस बातका विचार उठता था कि घरमें मैं "तू" शब्द भी नहीं सह सकती थी और यहां मैं यह भयङ्कर कष्ट भोग रही हूं। हा कर्मोंकी गति विचित्र है ॥ ४५६ ॥ मेरे भाईका नाम धनदेव है। विशालापुरीके स्वामीने किसी कार्यके लिये उसे पारासर राजाके पास भेजा दैवयोगसे वहांपर मैं रहती थी उसी मार्गसे वह निकला। मैं उसे दीख पड़ी। मुझे वह घर ले आया और मेरे पिताने मेरे पति सोमशर्माको बुला दिया ॥ ४६१ ॥ एक दिन मुनिराजका पधारना यहांपर हो गया और मैंने कोपके त्यागका व्रत ले लिया। भाई जिनदत्त ! क्रोधको इस प्रकार दुःखदायी जान मैंने सर्वथा उसका त्याग कर दिया है ॥ ४६२ ॥ रमणी तुंकारी

की यह बात सुन दयालु जिनदत्त तेल लेकर अपने घर लौट आया और हे राजन् श्रेणिक ! उस तेलके लगाने से नीरोग हो गया ॥ ४६३ ॥ उस समय वर्षाकाल चौमासा लग गया था। चौमासेमें मैं वहीं ठहर गया। जिनदत्तका पुत्र पक्का ज्वारी था इसलिये एक दिन अच्छी तरह सोच विचार कर जिनदत्तने समीपमें जमीनके अन्दर एक गढ़ा खोदा एवं ज्वारी पुत्रके भयसे रत्नोंका भरा घड़ा उसने लाकर रख दिया ॥ ४६५ ॥ जिनदत्त जब समय यह घड़ा रख रहा था उसका पुत्र देख रहा था। जिनदत्त जब चला गया उसके पुत्रने वह घड़ा वहांसे उखाड़ कर अन्यत्र गाड़ दिया। मैं उस लोभसे जायमान समस्त विचित्र कार्यको चुपचाप देखता रहा था ॥ ४६६ ॥ चौमासेके समाप्त हो जानेपर मैं वहांसे चल दिया और पृथ्वीतलपर विहार करने लगा। मेरे पीछे सेठ जिनदत्तने जब जमीन खोदी और वह घड़ा न मिला तो वह विचाने लगा—

मेरे रत्नोंके घटको चुराने वाले मुनि हैं या नहीं ? क्योंकि सिवा मुनिराजके अन्य किसीने भी वह घड़ा नहीं देखा था और पता लगाकर उनसे पूछनेमें कोई हानि नहीं बस उसने चारों ओर मेरे खोजनेके लिये सेवक भेज दिये। एक मार्गपर स्वयं भी मुझे खोजनेके लिये चल दिया। भाग्यसे मैं मिल गया मुझे देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। भक्तिपूर्वक मुझे घर लेगया एवं मुझसे विनय पूर्वक इस प्रकार कहने लगा—स्वामिन् ! मेरे सामने कोई शुभ कथा कहिये। मैं उसका अभिप्राय समझ गया था इसलिये मैंने गंभीरता पूर्वक यह कहा—भाई जिनदत्त ! तुम्हीं कोई कथा कहो मैं आनन्द पूर्वक उसे सुनूंगा मेरे ये वचन सुन अपने मनके भावोंको व्यक्त करता हुआ जिनदत्त कहने लगा—अच्छा भगवन् ! आप सुनें मैं कहता हूं।

किसी समय बनारसमें एक जितशत्रु नामका राजा था जो कि बैरियोंको जीतनेवाला था, उसका राजवैद्य धनदत्त था और उसकी स्त्री धनदत्ता थी। राज्यकी ओरसे जो उसे वृत्ति मिलती थी उससे वह सानन्द भोग भोगता था। राजवैद्य धनदत्तके धनमित्र और धनचन्द्र नामके दो पुत्र थे, दोनों ही महामूर्ख थे और मस्त पड़े रहते थे ॥ ४७२ ॥ कुछ कालके बाद वैद्य धनदत्तका अन्तकाल हो गया। पुत्रोंको मूर्ख जान राजाने उनकी वृत्ति छीन ली एवं वैद्य शास्त्रके जानकार किसी अन्य वैद्यको दे दी। आजीविकाके छूट जानेसे दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ। वे दोनों घरसे निकल गये। चम्पापुरीमें जाकर शिवभूति नामक प्रसिद्ध वैद्यके पास वैद्यशास्त्र का अभ्यास किया। वे पूर्ण विद्वान हो गये तब उन्होंने अपने घर आनेका विचार कर लिया। वहांसे चलकर वे एक जङ्गलसे होकर आ रहे थे कि मार्गमें उन्हें अंधा बाघ दीख पड़ा। दयालु धनमित्रने उसे दुःखी जान अपने

छोटे भाई धनचन्द्रसे कहा—भाई ! यह अंधा बाघ बड़ा दुःख पाता है अपनी दवासे मैं इसे सूझना बना दूं ऐसी इच्छा है। छोटे भाई धनचन्द्रने मना की तो भी धनमित्रने नहीं माना और उसे अपनी औषधिसे सूझता कर दिया ॥ ४७७ ॥ जब बाघ सूझना हो गया तो उस कृतघ्नी दुष्ट बाघने उपकारी धनदत्तको खा डाला, ठीक ही है जो मनुष्य कृतघ्नी होते हैं उनके हजारों उपकार किये जायं तो भी वे उपकारोंको नहीं मानते अपकार ही करते हैं। सेठ जिनदत्तकी यह बात सुनकर और उसे अपनेको भ्रात समझ कर विश्वास उपजानेके लिये मैंने कहा—मैं भी एक कथा कहता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो—हस्तिनागपुरमें एक राजा विश्वसेन था। उसकी स्त्रीका नाम भामिनी था और उससे वसुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न था जो कि गुणोंमें प्रेम करने वाला था ॥४८०॥ एक दिन किसी यात्रीने आकर राजाको भेंटमें आमका फल दिया। नवीन किन्तु सुन्दर चीज जानकर राजाने पूछा—भाई यह क्या है ? उत्तरमें व्यापारीने कहा—राजन् ! यह आम्र आदि रोगोंका हरनेवाला अमृतके समान आम का फल है। राजाने उसे ग्रहण कर लिया और अपनी प्यारी स्त्रीको दे दिया ॥ ४८२ ॥ माताका पुत्रपर विशेष स्नेह होता है इसलिये राजा रानीने वह अपने पुत्रको दे दिया। पुत्र पिताको बहुत मानता था इसलिये उसने उठाकर राजाको दे दिया राजाने उस फलको चाकूसे बनाया खाया एवं उसे अत्यन्त मनोज्ञ जान मालीको बुला कर उसे बोनेके लिये दे दिया। मालीने बीज लेकर बगीचेमें उसे बो दिया। कुछ दिन बाद वह वृक्ष हो गया और फल भी लग आये। एक गीध पक्षी मुखमें सर्प लेकर जा रहा था दैवयोगसे एक फलपर विषकी बूंद पड़ गई। विषकी गरमीसे फल पक गया। मालीने उसे पका जान राजाको आकर भेंट किया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसे धन देकर राजी कर दिया। पुत्रपर अत्यन्त स्नेह कर वह फल उसने अपने पुत्रको खानेके लिये दे दिया ज्यों ही उसने खाया तीव्र जहरके प्रभावसे वह मूर्छित हो जमीनपर गिर गया। राजाको बड़ा कष्ट हुआ शीघ्र ही उसने वृक्ष कटवाकर फिकवा दिया। पुत्रकी चिकित्साके लिये शीघ्र ही वैद्य बुलवाया। उसने वह मूर्छा विषजन्य जान ली। तत्काल उसी आमका फल मंगाया और उससे विषकी वेदना दूर कर दी ।४८८। आम्र फलका यह विचित्र प्रभाव जान राजाको बड़ा कष्ट हुआ एवं वह अपने इस प्रकार कलेश करने लगा। हाय विषको दूर करनेवाला वृक्ष मैंने वृथा खोद डाला। गुणीजनोंको बिना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये और जो मनुष्य विचार शील हैं उन्हें किसी बातकी बिना जांच किये कुछ कहना भी नहीं चाहिये ॥ ४९० ॥ मुनिराजकी यह कथा सुन फिर भी सेठ जिनदत्तने यह कथा कहनी प्रारम्भ कर दी—गंगा नदीके

तटपर एक विश्वभूत नामका तपस्वी रहता था। एक दिन एक हाथीका बच्चा नदीमें बहता चला जाता था। दयालु तपसीने उसे निकाला और अपने मठमें लाकर प्रेमपूर्वक पालन पोषण कर बढ़ाया। जब वह बढ़कर सवारीके योग्य हो गया तब उसे नगरका राजा ले आया और उसे शिक्षित करनेके लिये अंकुशसे वश करने लगा। हाथीको यह बात दुःखदायी जान पड़ी। वह तत्काल भागकर गंगाके तटपर आ गया। तपस्वीने उसे वहां न रहने दिया। दुष्ट हाथीने क्रोध कर अपने पोषण करनेवाले तपस्वीको मार डाला। भगवन्! कृपाकर बताइये हाथीने जो तपस्वीके साथ बर्ताव किया वह युक्त था वा अयुक्त?॥ ४६४॥ इत्यादि रूपसे जिस समय सेठ जिनदत्त और मुनिराजका आपसमें वाद विवाद हो रहा था जिनदत्तका पुत्र कुबेरदत्त भी वहां बैठा था। मुनिराजके विषयमें अपने पिताके दुष्ट भाव जान शीघ्र ही उसने रत्नोंका घड़ा लाकर रख दिया एवं यह विचार कर कि—"यह द्रव्य पापोंका प्रदान करने वाला है महानीच क्योंकि इसके सम्बन्धसे मुनिराजको भी चोर होना पड़ता है इसलिये इसे धिक्कार है, दोनों पिता पुत्रोंको संसारसे बैराग्य हो गया एवं दोनोंने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। इसी कारण हे राजन् श्रेणिक मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये मैं तुम्हारे मन्दिरमें आहार न लेकर सीधा वनको चला आया॥ ४६७॥ तीनों मुनिराजोंके मुखसे ये वचन सुन महाराज श्रेणिकका सम्यक्त्व दृढ़ हो गया वे अपनी रानी चेलनाके साथ घर लौट आये एवं साक्षात् जैनधर्म स्वरूप होकर अनेक प्रकारके सुख भोगने लगे॥ ४७८॥ महाराज श्रेणिकके रानी चेलिनीसे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि साक्षात् इन्द्रके पुत्र समान थे उनमें पहिला पुत्र कुणिक था दूसरा वारिषेण तीसरा शिव चौथा हल्लक पांचवां विहल्लक और छठा जितशत्रु था। सातवां पुत्र मेघकुमार था और उसका वर्णन इस प्रकार है—जिस समय कुमार मेघ रानी चेलिनीके गर्भमें था उस समय उसे यह दोहला हुआ कि "मैं हाथीपर बैठकर वर्षाकालमें आकाशमें घूमूं" एवं वह उस दोहलेकी चिन्तासे दिनों दिन दुर्बल होती चली गई। तथा महाराज श्रेणिकके पूछे जानेपर उसने सारा दोहलेका समाचार कह सुनाया जिस समय महाराज श्रेणिकने यह दोहला सुना उन्होंने उसकी पूर्ति अत्यन्त कठिन समझी इसलिये उन्हें बड़ी चिन्ता हो गई वे चुप होकर घरमें रहने तो लगे परन्तु उस तीव्र चिन्तासे उनका शरीर दिनों दिन कृश होता चला गया॥५०२॥ महाराज श्रेणिकको अत्यन्त दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—पूज्य पिता? तुम्हारा शरीर सुवर्णके समान कांतिमान और पुष्ट था सो वह दुर्बल और फीका क्यों पड़ता चला जाता है। कुमारके ये वचन सुन उत्तरमें महाराज श्रेणिकने सारा किस्सा कह सुनाया। कुमार अभय

बड़े चतुर और गंभीर थे शीघ्र ही उन्होंने मनोहर वचनोंमें कहा—पिताजी ! आप रंचमात्र भी चिन्ता न करें मैं बहुत जल्दी इस कामको करूंगा बस ऐसा कह कर रातके समय वह विशाल भुजाओंका धारक कुमार हाथ में खड्ग लेकर प्रेतोंके देखनेके लिये उस श्मसान भूमिकी ओर चल दिया जो श्मसान भूमि सर्पोंके फूत्कारोंकी गर्मीसे जले हुए वृक्षोंकी धारक थी एवं आपसमें लड़नेवाले व्यंतरोंके महाभयङ्कर शब्दोंसे व्याप्त थी ॥ ५०६ ॥ जिनके दांत दृढ़ थे जो अन्जन पर्वतके समान महाकाले थे बाघ भालू और गीध आदिके मासोंको ग्रहण किये थे एवं फुंगरते थे ऐसे महाभयङ्कर वहांपर सर्प थे ॥ ५०७ ॥ जगह जगहपर वहां अग्निकी चितायें जलतीं थीं। व्यंतर जातिके भूत पिशाच आदि देव जोरसे कोलाहल करते थे शाकिनी डाकिनी भूतिनी और किन्नरियोंके भयङ्कर शब्द होते थे ॥ ५०८ ॥ उस समय उस श्मसान भूमिमें विपुल अन्धकारको धारण करनेवाली रात्रि सां सां शब्द कर रही थी। चांदनीका प्रकाश एकदम रुका हुआ था इसलिये वह रात्रि उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो इसने समस्त जगत्को भक्षण कर लिया है और यह तारा रूपी हड्डियोंके भूषणोंको धारण किये हैं। वह श्मसान भूमि साक्षात् राक्षसी थी क्योंकि राक्षसी जिस प्रकार धुंकार शब्द करती है उसी प्रकार वह श्मसान भूमि भी धुंकार शब्दोंसे व्याप्त थी। राक्षसीके जिस प्रकार स्तन होते हैं। श्मसान भूमिके भी पर्वत रूपी स्तन विद्यमान थे। एवं राक्षसी जिस प्रकार मुर्दोंको खाने वाली होती है उसी प्रकार वह श्मसान भूमि भी मुर्दोंको भस्म करने वाली थी। इस भयंकर वनमें निर्भीक एवं चतुर कुमार अभय एक बट वृक्षकी ओर चला जिसपर कि एक दीपक टिमटिमा रहा था एवं वहांपर एक निर्भीक मनुष्य दीख पड़ा। कुमार अभय शीघ्र ही उसके पास पहुंचा एवं इस प्रकार बात चीत करने लगा—भाई ! तुम कौन हो ? कहांसे यहांपर आये हो ! यह जो हाथमें माला लिये बैठे हो इससे क्या जपना चाहते हो और तुम्हारा नाम क्या है ? मुझे शीघ्र कहो ।५१२। बट वृक्षपर बैठा हुआ पुरुष कहने लगा—सुनो भाई ! मैं अपना सारा वृत्तांत सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो— विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन प्रिय नामका नगर है मैं वहांका वायुवेग नामका विद्याधर राजा हूँ। जो कि चन्द्रमाके समान शोभायमान और उत्तम धनसे मण्डित हूँ। मैं एक दिन (मेरु वा विजयार्ध) पर्वतके चैत्यालयोंकी बन्दना करने गया था वहींपर विजयार्ध श्रेणीके स्वामी राजा बालककी सुभद्रा नामकी पुत्री भी आई थी जो कि परम सुन्दरी थी। उसे देखते ही मैं चकित हो गया। कामबाण मुझे बुरी तरह वेधने लगे इस लिये वह मैंने बलपूर्वक हरण कर ली। अपनी प्राण प्यारी बनाई और उसके साथ मैंने अपना मनुष्य जन्म

सफल बनाया ॥ ५१६ ॥ विद्याधरोंके स्वामी उसके पिता राजा बालकको यह पता लग गया कि मैं सुभद्राको हर लाया हूँ, वह मारे क्रोधके पागलसा हो गया और समस्त आकाशको आच्छादता हुआ मेरी नगरीकी ओर चल दिया। वह अनेक विद्याओंका धनी था इसलिये मेरी और उसकी जिस समय मुठभेड़ हुई संग्राममें उसने मुझे जीत लिया। मेरी विद्याओंको नष्ट कर दिया। अपनी पुत्री सुभद्राको घर ले गया और मुझे विद्यारहित भूमिगोचरी बना दिया ॥ ५१८ ॥ गुणप्रिय कुमार ! विद्यासिद्ध करनेके लिये बराबर बारह वर्षोंसे मंत्रोंकी जाप कर रहा हूँ तो भी मुझे विद्या सिद्ध नहीं हुई है। बस अब मैं हताश होकर घरकी चिन्तासे अपने घर जा रहा हूँ। वायुवेगकी यह बात सुनकर मंत्रीश अभय कुमारने कहा—भाई ! यदि तुम जाते हो तो उस मन्त्रको मुझे बता दो। वायुवेगने मन्त्र बता दिया। दृढ़ ध्यान और दृढ़ आसन मारकर कुमार अभय बैठ गये और मन्त्र जपने लगे। पुण्यकी प्रबलतासे थोड़ी ही देरमें उन्हें महाविद्या सिद्ध हो गई। उसके प्रभावसे विद्याधर वायुवेगको भी विद्यासिद्ध हो गई। दोनों आपसमें मित्र हुए और प्रेमपूर्वक दोनोंने आपसमें नमस्कार किया। ठीक ही है पुण्यके उदयसे संसारमें स्त्री द्रव्य पुत्र विद्या राज्य यश स्वर्ग और मोक्षके सुख सभी कुछ प्राप्त होते हैं ॥ ५२३ ॥ मन्त्र सिद्धकर कुमार अभय घर लौट आये। विद्याबलसे मेघकी रचना की उसमें रानीको घुमाकर उसकी आशा पूरी की। एवं घुमा फिराकर उसे राजमन्दिरमें लौटा लाये। कुछ दिन बाद रानी चेलिनीके पुत्र हुआ और दोहलेके अनुसार उसका नाम मेघ कुमार रक्खा गया ॥ ५२५ ॥ महाराज श्रेणिकका पुत्र कुमार अभय बड़ा भारी बुद्धिमान और चतुर था। बुद्धिमें बृहस्पतिके समान था और इन्द्र सरीखी लीला करनेवाला था ॥ ५२६ ॥ तथा वह पूरमल्लाके स्वामी मुझ कृष्णदासके समान भगवान अर्हंतके चरणोंका प्रेमी था। मेरे छोटे भाई मंगलदास वा मंगल ताराके समान महा विद्वान एवं धीरता गंभीरता और गौरवका खजाना था ॥ ५२७ ॥ महाराणी चेलिनीके सात पुत्र थे जो कि साक्षात् सात समुद्र थे। महा गंभीर थे। उत्तम बुद्धिके पारगामी थे और परम उपमाके धारक थे। शेषनागके समान पराक्रमी वे राजा श्रेणिक उत्तम पुत्र दिव्य सुख और उत्तमोत्तम क्रीड़ाओंसे इन्द्रके समान थे और जाते हुए कालको तनिक भी नहीं जानते थे। महाराज श्रेणिकने अपने दीप्त प्रतापसे सूर्यको जीत लिया था। मुखकी सुन्दरतासे चन्द्रमा नीचा कर दिया था। बुद्धिसे इन्द्रके गुरु बृहस्पतिको हरा दिया था एवं समस्त बैरियोंको जीत लिया था इसलिये वे अत्यन्त शोभायमान थे। तथा मगध देशके स्वामी वे महाराज श्रेणिक, राजा मन्त्री मित्र खजाना देश किला और सेना रूप राज्यके सात अंगोंसे वेष्टित हो उत्तम

राज्यका इच्छानुसार भोग करते थे ॥५३१॥ वे महाराज श्रेणिक ललाटपर सुवर्णके समान उत्तम वर्णके काश्मीरी चन्दनका तिलक लगाते थे। गलेमें सुवर्णके तारमें पिरोए हुए मोतियोंका हार पहिने थे। मनोहर थे। सुवर्णके समान कांतिवाले थे। याचकोंको सुवर्णका दान देनेवाले थे। उनके हाथी और घोड़े सुवर्णके भूषणोंसे भूषित थे। शत्रुओंसे वे न्यायानुकूल ऋण लेते थे। सुवर्ण कुण्डलोंसे भूषित थे। उनके दांत मोती सरीखे थे। जिस चीजको छोड़ देते थे—दान कर देते थे फिर उसकी लालसा नहीं रखते थे। मोतियोंके समान नखोंकी कांतिसे शोभायमान थे। मोक्षकी सदा अभिलाषा रखते थे। जो महानुभाव मोक्षाभिलाषी थे उनके गुणोंको ग्रहण करनेवाले थे सम्यग्दृष्टि थे। सुपात्रोंको अच्छी तरह दान देनेवाले थे। धर्मरूपी अमृतको सदा पीनेवाले थे सज्ज-नोंको सदा प्रसन्न करने वाले थे। जो बात अहितकारी होती थी उसका सदा खण्डन करते थे एवं दो हजार मुकुटवद्ध राजा उनके चरणोंकी सेवा करते थे इस प्रकार वे महाराज श्रेणिक देवोंके इन्द्रके समान बड़ी विभू-तिसे राज्यका पालन करते थे ॥ ५३६ ॥ एक दिन विपुलाचल पर्वतके ऊपर समस्त जगतके पूजनीक और पर-मानन्द करनेवाले भगवान महावीरका शुभ आगमन हो गया। इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने उनके समवसरणकी रचना की और उस समवसरणकी भूमि नीलमणिकी बनाई जो कि चार मानस्थंभोंसे शोभायमान थी वह समवसरण पांच विशाल उत्तमोत्तम भीतियोंसे शोभायमान था बीस हजार पैंडियोंका धारक था। बारह कोठे और मान-स्तम्भोंसे शोभायमान था। उस समवसरणके अन्दर पद्मराग मणिके बने हुये सरोवर थे जो कि उत्तमोत्तम कमलोंसे व्याप्त थे और हंस एवं स्यास आदि पक्षियोंके शब्दोंसे शोभायमान थे ॥ ५४० ॥ उस समय वहां गायोंके बच्चे मदसे मत्त भी सिंहोंके बच्चोंके साथ और नौले सर्पोंके साथ स्वभावसे ही सानन्द क्रीड़ा करते थे आपसमें कोई किसीसे वैर नहीं निभाता था ॥ ५४१ ॥ तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेन्द्रके माहात्म्यसे संसारके समस्त जीवोंका वा नौला सर्प आदि समस्त जीवोंका जन्म आदि तीन प्रकारका आपसी बैर नष्ट हो गया था ॥ ५४३ ॥ जल रहित समस्त बावड़िये जलसे भरी हुईं थीं। हंस स्यास चकवा और कमलरूपी भूष-णोंसे भूषित थीं। जो वृक्ष सूखे पड़े थे वे लतापर्यंत फूल और फलोंसे नम्रीभूत हो गये। भौंरे घूम घूमकर गुञ्जार शब्द करने लगे और उनपर बैठकर कोकिला मनोहर और मधुर आलाप आलापने लगीं समस्त ऋतु-ओंके फल और फूलोंसे समस्त वृक्ष लदवदा गये ॥ ५४६ ॥

देवोंसे व्याप्त जैसी अप्सरायें शोभित होती हैं उसही प्रकार कमलोंसे व्याप्त वहांकी सरोवरी अत्यन्त

समूह अत्यन्त शोभायमान दीख पड़ता है
शोभायमान थी तथा विशाल स्तनोंसे कम्पित जैसा अप्सराओंका समूह अत्यन्त शोभायमान था। माली जिस समय वनमें आया समस्त
वैसा ही सुवर्णमयी लताओंका समूह भी अत्यन्त शोभायमान था। माली जिस समय वनमें आया समस्त विचारने लगा कि यह समय
शोभा और फलोंसे युक्त जिस समय उसने वहांकी जमीन देखी वह मन ही मन विचारने लगा कि यह समय क्या यह इन्द्रजाल
तो फूल आदिके आनेका नहीं है फिर ये जो फूल आदि दीख रहे हैं यह क्या है? क्या यह इन्द्रजाल
है या मृगतृष्णा है? तथा इस प्रकार तर्क वितर्क करता जिस समय वह थोड़ी दूर और आगे बढ़ा तो क्या
देखता है कि दुन्दुभि बाजेका उन्नत शब्द हो रहा है जिसने कि अपनी गुंजारसे समस्त आकाशरूपी आंगन
पूर रक्खा था ॥ ५५० ॥ उससे भी आगे जब कुछ बढ़ा तो वह मार्गमें महामनोहर शोभा निरखने लगा जो
शोभा देवोंके देव इन्द्रों द्वारा की गई थी। तीस हजार ध्वजाओंसे युक्त थी। विमानमें बैठनेवाले और झंकार
करनेवाले देवोंके झंकारोंसे परिपूर्ण थी एवं देवांगनाओंके मुखोंसे जायमान जय जय शब्दोंसे समस्त दिशाओं-
को बधिर करनेवाली थी ॥ ५५२ ॥ बस भगवान महावीरके प्रभावसे होनेवाले दृश्यको देखकर एवं कुछ सुन्दर
फूल और उत्तम फल लेकर वह महाराज श्रेणिककी राजसभामें गया। बनके अन्दर जो बेऋतुमें शोभा हुई
थी सारी कह सुनाई एवं गद्गद् बाणीसे इस प्रकार कहने लगा—महाराज! आपके उद्यानमें भगवान महावीर
आकर विराजे है। उनके आगमनसे आप नादो चिरकाल तक जीओ और चिरकाल तक जयवन्ते रहो? वन-
पालकी यह आनन्द प्रदान करनेवाली बात सुनकर महाराज श्रेणिक एकदम सिंहासनसे उठे। जिस दिशामें
भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे उस दिशामें सात पेड़ आगे बढ़े और बड़े विनयसे उस दिशाको परोक्ष
नमस्कार किया। महाराज श्रेणिकके आनन्दका उस समय ठिकाना न था इसलिये जिस प्रकार कुवेर निःसंकोच
रूपसे दूसरेको धन प्रदान करता है उस प्रकार महाराज श्रेणिकने भी बड़े उत्साहसे मालीको उत्तम वस्त्र अलं-
कार और विपुल धन प्रदान किया ॥५५६॥ भगवान जिनेन्द्रकी बन्दनाकी अभिलाषा चित्तमें उछलने लगी इस
लिये उन्होंने शीघ्र ही बन्दनाकी घोषणा करनेके लिये नगरमें आनन्द भेरी दिवा दी एवं पुरवासी लोगोंके साथ
चलनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय महाराज श्रेणिकने कई सौ हाथी सजवाये जो कि मदोन्मत्त थे अन्जन
पर्वतके समान काले थे। अनेक प्रकारकी झूलोंसे शोभायमान थे। नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र विचित्र थे एवं
झरते हुये मदरूपी जलकी महावृष्टिसे उन्होंने समस्त पृथिवीतल कीचमयकर दिया था इसीलिये वे हाथी आका-
शमें विजलीसे युक्त काले काले मेघ सरीखे जान पड़ते थे। छत्तीस प्रकारकी जातिके घोड़े सजाये गये जो कि

अपनी कलाओंसे आकाश जल और स्थलपर चलनेवाले थे। दृढ़ थे और ओरेवी चाल चलनेवाले थे। महाराज श्रेणिक क्षायिकसम्यग्दृष्टि थे इसलिये उन्होंने समवसरणकी जमीन पर्यन्त रंग विरंगे कपड़ोंको बिछाकर चलनेका मार्ग सजाया था ॥५६१॥ भगवान महावीर जिनेन्द्रकी बन्दनाके लिये महाराज श्रेणिक चल दिये, जिस समय वे चले अपने बाजोंके शब्दोंसे समस्त दिशायें उन्होंने शब्दायमान कर दीं। जीओ नादो इत्यादि शब्दोंसे समस्त लोक उन्होंने आनन्दित कर दिया। समस्त पुत्र और रानी चेलिनीको अपने साथमें ले लिया। चारों प्रकारकी सेना उनके साथ चलने लगी। उनके शिरपर छत्र फिरता और चमर ढुरते जाते थे एवं दुन्दुभि बाजे बजते जाते थे। बनमें पहुंचकर जिस समय राजा श्रेणिकको मान स्तम्भ दीख पड़ा वे तत्काल हाथीसे उतर पड़े। छत्र चमर आदि विभूति छोड़ दी एवं दूरसे ही उसे साष्टांग नमस्कार किया ॥५६४॥ समवसरणके पास आकर "निःसहि निःसहि निःसहि" इस प्रकार तीन बार निःसहि शब्दका उच्चारण करने लगे। समवसरणके भीतर प्रवेश किया एवं ऊंचो ऊंची भीतोंको उलांघकर वे समवसरणकी शोभा निरख लगे ॥५६५॥ समवसरण के मध्यभागमें भगवान महावीर जिनेन्द्र विराजमान थे जिनके कि प्रचण्ड तेजसे समस्त दिशायें जगमगा रहीं थीं। राजा श्रेणिकने उनकी तीन प्रदक्षिणा दीं। भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। पूजा की। पूजाके अन्तमें स्तुति की। मनुष्य कोठेमें जाकर विराज गये। अनेक प्रकारसे कल्याणोंको प्रदान करनेवाले और साक्षात् मोक्ष स्वरूप भगवान जिनेन्द्रसे अपने पूर्वभव पूछे। भगवानने अपनी दिव्यध्वनिसे उनका वर्णन किया। सुनकर राजा श्रेणिकके साथमें कुमार अभय भी गये थे उन्होंने भगवान जिनेन्द्रको भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और विनय पूर्वक अपने पूर्व भवोंको पूछा। भगवान जिनेन्द्र भी यह कहकर कि—वत्स ! मैं संक्षेपसे तुम्हारे पूर्व भव कहता हूँ। उसके पूर्वभव वर्णन करने लगे-वेणातड़ागपुरका निवासी एक ब्राह्मण वेदाभ्यास करनेके लिए चला। दैवयोगसे उसके साथ साथ एक श्रावक भी चल दिया। चलते चलते कुछ दूर जब वह विप्र पहुंचा तो मार्गमें उसे एक बड़का वृक्ष दीख पड़ा। ब्राह्मणने भक्ति भावसे उसकी प्रदक्षिणा दी और मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। ब्राह्मणके साथमें जो श्रावक गया था वह जैनधर्मका परम भक्त था। ब्राह्मणने जो कार्य किया था उसे देख वह मुसकराने लगा। वृक्षके थोड़े पत्ते तोड़ लिये। उनसे पैर पोंछे और उन्हें जमीनपर डाल दिया ॥५७१॥ श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण अपना क्रोध न संभाल सका शीघ्र ही उसने श्रावकसे कहा—अरे भाई ! तुम क्या करते हो ? क्या तुम नहीं जानते कि देवकी अवज्ञा महा कष्ट प्रदान करने वाली है। उत्तरमें श्रावकने

ब्राह्मणसे कहा—भाई ! यदि तुम्हारा यह देव पवित्र और शक्तिमान होता तो मेरा विनाश करेगा और यदि
यह कुछ न होगा तो कुछ नहीं कर सकता। श्रावककी यह बात सुन वह ब्राह्मण उत्तर तो न दे सका केवल
यही उसने पूछा कि भाई ! तुम्हारा देव कौन है ? उत्तरमें श्रावकने कहा—मेरा देव आगे है। तुम मेरे देवको
क्यों पूछते हो ? हँसकर ब्राह्मणने उत्तर दिया जिस प्रकार तुमने मेरे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा की है
उस प्रकार मैं भी तुम्हारे देवका तिरस्कार कर उसको परीक्षा करूंगा इसमें जरा भी सन्देह मत समझो। कुछ
दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करनेवाले) वृक्षकी वेल देखी। उसे देखकर श्रावकने कहा प्रिय विप्र !
मेरा सबसे उत्कृष्ट देव यह है भक्ति पूर्वक सदा इसकी पूजा करनी चाहिये। सुनकर ब्राह्मणने हँसकर उसके
पत्ते तोड़ लिये। उनसे अपना शरीर पोंछ डाला और जल्दी जल्दी आगे चल दिया बस आगे थोड़ी ही दूर
पहुंचा था कि उसका सारा शरीर खुजलीसे व्याकुल हो गया एवं वह दुखित हो जमीन पर गिर गया तथा
श्रावकसे कहने लगा भाई ! तुम्हारा देवता सच्चा है इस प्रकार प्रतिवोध देकर श्रावकने विप्रके अन्दर जो देव
मूढ़ताका भाव विद्यमान था वह दूर कर दिया और वे दोनों आगे चलने लगे ॥५७६॥ आगे चलकर गंगा नदी
का तीर्थ पड़ा। भागीरथी हरि और विप्र, ऐसा उच्चारण कर वह ब्राह्मण गंगामें कूद पड़ा। मिथ्यात्वी ब्राह्मण
की यह चेष्टा देखकर श्रावकने पूछा—भाई ! इस तीर्थका तुमने क्या गहरा महात्म्य समझ रक्खा है उत्तरमें
ब्राह्मणने कहा—भाई श्रावक ! यह तीर्थ हम सरीखे मनुष्योंको तारक है फिर बैकुण्ठको देता है जहांपर कि गौ
हत्या आदि पञ्च हत्याओंसे छूटना होता है। ब्राह्मणकी यह बात सुन भोजन करनेकी इच्छासे श्रावक उसके
तटपर बैठ गया। जब खा चुका और जो जूठा बच रहा वह जलमें मिलाकर उसे समर्पण कर दिया अर्थात्
गंगामें क्षेपण कर दिया। श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण कहने लगा—हा हा तूने मेरा भोजन अपवित्र क
दिया उत्तरमें श्रावकने कहा—भाई विप्र ! तुम जल्दी क्यों नहीं खा लेते ? ब्राह्मणने कहा—बता मैं खाउ
कैसे साक्षात् शूद्र स्वरूप पापी तूने सबका सब जूठा और अपवित्र कर दिया उत्तरमें श्रावकने कहा भाई ब्राह्म
जो जलसे मिश्रित धान्य तुम्हें पवित्र बना सकता है उसे तुम खाते क्यों नहीं हो। मेरे जूठे और अपवित्र कर
पर वह जूठा और अपवित्र नहीं माना जा सकता। इत्यादि बहुतसी युक्ति प्रयुक्तियोंसे श्रावकने ब्राह्मण
मिथ्यात्व भगा दिया। ब्राह्मणने भी उस श्रावकको अपना गुरु माना और उससे जैनधर्म पढ़ा। वहांसे अ
फिर भी वे दोनों चल दिये आगे जाकर वे रास्ता भूल गये और एक ऐसी महावनीमें जा निकले जो क्रूर जी

से भरी हुई थी। दोनोंने वहांपर सन्यास मरण किया। विप्र मरकर पहिले स्वर्गमें अनेक सुर असुरोंसे सेवित देव हो गया विप्र कुमार ! वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिकके अभयकुमार नामके पुत्र हुए हो और तुम इसी भवसे तप तपकर नियमसे परम पद मोक्ष प्राप्त करो ॥५६०॥ जिस समय कुमार अभयके पूर्व भवोंका वर्णन समाप्त हो चुका उस समय राजा श्रेणिकने साक्षात् कल्याण स्वरूप भगवान वर्द्धमानको नमस्कार किया एवं दोनों हाथोंको जोड़कर इस प्रकार भक्ति पूर्वक कहने लगे—

स्वामिन् ! आप तीनों जगतके रक्षण करता हो। गुणोंके समुद्र हो। तीनों जगतके स्वामी हो आपके चरण कमलोंकी बड़े बड़े सुर असुर और मनुष्योंके स्वामी स्तुति करते हैं। सेवकोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हो। ज्ञान-स्वरूप हो। अज्ञान अन्धकारको नाश करनेवाले हो। मोहरूपी बैरीको हरानेवाले और कामदेवको भस्म करने-वाले हो। भगवान् ! जिस बातके विनय पूर्वक जाननेकी भव्योंको इच्छा है मैं उसे ही पूछना चाहता हूँ। प्रभो ! भगवान विमलनाथका पुराण अत्यन्त मनोहर है और भव्यजीवोंके पापोंका नाश करनेवाला है इसलिये मैं उसे ही सुनना चाहता हूँ। भगवान विमलनाथके समयमें धर्म नामका बलभद्र हुआ है। स्वयंभू नामका नारायण हुआ है और मधु नामका प्रतिनारायण हुआ है इनका कितना बल था कितनी शूरवीरता थी, हे कृपा-नाथ ! आप कृपाकर कहैं ॥५९६॥ मुनिराज संजयन्तका तप ध्यान उनपर जो उपसर्ग पड़ा था वह और उनके ज्ञानका कारण कहें तथा मुनिराज संजयन्तके गणमें उन्हींके समान जो दो मुनिराज हुए हैं उनका भी वृत्तान्त प्रतिपादन करें क्योंकि हे भगवान् ! जो महानुभाव मुनि हैं। दानी हैं आपके समान ध्यानी हैं शीलवान शूर-वीर हैं। चक्री (चक्रवर्ती और नारायण) प्रतिनारायण चरम शरीरी और कामदेव हैं उनकी कथा कल्याणोंकी करनेवाली है जो महानुभाव इनकी कथाको सुनना चाहते हैं वे भव्यजीव हैं और रागद्वेषसे विमुख हैं ॥५९९॥ इसलिये हे देव ! हे सर्वज्ञ जिनेन्द्र ! मैंने अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिये और जितने भी आसन्न भव्यजीव हैं उन्हें आनन्द उपजानेके लिये भगवान विमलनाथ आदिके चारित्र पूछनेकी इच्छा प्रगट की है बस इस प्रकार अपनी जिज्ञासा प्रगट कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि महाराज श्रेणिक अपने पुत्र और महारानी चेलिनीके साथ शान्त होकर अपने स्थानपर बैठ गये ॥ ६०१ ॥ ग्रन्थकार अन्तमंगलकी कामना करते हुए कहते हैं कि जो वर्द्धमान भगवान सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंसे पूजित हैं। कर्मोंके जीतनेवाले महानुभावोंमें मुख्य हैं। समस्त प्राणियोंके पापों को नष्ट करनेवाले हैं सुवर्णके समान मनोहर प्रभाके धारक है। सिंहासनपर देदीप्यमान हैं। अपनी उत्कट

प्रभासे रायवनिता—सूर्यकी प्रभाको भी फीकी करनेवाले हैं और राजा श्रेणिककी प्रार्थनाको पूरी करनेवाले हैं उन श्रीवर्द्धमान स्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ।

कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें महाराज श्रेणिक द्वारा किये गये प्रश्नका वर्णन करनेवाला पहिला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग।

तीनों लोकके शासन करनेवाले जीवोंको कल्याणके कर्ता मोहरूपी अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप एवं करोड़ों सूर्यों की प्रभासे भी अधिक प्रभा धारण करनेवाले पुराण पुरुष भगवान तीर्थंकर सदा जयवंते रहें॥ १ ॥ जिस प्रकार चन्द्रमाके सम्बन्धसे समुद्र उबलता और गर्जता हैं उस प्रकार भगवानके मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाके संबंधसे उनका दिव्य ध्वनिरूपी क्षीर समुद्र गर्जने लगा॥ २ ॥ वह दिव्य ध्वनि साक्षात् महामेघ सरीखी जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार मेघ जलोंकी नाना प्रकारकी तरंग स्वरूप होता है उसी प्रकार वह दिव्य ध्वनि भी स्याद्स्ति स्यान्नास्ति आदि सप्त भंग स्वरूप थी अर्थात् दिव्य ध्वनिसे जो भी उपदेश होता था वह सप्तभंगी वाणीके अनुसार ही होता था। महामेघ जिस प्रकार सेतु (पुल) विशिष्ट होता है अर्थात् नदी आदि स्थानोंको पार करनेके लिये महामेघके समय खास कर पुलोंका उपयोग किया जाता है उसी प्रकार भगवान महावीरकी दिव्य ध्वनि भी दर्शन ज्ञानरूपी सेतुसे युक्त थी अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके स्वरूपके वर्णनका उसमें विशेष सम्बन्ध था। महामेघमें जिस प्रकार जल रहता है भगवानकी दिव्य ध्वनि भी चारित्ररूपी जलसे परिपूर्ण थी अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा वर्णन करनेका खास लक्ष्य सम्यक्चारित्र था। एवं महामेघके समय जिस समय संसार उलट पुलट हो जाता है उस प्रकार वह दिव्य ध्वनि भी संसारको उलट पुलट—विच्छेद करानेवाली थी उसके सम्बन्धसे लोग संसारके नाश करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं॥ ३ ॥ महाराज श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें भगवान महावीरने अपनी दिव्य ध्वनिसे कहा—हे राजन्! तुम सज्जन पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाला जो हो इसलिये तुमने जो प्रश्न किया है वह बहुत ही उत्तम किया है क्योंकि तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें जो भी कहा जायगा उसके सुननेसे भव्य जीव समीचीन व्रतोंसे भूषित होंगे और उन व्रतोंके सम्बन्धसे मोक्ष प्राप्त करेंगे॥ ४ ॥ नरपाल! यदि उन्हें भगवान विमलनाथके चारित्र सुननेकी विशेष उत्कंठा है तो चकोर पक्षी जिस प्रकार चन्द्रमाकी ओर टकटक दृष्टि लगाता है उसी प्रकार तुम भी विमलनाथके चरित्रकी ओर दृष्टि लगाकर उसे ध्यानपूर्वक सुनो मैं

उसका वर्णन स्पष्टरूपसे करता हूँ :—इस पृथ्वीपर एक धातुकी खण्ड नामका द्वीप है जो कि अनेक मनोज्ञ वस्तु-
ओंका भंडार है। नीलकमल और वैडूर्य मणियोंकी प्रभाका धारक है। रत्न और सुवर्णकी अनेक खानियोंसे
शोभायमान है। चार लाख योजन प्रमाण चौड़ा है। कुण्डलके समान गोलाकार है। कालोदधि समुद्र चारों
ओरसे उसे घेरे हैं एवं वह अनेक क्षेत्रोंका धारण करनेवाला है इसी धातुकी खण्डकी पश्चिम दिशामें मेरु पर्वत
है जो कि सुवर्णके समान प्रभाका धारक और चौरासी हजार योजन ऊंचा उठा हुआ है सो ऐसा जान पड़ता
है मानो यह स्वर्ग जानेका इच्छुक है अथवा पृथ्वीरूपी स्त्रीका उन्नत कुच है वा निराधार आकाश नीचे गिर न
पड़े इसलिये उसे रोक कर रखनेवाला सुवर्णमयी स्तम्भ है। यह मेरु पर्वत नन्दन बन आदि चारों बनस्वरूप
है। देवोंके समूहके समूह यहांपर विहार करते हैं। इसके तटभाग देवांगनाओंके घटनोंसे अत्यन्त कठिन है।
देवांगनाओंकी रति समयकी सुगंधिमें मत्त होकर सदा भौंरे उसपर भुन भुनाट करते रहते हैं, अनेक देवोंसे
नाना प्रकार पूजनीक है और भगवान जिनेन्द्रोंकी प्रतिमाओंसे मंडित है ॥ ११ ॥ उसी मेरु पर्वतकी पश्चिम
दिशामें नदीके दक्षिण तटपर महापद्म देशके मध्यभागमें तीसरा खण्ड है उस तीसरे खंडके मध्यभागमें एक
रम्यावती देश है जो कि महा मनोहर है। अनेक प्रकारकी शोभाओंका स्थान है एवं मनुष्य और देव सबोंके
लिये एक दर्शनीय पदार्थ है ॥ १३ ॥ इस रम्यकावती देशके गोपुर—सदर दरवाजोंसे चमचमाते हुए प्राकार
और पुर अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते हैं। धनिकोंके घर सुवर्णमयी बने हुए हैं और वहांके विद्वान लोग
अनेक प्रकारकी विद्या और कलाओंमें प्रौढ़ हैं ॥ १४ ॥ इस रम्यकावती देशके खेट चारों ओरसे नदी और पर्व-
तोंसे वेष्ठित महामनोहर जान पड़ते हैं और कर्वट चारों ओरसे पर्वतोंसे अत्यन्त रमणीक दीख पड़ते हैं ॥ १५ ॥
जिनके चारों ओर बाड़-परकोट खिंचे हुए हैं ऐसे गांव जगह जगह यहांपर सुन्दरतासे बसे हुए हैं जो कि
नेत्रोंको अत्यन्त प्यारे जान पड़ते हैं तथा पर्वतोंसे भी ऊंचे रथ आदि वाहन उस देशकी अत्यन्त शोभा
बढ़ाते हैं ॥ १६ ॥

उस देशके द्रोण—जलके भरे तालाव धनके खजाने सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार
तालाव "पयोराशिश्रिताः" पय जलकी राशिसे शोभायमान थे उसी प्रकार धनके खजाने भी पय-रत्न आदिकी
राशिसे शोभायमान थे। जिस प्रकार तालाव 'विद्रुमावलिरंजिताः' विद्रुम-वृक्षोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान
थे उसी प्रकार धनके खजानेकी भी विद्रुम-मूगोंके समूहसे शोभायमान थे ॥१७॥ उस देशके पके हुए धान्यों

के खेतोंमें शुक-तोते पड़ते थे इसलिये शुकोंके लालवर्ण और अपने हरे वर्णसे रंग बिरंगे वे अत्यन्त शोभाय-
मान जान पड़ते थे अतएव लोग उन धान्योंके खेतोंको कामदेवके साक्षात् उत्तम घर समझते थे ॥१८॥ वहां
पर जगह जगह नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली ईखके वृक्षोंकी शोभा अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती थी जिस
शोभाका निरखना देवोंको भी अत्यन्त दुर्लभ था ॥ १९ ॥ वहांके तालावोंपर हंस सारस और चकोर पक्षी
विचारते फिरते थ निर्मल जलसे वे परिपूर्ण थे और उनके तट भागोंकी भांति भांतिके वृक्ष विचित्र शोभा बढ़ा
रहे थे इसलिये वे तालाब नेत्रोंको परमानन्द प्रदान करते थे ॥ २० ॥ वहांके आम्र वृक्षोंके वनोंमें जगह जगह
भ्रमण करते हुए भौंरोंके भुन भुनाट शब्द सुन पड़ते थे। कोकिल हंस और भौंरोंके महा मनोहर शब्द होते
थे इसलिये वहांकी शोभा बड़ी ही मनको हरण करनेवाली थी ॥ २१ ॥ वहांके ग्वालोंकी स्त्रियोंके स्तन स्वभावसे
ही स्थूल थे इसलिये स्थूल स्तनोंकी अभिलाषा रखनेवालीं अन्य स्त्रियां रात दिन इस बातका डाह कर कि हमारे
ऐसे स्थूल स्तन क्यों नहीं ? क्रोधमें भभलतीं रहतीं थीं। वह देश सुगन्धित पदार्थोंकी सुगन्धिसे सदा महकता
रहता था अतएव वहांपर भ्रमण करनेवाले देवोंकी देवांगनाओंके शरीर और कपोल भी उत्कट सुगंधिसे सदा
महकते रहते थे इसलिये देवगण वहांपर देवांगनाओंके कपोलोंके चुम्बन करनेमें और शरीरोंसे आलिंगन करने
में ही सदा उत्सुक बने रहते थे ॥ २३ ॥ वहांकी नदियां संभोगकालमें रसास्वादन करनेवालीं वेश्या सरीखी
जान पड़तीं थीं क्योंकि जिस प्रकार वेश्या कुटिल होती है उनका चित्त कभी भी सीधा साधा सरल नहीं दीख
पड़ता उसी प्रकार वहांकी नदियां भी कुटिल थीं उनका बहाव सीधा न होकर सदा चक्करदार होता था। जिस
प्रकार वेश्या "विभ्रमान्विताः" विलासप्रिय होती हैं नदियां भी जलके भ्रमरोंसे व्याप्त थीं। वेश्या जिस प्रकार
हृदयकी गूढ़ होतीं हैं—कोई भी उनके मनका भाव नहीं पहिचान सकता उस प्रकार वे नदियां भी अपने हृदय
भागमें अत्यन्त गहरी थीं। वेश्या जिस प्रकार शरीरपर कमल धारण किये रहतीं हैं उस प्रकार वे नदियां भी
कमलोंसे अत्यन्त शोभायमान थीं। जिस प्रकार वेश्याओंके पयोधर स्तनोंका हर एक उपभोग कर सकता है
उसी प्रकार उन नदियोंके जलका भी हरएक उपयोग करता था। जिस प्रकार वेश्यायें उन्नत नितम्बोंको धारण
करने वालीं होती हैं उसी प्रकार वे नदियां उन्नत तटरूपी नितम्बोंको धारण करनेवालीं थीं। वेश्या जिसप्रकार
बोल चालमें बड़ी चतुर रहतीं हैं उसी प्रकार नदियां भी पक्षियोंके महामनोहर शब्दोंसे व्याप्त थीं। वेश्यायें
जिस प्रकार आर्द्र मूत्र मार्गकी धारक होती हैं उस प्रकार उन नदियोंमें भी जल निकलनेके अनेक स्थान विद्य-

पड़ती थीं ॥ २५ ॥ वहांपर मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मुनिगण सदा ध्यानमें लीन रहते थे। उत्तम मार्ग जैनमार्गके
अनुगामी थे। पर्वत बन नदी और पहाड़ोंकी चोटियों पर निवास करनेवाले थे और परम समरसी भावके धारक
थे इसलिये वे उस देशकी अनुपम शोभा स्वरूप थे ॥ २६ ॥ उस रम्यकावती देशके अन्दर एक महापुर नामका
मान थे एवं वेश्या जिस प्रकार अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं उसी प्रकार वे नदियां भी अत्यन्त मनोहर जान
नगर है जिसमें कि विद्वान् लोग सदा जैन सिद्धांतका प्रचार करते रहते हैं इसलिये वह साक्षात् पण्डित स्वरूप
है। शोभामें इन्द्रपुरीकी तुलना करता है एवं सदा अनेक प्रकारकी शोभाओंसे हरा भरा रहता है ॥ २७ ॥
महापुर नगरके घर सतखने वा इकबीस खने तकके बने हुए हैं। लोगोंके प्रवेश करनेके मार्ग—रत्नमयी हैं।
सुवर्णमयी स्तम्भोंके धारक हैं एवं जगह जगह अनेक प्रकारके चित्रोंसे शोभायमान हैं ॥२८॥ महापुरके निवासी
धनियोंके घर ऊंचे ऊंचे तोरणोंसे व्याप्त थे। सुवर्णमयी सोपान—झीनोंसे देदीप्यमान थे और रत्नमयी
स्तम्भोंसे चमचमाने वाले थे ॥२९॥ इन प्रासादोंकी गोलाकार और और रत्नोंकी बनी शिखरें अत्यन्त शोभा-
यमान थीं सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो ये साक्षात् सूर्य हैं वा चन्द्रमा है अथवा कामदेवके कमल हैं वा शेष
नागके मस्तककी उत्तम मणि हैं ॥ ३० ॥ उन प्रासादोंके ऊपर पवनसे फर फरातीं हुईं महामनोहर पताकाएं
अत्यन्त शोभा धारण करती हैं मानो भव्य जीवोंको वे यह कहकर बुलातीं हैं कि आओ भाई देवो! यहां
आकर धर्म सेवन करो ॥ ३१ ॥ इस महापुर नगरमें सदा भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक हुआ करता है सदा पूजा
हुआ करती है। पटह जातिके बाजे और नगाड़े बजते रहते हैं। रमणियोके गान नृत्य और प्रेमपूर्वक संभाषण
होते रहते हैं स्त्रियां उसकी विचित्र ही शोभा बढ़ातीं हैं क्योंकि वे महा सुन्दरी होतीं हैं। अत्यन्त कामिनीं
होतीं हैं। कमलके समान नेत्रवालीं कठिन और उन्नत नितम्बोंकी धारक एवं पीन और स्थूल स्तनोंसे शोभा-
यमान रहती हैं। जिस समय वे आती जाती हैं उस समय आपसमें एक दूसरोंके स्तनोंके भिड़ावसे अनेक
चोलियोंके बन्धन टूट जाते हैं एवं अपने हाव भाव और विलासोंसे देवोंके भी चित्तोंको हरण करती हैं।३४।
महापुर नगरके लोग धन पाकर उसे भोग विलासोंमें ही व्यय करनेवाले नहीं हैं किन्तु उत्तम आदि पात्रोंको
भक्ति पूर्वक दान देनेवाले हैं इसलिये वहांके धनी परम दानी हैं तथा वहांके शीलवान भव्यजीव धर्मकी प्राप्ति
की अभिलाषासे सदा मुनिलिंग धारण कर उत्तम तप तपने वाले हैं ॥ ३५ ॥ उस नगरमें सब लोग धनी ही
दीख पड़ते हैं कोई भी निर्धन नहीं दीख पड़ता। सब चतुर ही हैं मूढ़ नहीं। सब विवेकी ही हैं विवेक रहित

और प्रशंसा करने वाले ही हैं। आलसी दुष्ट और निन्दा करनेवाले नहीं तथा सब
नहीं। सब उद्योगी सज्जन और प्रशंसा करने वाले ही हैं। आलसी दुष्ट और निन्दा करनेवाले नहीं तथा सब ही अमीर हैं कोई छोटा नहीं ॥३६॥ उस महापुर नगरका स्वामी राजा पद्मसेन तथा जिसके लिये बलवान भी शत्रुओंका जीतना खेल सरीखा था। जो अत्यन्त बुद्धिमान था। अपने प्रचण्ड पराक्रमसे समस्त पृथ्वीतलको वश करने वाला था। धीर गंभीर बलवान और सज्जन था। नागके समान उसकी दोनों भुजायें थी। सिंहके समान जो पराक्रमी था। लक्ष्मीके समान स्थूल स्कन्धोंका धारक था। शास्त्रोंका ज्ञाता, युद्ध करनेके लिये सदा उत्साही भयसे रक्षा करनेवाला सौम्य समयानुसार क्रूर दाता प्रियवादी काम क्रीड़ाका जानकार कमलके समान प्रफुल्लित नेत्रोंका धारण करनेवाला षड्वर्गी अर्थात् समयानुसार काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यरूप छः वर्गों का धारण करनेवाला और चन्द्रमाके समान निर्मल यशका धारण करनेवाला था। तथा जिस प्रकार इन्द्र स्वर्ग-लोककी रक्षा करता है और नागदेव अधोलोकका पालन करनेवाला है उसी प्रकार वह राजा पद्मसेन महापुरकी रक्षाका करनेवाला था ॥४०॥ बैलके समान उन्नत स्कन्धोंका होना रणमें उत्साह रखना गुप्तरूपसे बलका धारण करना महान उद्योगी रहना क्रूर और सौम्यपना एवं दातापना ये महाराजके लक्षण हैं राजा पद्मसेन इन समस्त लक्षणोंका धारक था ॥ ४१ ॥ राजा पद्मसेनके राज्य पालन करते समय न तो कहीं भी किसी प्रकारका प्रजाको भय था न दण्डकी शंका थी। न किसीकी निन्दा सुन पड़ती थी। न किसी प्रकारका दुःख था और न कहीं किसीका तिरस्कार ही सुन पडता था। यह नियम है कि जो लोग धर्मात्मा होते हैं वे न्याय मार्गका उल्लंघन नहीं करते एवं जो मनुष्य नीति और शास्त्रमें कुशल होता है—धर्मात्मा होता है वह भी धर्मात्माओंको कभी पीडा नहीं देता। महापुर नगरमें राजा प्रजा दोनों धर्मात्मा थे इसलिये वहां कोई उपद्रव न था ॥ ४२ ॥

वह राजा पद्मसेन धर्म अर्थ और काम शास्त्रोंका परिपूर्ण जानकार था। समस्त सामन्त गण उसके चरण कमलोंकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे और वह महा मनोज्ञ था ॥४४॥ राजा पद्मसेनकी रानीका नाम पद्मा था। रानी पद्मा अत्यन्त स्नेह करनेवाली थी कमलके समान नेत्रोंवाली थी। उसके दोनों हाथ कमलके समान कोमल थे। स्तनोंका खिलाव भी कमल सरीखा था इसलिये वह साक्षात् पद्मिनी सरीखी थी ॥४५॥ वह रानी लीला-पूर्वक चलनेवाली थी। चंचल नेत्रोंकी धारक थी। सारा शरीर उसकी अच्छी तरह लालित था। दुखरूपी अन्धकारको नाश करनेवाली ज्योत्स्ना—चांदनी थी अतएव भोगरूपी समुद्रको बढ़ानेवाली थी ॥४६॥ इस रानी पद्माके साथ वह राजा पद्मसेन मनमानी रतिक्रीड़ा करता था कभी आलिङ्गन करता था कभी चुम्बन करता तो

कभी कभी अनेक आसनोंको
तथा भोग विलास करते समय कभी हास्यमिश्रित वचनोंका उपभोग करता था सदा राजाके साथ
कभी हास्यमिश्रित वचनोंका उपभोग करता था तथा भोग विलास करते समय कभी कभी अनेक आसनोंको कि सदा उसके साथ वह
काममें लाना था ॥४७॥ वह रानी पद्मा भी अत्यन्त कामिनी थी इसलिये वह भी बेधड़क हो सदा राजाके साथ ग्रन्थकार श्री
विषयभोग भोगती थी। राजा पद्मसेन भी इतना अधिक रानी पद्मापर स्नेह रखता था कि सदा उसके साथ वह
विषय भोगोंमें मग्न बना रहता था एक क्षणके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहता था। ग्रन्थकार श्री
ब्रह्मकृष्णदास भी अपने नामकी छाप लगाते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार पूरमल्लाको कृष्णदास भी एक क्षणके
लिये भी नहीं छोड़ना चाहते थे तथा जिस प्रकार नवमे नारायण कृष्णकी स्त्री राधिका सदा कृष्णके साथ विषय
भोगती थीं एवं कृष्ण भी क्षणभरके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहते थे उसी प्रकार राजा पद्मसेन
और रानी पद्माकी दशा थी दोनोंमें अधिक प्रेम होनेसे एक दूसरेको छोड़ना नहीं चाहता था ॥४६॥ वह रानी
पद्मा हाव भाव चित्तके उल्लास भोग समयमें कंपना भूषणोंके शब्द अर्ध स्खलित बचन हास्य और शरीरकी
कांतिसे सदा राजा पद्मसेनको प्रसन्न रखती तथा कामाकुल वह राजा भी मर्दन, चुम्बन, आलिंगन और दन्त-
च्छेदन आदि रतिकालीन क्रियाओंसे सदा उस रानीको सन्तुष्ट रखता था। इस प्रकार मनमानी भोगक्रीड़ा
करते करते उन दोनों दम्पतीके पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ जोकि समस्त राज लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक
था ॥५२॥ वह राजा इच्छानुसार विषय भोगोंको भोगता भोगना सदा सुख सागरमें मग्न रहता था। समय
कहां चला जा रहा है इस बातका उसे पता तक नहीं लगता था। ठीक ही है जो लोग स्त्रियोंका रस चख
चुके हैं उनसे वह स्वाद जल्दी नहीं छूटता।

महापुर नगरके समीपमें एक प्रीतिंकर नामका महा वन था। एक दिन सर्वगुप्त नामके केवली जो कि
समस्त जीवोंकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहते थे आकर उसमें विराज गये। भगवान केवलीके प्रभावसे प्रीति-
ङ्कर वनके समस्त वृक्ष फूल और फलोंसे लदबदा गये। कोकिला अपनी मधुर ध्वनि अलापने लगीं और भौंरे
भुनभुनाट शब्द करने लगे इसलिये समस्त बन उस समय अत्यन्त शोभायमान दीख पड़ने लगा ॥५५॥ वनकी
इस प्रकार वृक्षोंसे जायमान विचित्र शोभा देखकर उस बनका रक्षक माली चकित रह गया और उसके मनमें
यह विचार उठने लगा कि क्या यह स्वप्न है अथवा देव कृत माया जाल है? तीन चार पैड़ आगे बढ़कर जब
उसने देखा तो केवली भगवान सर्वगुप्त उसे दीख पड़े वे भगवान पर्यंकासन (पलौती) से विराजमान थे। ध्यान
करनेके कारण उनके नेत्र इकटक निश्चल थे। निश्चल रूपसे भगवन ऋषभदेवका वे ध्यान कर रहे थे। दयाके

सागर थे। सौम्यमूर्तिके धारक थे। क्रूर भी मृग व्याघ्र आदि उनकी सेवा करते थे। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल प्रभाके धारक थे। कांतिके पुंजस्वरूप थे। जाज्वल्यमान सूर्यके समान थे। तपके खजाने थे। एवं क्षीरोदधि समुद्रमें सुखसे बैठनेवाला जिस प्रकार हँस और चन्द्रमा दीख पड़ता है उसके समान विराजमान थे ॥५६॥ भगवान केवलीको देखकर वनपालका शरीर आनन्दसे पुलकित हो गया वह शीघ्रही राजा पद्मसेनके पास गया एवं छहों ऋतुओंके पुष्प और फल भेंटकर इस प्रकार निवेदन करने लगा—स्वामिन ! आपके पुण्यके उदयसे प्रीतिङ्कर बनमें सर्वगुप्त नामके केवली जिनके कि चरण कमलोंको बड़े बड़े इन्द्र आकर पूजते हैं, आकर विराजे हैं। बनपालकी यह आनन्द प्रदान करनेवाली बात सुनकर राजा पद्मसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और भक्ति पूर्वक मुनिराजकी बन्दनाके लिये अनेक सामन्त महारानी और पुत्रोंके साथ शीघ्र ही चल दिया ठीक भी है जो महानुभाव भगवान अरहन्तके चरणोंमें पूर्ण भक्ति रखनेवाले हैं वे अवसर प्राप्त होनेपर उसी भक्तिमें लीन होकर भगवान अर्हन्तके मार्गके अनुगामी मुनिराजोंकी बन्दनाके लिये प्रति समय तैयार रहते हैं। वह राजा पद्मसेन मुनिराजके पास पहुंचा भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। महामनोहर अष्ट द्रव्योंसे उनकी पूजा की। पूजाके अन्तमें गद्य और पद्योंसे उनकी स्तुति की एवं अपने बैठने योग्य स्थान पर अपने योग्य आसनसे बैठ गया ॥६४॥ पद्मसेनकी इस प्रकार पवित्र भक्ति देखकर मुनिराजने अपने दिव्यज्ञानसे उसे भव्य और सरल स्वभावी समझा इसलिये वे तात्त्विक और दयापूर्ण इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे—राजन् ! यह संसार नाना प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त है उसमें यह जीव सदा यहांसे वहाँ और वहांसे यहां चक्कर लगाया करता है यह जीव अनादि निधन है—इसके आदि अन्तका कोई निश्चय नहीं। न इसे किसीने बनाया है तथा यह चैतन्य स्वरूप है ॥६६॥ इस संसारमें तिर्यंच आदि पर्यायोंकी अपेक्षा मनुष्यपना अत्यन्त दुर्लभ है। यदि दैवयोगसे मनुष्यपना प्राप्त भी हो जाय तो उत्तम कुलका मिलना कठिन है यदि प्रबल भावसे उत्तम कुल भी प्राप्त हो जाय तो जिसमें दया और दान प्रधान है ऐसा उत्तम धर्म प्राप्त नहीं होता। धर्म संसारमें चिन्तामणि रत्न है क्योंकि धर्मसे राज्य प्राप्त होता है एवं धर्मसे ही स्वर्ग, बल, सुख, यश, उत्तम पुत्र, धन, उत्तम बुद्धि पीन स्तनवाली स्त्रियां विद्वत्ता चक्रवर्तीपना आयपना देवेंद्रपना इच्छानुसार भोग उत्तमरूप और तीर्थंकरपना भी प्राप्त होता है ॥६९॥ जो मनुष्य धर्मका सेवन करनेवाले नहीं—धर्म रहित हैं वे बुद्धि रहित मूर्ख होते हैं। पुत्रहीन होते हैं निर्धन गूंगे अभागे और स्त्रियोंसे रहित होते हैं तथा उस परम पावन धर्मसे रहित पुरुष विरूप बदसूरत होते हैं चोर होते हैं, नीच

किंकर रात दिन भार लादनेवाले जन्मपर्यन्त दुखी और अपमानित होते हैं ॥७१॥ जिस धर्मका यह फल बत-
लाया गया है वह धर्म मुनि और श्रावकके भेदके दो प्रकारका बतलाया गया है उनमें मुनिधर्मसे मोक्षकी प्राप्ति
होती है और श्रावक धर्मकी कृपासे संसारकी अनेक विभूतियां आकर मिलतीं हैं ॥७२॥ रात्रिमें भोजन करनेसे
अनेक जीवोंका कलेवर भक्षण करना पड़ता है और व्रतोंका भी भले प्रकार पालन नहीं होता इसलिये व्रतियोंको
कभी रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिये। रात्रिमें किये जानेवाले पूजा स्नान दान आदि भी किसी
प्रकारकी शुद्धि प्रदान नहीं कर सकते। पक्षीगण जिनके कि अन्दर किसी प्रकारका धर्मज्ञान नहीं होता जब वे
भी रात्रिमें नहीं खाते तब आश्चर्य है मनुष्य क्यों रात्रिमें खाते हैं? जब दो घड़ी दिन बाकी रह जाय तब
मनुष्योंको भोजन करना चाहिये क्योंकि यही आगममें विधान है किन्तु जो मनुष्य उसके बाद भी भोजन करते
हैं वे मनुष्य नहीं किन्तु मांस खानेके लोलुपी राक्षस हैं विशेष क्या जो मनुष्य प्रातःकाल दुपहर और सायंकाल
तीनोंकाल भोजन करनेवाले हैं वे मनुष्य निर्धन होते हैं रोगी थोड़ी आयुवाले और यमराजके मुखमें प्रवेश करने
वाले होते हैं ॥७६॥ सज्जन पुरुषोंकी तो बात ही क्या है किन्तु जो पुरुष घोर पाप करनेवाले महापापी हैं उनकी
भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि उससे अनेक पाप कर्मोंका बन्ध होता है और पर भवमें दुर्गतिके अन्दर
जाना पड़ता है ॥ ७७ ॥ निन्दा करनेवाले, व्रत ग्रहण कर उसे नष्ट करनेवाले, पराये दोषोंके प्रकाश करनेवाले,
निद्रा छेदनेवाले और अन्तराय (विघ्न) पहुंचानेवाले ये पांच प्रकारके चांडाल माने जाते हैं ॥७८॥ जो मनुष्य
वा स्त्रियां प्रेम पूर्वक धर्मके स्थानोंमें अर्थात् धर्मायतनोंकी निन्दा करनेवाले हैं—निन्दा करनेमें आनन्द माननेवाले
हैं वे संसारमें उस निन्दाके करनेसे बगली उल्लू और बिल्ली होते हैं एवं उनकी जीभके खण्ड खण्ड हो जाते
हैं ॥७९॥ यह संसार असार है इसमें किसका कौन प्यारा नहीं है अर्थात् जो एक पुरुष किसीका द्वेषी होता है
वही दूसरेका प्यारा होता है वास्तवमें प्यारा स्वार्थ है जिसका जिससे स्वार्थ सटता है वही उसका प्यारा कहा
जाता है स्त्री और कुटुम्ब आदि कोई किसीका प्यारा नहीं ॥ ८० ॥ इस संसारमें जो पुरुष पुण्य और पापका
उपार्जन करनेवाला है वही अकेला सुखी दुःखी और स्वर्गका सुख भोगनेवाला होता है पुण्य और पापमें स्त्री
पुत्र आदिका विभाग नहीं। अपने कियेका आप ही फल भोगना पड़ता है दूसरा स्त्री पुत्र आदि उसमें हिस्सा
नहीं बटा सकता ॥८१॥ यह जीव शरीर आदि सम्बन्धी पांच प्रकारके दुःखको स्वयं अकेला ही सह सहता है
नरकमें उसे क्षण भरके लिये भी सुखी करनेको कोई समर्थ नहीं ॥८२॥ जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं उनके सम्यग्द-

र्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रकी भावना नहीं बन सकती तथा उनका जन्मपर्यंत भी तपा हुआ मिथ्यादृष्टि तप निष्फल होता है ॥ ८३ ॥ जो तप क्रोध पूर्वक किया जाता है वह तप कैसा भी उत्कृष्ट क्यों न हो तथा जन्मपर्यन्त भी क्यों न तपा गया हो परन्तु वह जिस प्रकार दावाग्निसे क्षणभरमें वन भस्म हो जाता है उसी प्रकार उस क्रोधके द्वारा भस्म हो जाता है उसका कोईभी फल नहीं होता ॥८४॥ इस जीवने अनेक बार निष्कंटक राज्यका भोग किया है तब भी उसराज्यसे इसे सन्तोष नहीं हुआ है ॥ ८५ ॥ जिस प्रकार सर्प अत्यन्त भयङ्कर होते हैं उसी प्रकार भगवान जिनेन्द्रने इन भोगोंको कहा है इनके जालमें फंसकर प्राणिगण अपने स्वरूप से च्युत हो जाते हैं और संसारमें भ्रमण करते फिरते हैं तथा जो पुरुष स्त्री और धनमें मोह रखते हैं उन्हें ही अपने जीवनका सर्वस्व समझते हैं वे तिर्यंच गतिके अन्दर उत्पन्न हो अनेक क्लेश भोगते हैं ॥ ८६ ॥ स्पर्श आदि पांचों इन्द्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले बहुत प्रकारके भोगोंको चिरकाल भोगकर भी जो महानुभाव अंतमें धर्मका आचरण नहीं करते—उन भोगोंमें लिपटे रहते हैं वे संसारमें 'महामूर्ख' माने जाते हैं ॥ ८७ ॥ संसारमें सबसे बढ़कर विभूतिका धारक चक्रवर्ती होता है और सबोंसे अधिक सुखी देव गिने जाते हैं परन्तु आयुके अंतमें उन्हें भी मृत्युके अन्दर प्रवेश करना पड़ता है इसलिये धर्मात्माओंको अवश्य धर्मका आचरण करना चाहिये ॥ ८८ ॥ राजन् ! इससे आगेके दो भवोंमें तुम्हारे बड़े बड़े ऋद्धिधारी देव भी पूजा भक्ति करेंगे एवं तुम निर्मल ज्ञानरूपी लोचनके धारक तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ होनेवाले हो ॥ ९० ॥ केवली सर्वगुप्तके इस प्रकार आनन्द प्रदान करनेवाले वचन सुन राजा पद्मसेनको बड़ा आनन्द हुआ एवं तीर्थंकर प्रकृतिसे जायमान सुखका उसी समय अनुभव होने लगा। उनके हृदयमें उस समय बैराग्य भावनाका उदय हो गया वह अपने समस्त बाधवों को साक्षात् बंधनके समान समझने लगे। स्त्रियोंको महादुःख देनेवालीं नरककी गलियां समझने लगे एवं अपने आत्मकल्याणको विचार कर वह समस्त विभूतिसे एकदम विरक्त हो गये हैं ॥ ९१ ॥ राजा पद्मसेनके पुत्रका नाम पद्मनाभ था समस्त सामन्तोंके समक्षमें शीघ्र ही उनने अपने पुत्र पद्मनाभको समस्त राज्य संभला दिया और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर ली ॥९२॥ आचारांग आदि ग्यारह अंगोंका उसने अच्छी तरह अध्ययन किया। भले प्रकार उसके अर्थका विचार किया एवं अनेक प्रकार सबोंका आचरण करनेवाला वह निर्द्वन्द्व होकर पृथ्वी पर विहार करने लगा ॥ ९३ ॥ वे कमलोंके समान फूले हुए नेत्रोंके धारक मुनिराज पद्मसेन दर्शन विशुद्ध आदि सोलह भावनाओंको सिंहके समान निर्भीक हो अच्छी तरह भावने लगे। मुनिराज पद्मसेनने जिन सोलह भाव-

नाओंको भाया था उनका संक्षेपमें स्वरूप इस प्रकार है :—भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट मोक्ष मार्गमें जो
निर्मल रुचिका होना है उसका नाम दर्शन है निश्चल मूर्ति यह जीव उस चैतन्य स्वरूप दर्शनको जानने वाला
है उसी दर्शनका जो अतिचार रहित विशुद्धि है उसे भगवान जिनेन्द्रने दर्शन विशुद्ध भावना मानी है। देव
शास्त्र गुरुओंमें विनय भावका रखना विनय सम्पन्नता नामकी भावना है। शीलके अठारह हजार भेद माने हैं
उन शीलोंका जो भावनासे कल्पना किये अतीचारोंसे रहित होकर पालन करना है वह शील व्रतेष्वनतिचार
नामकी भावना है। आत्मा नित्य है इस प्रकारका सदा विशुद्ध ज्ञान रखना श्रुतका अवगाहन करना वह पूर्व
आचार्योंने ज्ञानोपयोग नामकी भावना बतलाई है। स्त्री सुवर्ण पुत्र यौवन विषय और स्वामीपनाको सदा अनित्य
समझना उनसे उदास रहना भगवान जिनेन्द्रने संवेग नामकी भावना कही है। जो धर्मात्मा पुरुष भावसे शक्ति
पूर्वक दान देनेवाले हैं उनके शक्तितस्त्याग नामकी भावना होती है तथा वह दिया हुआ दान निरर्थक नहीं
जाता किन्तु उससे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ती होती है उस उत्तम बुद्धिसे पुण्य और पश्चात् भी स्वसुख मिलता है।
अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्योंको सदा उत्तम तप करना चाहिये जो महानुभाव ऐसा करते हैं उनके शक्ति-
तस्तप नामकी भावना होती है किन्तु जो ऐसा नहीं करते वे आर्त ध्यानसे व्यंतर जातिके नीच देव वा म्लेच्छ
होते हैं और अनेक प्रकारके क्लेश भोगते हैं जिस उपायसे मनुष्योंका मन पदार्थोंसे हटकर आत्म स्वरूपमें
लीन हो आचार्योंने उसी तपको उत्तम तप कहा है और वही तप मोक्षके प्राप्त करानेवाला है किन्तु जो महा-
भाव मनका तो निरोध करते नहीं और तप उग्र और महान तपते ही हैं उन्हें उस तपकी फल स्वरूप राज्य
आदि विभूतियां तो प्राप्त हो जाती हैं परन्तु वे मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते। मुनियोंका सुख प्रश्न अर्थात् किसी
कारणसे विघ्नके उपस्थित हो जानेपर उस विघ्नको नाशकर उनके तपकी रक्षा करना साधु समाधि है। अथवा
धर्म्म ध्यानकी प्राप्तिके लिये उत्तम चिन्ता आत्म स्वरूपका चिन्तवन करना, साधु समाधि है। मुनि आदि गुणि-
योंके किसी कारण दुःख उपस्थित हो जानेपर उत्तम उपायसे उसे दूर करना उनकी सेवा चाकरी करना वैयावृत्त्य
कहा जाता है वह बैयावृत्त्य आचार्य उपाध्याय आदि दश प्रकारके साधुओंके भेदसे दश प्रकारका है। इस
बैयावृत्त्यरूप भावनाके भानेसे जिस प्रकार स्वामीके न रहनेपर सैन्य तितर बितर कर नष्ट हो जाती है उसी
प्रकार अधर्म भी नष्ट हो जाता है। छियालिस गुण युक्त और ज्ञानसे सर्वत्र विद्यमान अर्थात् ज्ञानसे लोक और
अलोकको जाननेवाले भगवान अर्हंतकी जो स्तोत्र आदिसे भक्ति करना है वह शास्त्रमें अर्हद्भक्ति कही गई है।

छत्तीस गुणोंके धारक तपके भंडार और ध्यान करनेवाले आचार्यकी जो भावपूर्वक भक्ति करना है वह आगममें आचार्य भक्ति मानी गई है। बहुत शास्त्रोंके जानकार, ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके धारक महात्माकी जो भक्ति करना है वह बहुश्रुत भक्ति आगममें कही गई है। सिद्धांत वाक्योंको सर्वथा सत्यमान कर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करना और आगमके पढ़नेका जो समय बताया गया है उसी समय उसे पढ़ना असमयमें न पढ़ना एवं किसी प्रकारका उसमें भ्रम न रखना प्रवचन भक्ति है। सामायिक चतुर्विंशतिस्तव बन्दना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह प्रकारके आवश्यक माने हैं इन छह प्रकारके आचरणोंका उल्लंघन न करना एवं तीनों काल उनका यथायोग्य आचरण करना आवश्यकापरिहाणि नामकी भावना है। करोड़ों उपायोंसे जैनधर्मके महात्म्यक जो चिन्तवन करना है वह चैतन्य स्वरूपकी चिन्ता करनेवाले आचार्योंने मार्ग प्रभावना नामकी भावना मानी है। जो मनुष्य धर्मात्मा हैं। व्रती हैं। शील और तपके भण्डार हैं। दोनों हैं और कोमल चित्तके धारक साधर्मी हैं उनकी प्रशंसा करना प्रवचन वात्सल्यके नामकी भावना है। वे तपके भण्डार मुनिराज पद्मसेन समस्त प्रकारकी परिग्रहसे रहित हो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंको अपने चित्तमें सदा भाते रहते थे ॥११३॥ सोलह भावनाओंके भानेसे उन्होंने संसारसे पार करनेवाला तीर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया। कभी एक मास तो कभी दो तीन चार मास पर्यंत उपवास धारण करनेके कारण उनका शरीर कृश होता गया ॥ ११४ ॥ जिसमें तीव्र हिमके कारण वृक्षोंके समूहके समूह खाख हो जाते हैं और जो शरीरको तीव्रसे तीव वेदना करनेवाला है ऐसे शीत कालमें वे पूज्य मुनिराज नदीके तटपर बैठकर कायोत्सर्ग मुद्रा धारण करते थे ॥ ११५ ॥ ग्रीष्मकालमें वे योगिराज परमात्माके स्वरूपको ध्याते हुए सूर्यके सन्मुख मुखकर विराजमान होते थे एवं मध्याह्नकालके तापसे दग्ध होनेके कारण उनका सारा शरीर काला पड़ जाता था ॥ ११६ ॥ विजलीकी तड़कनसे जो महाभयङ्कर जान पड़ता है ऐसे वर्षाकालमें वे मुनिराज वृक्षके तलमें बैठकर उत्तम तपका आचरण करते थे एवं लताओंके समूहसे सारा शरीर उनका ढक जाता था ॥ ११७ ॥ वे मुनिराज राग और द्वेषसे सर्वथा पराँगमुख थे। मौनी थे निद्रा और आलस्य उनके पासतक नहीं फटकता था। सदा चैतन्य स्वरूपके ध्यानमें तत्पर रहते थे एवं जिस प्रकार मेरु पर्वत स्थिर है उसी प्रकार वे भी ध्यानकालमें स्थिर रहते थे ॥११८॥ मुनिराज पद्मसेनकी अलौकिक समता देखकर मृगगण उनके आस पास किलोल करते थे एवं सिंह बाघ पक्षी और हाथी सदा उसके पास निर्वैर रूपसे रहते थे ॥११९॥ मुनिराज पद्मसेनके कानोंको छोटे छोटे पक्षियोंने अपना घोंसला बना लिया था एवं जटा उनकी

कभी कभी ऐसी बढ़ जाती थी कि उनका सारा शरीर ढक जाता था—दीख नहीं पड़ता था ॥ १२० ॥ ग्रन्थकार विरक्त महात्माओंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—वे महानुभाव संसारके अन्दर धन्य और भाग्यशाली हैं जो कि स्त्री और कुटुम्ब आदिसे मोह तोड़कर परिग्रहसे विरक्त हो गये हैं। राग और द्वेष जिनके पास तक नहीं फटकने पाता एवं बैराग्य भावनाका सदा चिन्तवन करते हुए जो सदा बनके अन्दर निवास करने वाले हैं ॥ १२१ ॥ दिव्य ज्ञानी मुनिराज पद्मसेनने घोर तप तपा एवं पुण्यकी कृपासे उन्होंने उच्चगोत्र शुभ आयु और साता वेदनीय कर्मके साथ साथ शरीरका परित्याग कर दिया ॥१२२॥ वे मुनिराज विशुद्ध भावोंकी कृपासे सहस्रार नामक बारहवें स्वर्गमें सहस्रारेंद्र हुए एवं अनेक देवगण उनकी सेवा करने लगे ॥ १२३ ॥ वह मुनिराज पद्मसेनका जीव सहस्रारेंद्र अन्तर्मुहूर्तमात्रमें ही संपुट नामकी शिलासे उठकर पूर्ण युवा हो गया एवं अपने देदीप्यमान रूपसे समस्त दिशाओंको जगमगाने लगा ॥ १२४ ॥ चन्द्रमाके समान मनोहर मुखसे शोभायमान और अत्यन्त रूपवान सहस्रारेंद्र देव ज्यों ही संपुट शिलासे उठकर खड़ा हुआ कि पीन स्तनोंकी धारक देवांगना उनके पास आईं और इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन करने लगीं—हे स्वामिन्! आपने ऐसा कौनसा बहुतसा दिव्य पुण्य उपार्जन किया जिससे आपका जन्म यहां आकर हुआ क्योंकि यह नियम है कि सारी सिद्धियां पुण्यबलसे प्राप्त होती हैं बिना पुण्यके एक भी विभूति प्राप्त नहीं हो सकती ॥१२६॥ क्या आपने पहिले श्रीमान जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंकी पूजा की थी वा चिरकाल तक घोर तप तपा था अथवा छह कायके जीवोंकी प्रतिपालना की थी वा उत्तम मध्यम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रोंको अत्यन्त आदरसे आहार औषधि शास्त्र अभय ऐसा चार प्रकारका दान दिया था अथवा तेरह प्रकारके परमोत्तम चारित्रको धारण किया था? बस इस प्रकार मधुर वचनोंमें स्तुति कर देवांगना नम्रीभूत हो जब यथास्थान बैठ गईं उस समय वह सहस्रारेंद्र देव भी सहस्रार स्वर्गकी दिव्य विभूति देख इस प्रकार अपने मनमें विचार करने लगा—मोतियोंकी लाखों मालायें और भांति भांतिकी मणियोंसे रचे गये एवं जिनकी रचना अत्यंत कारीगरीको लिये हुए हैं ऐसे ये विमान मुझे क्या दीख पड़ते हैं। नाना प्रकारकी अनेक ऋद्धियोंसे व्याप्त यह मनोज्ञ स्थान क्या है? एवं बिजलीके समान चमचमाती हुई प्रभाकी धारक एवं अत्यंत मधुर बोलने वालीं ये देवांगनाएं कौन हैं? मैं कौन था और यहां कैसे आ गया? बस इस प्रकारकार संशय हो ही रहा था कि उसी समय उसे तीसरा ज्ञान—अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे उसका सारा भ्रम एक ओर किनारा कर गया ॥ १३२ ॥

अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगा कर सहस्रारेन्द्र देवने अपना सारा पूर्व भवका सम्बन्ध जान लिया एवं
उसका हृदय आनन्दसे पुलकित हो गया। उसे उस प्रकार आनन्दायमान देखकर देवांगनाओंके हर्षका भी
पारावार नहीं रहा। उनमें कोई देवांगना उसके मस्तकपर महामनोहर मुकुट लगाने लगी। कोई कोई महामनो-
हर सुगन्धित वस्त्र उसे पहिनाने लगीं। किसीने उसे अङ्गद (बाजू बंध) पहिनाया। कोई गलेमें हार पहिनाने
लगी। किसी किसीने मलयागिरि चन्दनसे उस देवके शरीरका उबटन किया कोई कोई ललाटपर तिलक लगाने
लगी। किसी किसीने पद्मराग मणिकी बनी हुई एवं मध्य भागमें रत्नोंकी लालिमासे अङ्कित करधनी उस देवके
कटिभागमें पहिनाई। कोई कोई कामसे आकुलित और हंसने वाली देवांगना उस देवके दिव्य रूपपर मुग्ध हो
चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला दर्पण दिखाने लगी तथा कोई कोई देवांगना जिस प्रकार मंगलदासके बड़े
भाई कृष्णदासको पूरमल्ला नामकी स्त्री चमर ढार कर सुखी बनाती थी उसी प्रकार उस देवको भी चमर ढार
ढार कर बड़े आदरसे सुखी बनाने लगी॥ ३८॥ इस प्रकार अनेक श्रृङ्गार जनक वस्तुओंसे सजाया गया वह
देवराज अत्यन्त शोभायमान जान पड़ने लगा तथा सहस्रार स्वर्गमें होनेवाली दिव्य लक्ष्मीको देखकर वह देव
इस प्रकार विचारने लगा—अनेक देवोंसे सेवित यह स्वर्गका राज्य धर्मका फल है। यह दिव्य राज्य मुझे उत्तम
पुण्यकी कृपासे मिला है क्योंकि धर्मसे संसारमें सब कुछ प्राप्त हो सकता है ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो धर्मकी
कृपासे न मिलती हो। बस इस प्रकार अपने मनमें विचार कर वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देव अनेक देवी और
देवोंसे वेष्ठित हो तीर्थ यात्राके लिये मेरु पर्वतपर गया नन्दीश्वर आदि द्वीपोंमें भी जिन चैत्यालयोंकी वन्दनाके
लिये भ्रमण करने लगा इस प्रकार असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें जाकर और उन्हें देखकर वह अपने स्थान लौट
आया एवं प्रतिदिन अनेक देवांगनाओंके साथ साथ क्रीड़ा पर्वतोंमें अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें करने लगा। वह
पुण्यात्मा देवराज कमलोंकी बेलोंसे व्याप्त एवं जिसका आस्वाद सुगन्धिसे मतवाले भौंरे सदा लेते रहते थे ऐसे
वावड़ियोंके स्वच्छ जलमें वह स्नान कर, भगवान जिनेन्द्रोंकी पूजा करने लगा॥१४३॥ सहस्रार नामक बारहवें
स्वर्गमें देवांगनाओंके भूषणोंके शब्द सुनने मात्रसे ही देवोंकी मैथुन अभिलाषा तृप्त हो जाती है इसलिये वह
सहस्रारेन्द्र सदा शब्द जनित भोगोंमें लीन रहता था। अनेक देवांगनाओंके मध्यमें बैठकर आनन्द किलोल
करता था एवं हा हा हूँ हूँ आदि देवोंके शब्दोंसे जायमान नृत्यको सदा निर्द्वन्द्व हो देखता रहता था॥१४४॥
उस पुण्यात्मा देवेन्द्रकी अठारह सागर प्रमाण आयु थी। एक धनुष प्रमाण शरीरकी ऊंचाई थी और उसके

हाथ बज्रसे अङ्कित थे ॥१४५॥ सहस्रार स्वर्गमें पद्म और शुक्लके भेदसे दो लेश्यायें मानी हैं उनमें शुक्ल लेश्या जघन्य रूपसे और पद्म लेश्या उत्कृष्ट रूपसे मानी है। वह देवेन्द्र द्रव्य और भाव स्वरूप जघन्य लेश्या और उत्कृष्ट पद्म लेश्या इस प्रकार दो लेश्याओंसे मण्डित था ॥ १४६ ॥ प्रवीचारका अर्थ मैथुनाभिलाष है। वह देवेन्द्र शब्द प्रवीचारसे तृप्त था। अपने अवधि ज्ञानसे चौथे नरक तककी बातें जान सकता था। अवधिज्ञानका विषयभूत जितना क्षेत्र बतलाया गया है वहां पर्यंत विक्रिया करनेकी वह सामर्थ्य रखता था और अणिमा महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्योंसे शोभायमान था ॥१४७॥ अठारह हजार वर्षोंके बाद वह मनसे आहार ग्रहण करता था और नौ महीनोंके बाद उश्वास लेता था ॥ १४८ ॥ सदा होनेवाले गानोंसे बाजोंके शब्दोंसे नृत्यकलाके रसोंके अनुभवोंसे और देवांगनाओंके महामनोहर रूपोंके देखनेसे सदा उसके लिये सतयुग विद्यमान रहता था ॥१४९॥ हड्डी मज्जा शुक्र आदि सात धातुओंसे रहित उसका शरीर था। कामदेवके समान वह सुन्दर था। समस्त देवोंका स्वामी था एवं असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें सदा क्रीड़ा करनेवाला था ॥१५०॥ वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देवेन्द्र जिसकी बड़े बड़े देव सेवा करनेवाले हैं, जो गङ्गा नदीकी तरंगोंके समान सफेद हाथियोंसे शोभायमान हैं बड़े बड़े क्रीड़ा पर्वत, दिव्य विमान और मरकत मणियां जिसकी दिव्य शोभा बढ़ा रहे हैं ऐसी इन्द्र सम्बन्धी सम्पदा सानन्द भोग करने लगा। ठीक ही है जो मनुष्य भगवान हैं उनके लिये ऐसी कोई भी चीजें नहीं जो धर्मसे प्राप्त न हो जाती हों ॥१५१॥ धर्म संसारमें ऐसा अद्वितीय चिन्तामणि रत्न है कि उससे महामनोज्ञ विभूतियां मिलतीं हैं सुन्दर राज्य, ऐश्वर्य, कीर्त्ति, कला, कौशल, गम्भीरता स्त्रियां नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला रूप, देवोंका स्वामीपना, उत्तम बुद्धि धान्य उत्कृष्ठ और विवेक परिपूर्ण बचन, चक्रवर्तीपना और तीर्थंकरपना सब कुछ प्राप्त होते हैं। विशेष क्या संसारमें ऐसा कोई भी गुणोंका समूह नहीं जो कि धर्मकी कृपासे प्राप्त न हो ॥१५२॥

ब्रह्म कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें पद्मसेन राजाके जीव सहस्रारेन्द्रका विभूति वर्णन करनेवाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥२॥

तीसरा सर्ग।

जो भगवान देवोंके द्वारा भले प्रकार पूजित हैं। काश्यप गोत्रके तिलक हैं। गेरुआ रंगकी प्रभाके धारक हैं एवं जटास्वरूप सुवर्ण की लताओंकी प्रभासे जिन्होंने सूर्यकी प्रभाको भी नीचा कर दिया है उन विमलनाथ

भगवानको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ इसी संसारमें एक जम्बूद्वीप है जो कि अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध चीजोंसे
विख्यात है। जम्बूद्वीपके ठीक मध्यभागमें मेरु पर्वत है और उसकी दक्षिण दिशामें प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है ॥२॥
भरतक्षेत्रके अन्दर एक कंपिला नामकी नगरी है जो कि अपनी शोभासे महामनोहर है। समस्त प्रकारके दोषों
से रहित है। नाना प्रकारके गुणोंसे अलंकृत है। धनसे व्याप्त और सुवर्णमयी महलोंकी शोभासे जाज्वल्य-
मान है ॥३॥ किसी समय उसका रक्षण करनेवाला राजा कृतवर्म्मा था जो कि पुरुदेव बंशसे उत्पन्न था। राजा
समस्त राजाओंमें प्रधान था। बलवान था एवं अपने प्रचण्ड प्रतापसे समस्त पृथ्वीतलको बश करने वाला था
॥४॥ जिस प्रकार नाना प्रकारके रत्नोंसे समुद्र सेवित—व्याप्त रहता है उसी प्रकार वह समस्त सामन्तोंसे सेवित
था। समयानुसार क्रूरता और सौम्य गुणोंसे शोभायमान था एवं सूर्यके समान चमचमाती हुई प्रभाका धारक
था ॥ ५ ॥ जिस प्रकार ब्रह्मलोकको उलंघन कर गंगा नदीका प्रवाह बहता है एवं मोक्षको अतिक्रमण कर
आकाश—अलोकाकाशकी विद्यमानता है उसी प्रकार उत्तम दानरूपी समुद्रसे निकली हुई पृथ्वीको आश्चर्य कर
वह उदयको प्राप्त थी अर्थात् इच्छानुसार दान देनेके कारण वह संसारमें सबोंमें चढ़बढ़ कर था—राजा कृतवर्मा
से बढ़कर उस समय कोई भी दानी नहीं था। वह राजा इतना सुन्दर था कि देव और देवांगनायें उसे बड़ी
आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उसका यश कुन्द पुष्प और चन्द्रमाके समान उज्वल था और अत्यन्त शोभाय-
मान था ॥७॥ राजा कृतवर्माकी महाराणीका नाम जयश्यामा था जो कि चन्द्रमाके समान मुखसे सोभायमान
थी। चन्द्रमाके समान कांतिकी धारक थी। साक्षात् चन्द्रमाकी कला जान पड़ती थी। मिष्ट और मधुर बोलने
वाली थी। राजहँसके समान मनोहर चाल चलनेवाली थी। श्यामा थी एवं कानोंतक विशाल नेत्रोंकी धारक थी
लोग जिस समय उसे देखते थे उस समय वे यही समझते थे कि यह साक्षात् कामदेवकी स्त्री रति है कि लक्ष्मी
है कि पद्मावती देवी है वा चन्द्रमाकी स्त्री रोहिणी वा सूर्यकी स्त्री है ॥८॥ वह महाराणी जय श्यामा पीन स्तनों
से शोभायमान थी उसका कटिभाग अत्यन्त पतला मुष्टिग्राह्य था स्थूल नितम्बोंसे युक्त थी एवं अत्यन्त रूप-
वती थी ॥ १० ॥ उन दोनों दम्पतियोंमें बड़ा भारी आपसमें प्रेम था इसलिये वे रतिक्रीड़ासे जायमान सुखका
बड़े आनन्दसे अनुभव करते थे ॥ ११ ॥

भगवान विमलनाथकी उत्पत्तिका समय निकट जान एक दिन इन्द्रने कुबेरको अपने पास बुलाया एवं यह
कहा—तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथ कंपिला नगरीमें माता जयश्यामाके गर्भमें अवतरेंगे इसलिए तुम्हें

कंपिला नगरीको हर एक प्रकारसे शोभायमान कर देना चाहिये एवं भगवान जिनेन्द्रमें प्रचण्ड भक्ति रखकर
उनके महलके आगनमें रत्नोंकी वर्षा करनी चाहिये ॥१२॥ बस इन्द्रकी आज्ञासे भगवान जिनेद्रकी उत्पत्तिके छः
मास पहिले ही कुवेरने नाना प्रकारके रत्नोंकी वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी ॥ १३ ॥ एक दिन नितम्बरूपी तटोंसे
शोभायमान, कठिन और पीन स्तनोंकी धारक वह माता जयश्यामा गर्भ ग्रहके अन्दर नाना प्रकारके सुगन्धित
पुष्पोंसे व्याप्त एवं हँसोंके पंखोंकी ऊनके समान अत्यन्त कोमल शय्यापर सो रही थी कि अचानक ही उसे रात्रि
के पिलले पहरमें सोलह स्वप्ने दीख पड़े जो कि भगवान जिनेन्द्र स्वरूप कल्याणके सूचन करनेवाले थे और महा
मनोहर थे सबसे पहले स्वप्नमें उसने हाथी देखा जो कि पूर्ण चन्द्रमाके समान शुभ्र था। कुम्भस्थलोंसे शोभा-
यमान था। चौकोर सुन्दर था। झरता हुआ मद उसकी अपूर्ण शोभा प्रगट कर रहा था एवं महापर्वत कैलाश
के समान ऊंचा था ॥१६॥ दूसरे स्वप्नमें बैल देखा जो कि उन्नत स्कन्धोंका धारक था। छोटी ग्रीवासे शोभाय-
मान था। हिरणके समान विशाल नेत्रोंका धारक था। चञ्चल था। तारागणोंकी प्रभाके समान शुभ्र था एवं
उठते हुये छोटे छोटे सींगोंसे शोभायमान था तीसरे स्वप्नमें सिंह देखा जो कि अत्यन्त सफेद था बलिष्ट निर्भय
और महामनोहर था सुन्दर आकारका धारक था उसकी जटायें ऊपर थीं एवं वह विस्तृत रूपसे खड़ा हुआ और
निश्चल था ॥१८॥ चोथे स्वप्नमें लक्ष्मी देखी जो कि पद्माशनरूपसे विद्यमान थी। उसके हाथमें कमल शोभा-
यमान था। प्रसन्न मुखकी वह धारक थी उसका वक्षस्थल मोतियोंके हारसे जगमगाता था एवं अपने मनोज्ञ
रूपसे वह नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाली थी ॥१६॥ पांचवें स्वप्नमें दो मालायें देखीं जो बड़ी मनोहरतासे
गुथीं हुईं थी। उनके बीच भागमें कुन्द और मन्दार जातिके पुष्प गुथे हुए थे एवं पारिजात संतान और नमेरू
जातिके कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे वह बनी हुई थी ॥ २० ॥ छठें स्वप्नमें चन्द्रमा देखा जो कि समस्त कलाओंका
धारक था अन्धकारका नाश करनेवाला था। किरणोंके समूहसे व्याप्त था कलंक रहित था मुखके समान सुन्दर
था सन्तापका नाशकर शीतता प्रदान करनेवाला था और नेत्रोंको अत्यन्त प्यारा था ॥२१॥ सातवें स्वप्नमें चम·
चमाता हुआ सूर्य देखा जो कि अन्धकारकी जड़से दूर करनेवाला था। जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान
ललोई का धारक था। एवं जिस प्रकार ज्ञानरूपी लोचनके धारक उत्तम गुरु यह उत्तम मार्ग है और यह कुमार्ग
है इस प्रकारका उपदेश देनेवाले होते हैं उसी प्रकार वह सूर्य भी अच्छे और बुरे मार्गका बतानेवाला था अर्थात्
सूर्यके उदयकालमें ही यह ज्ञान होता है कि यह मार्ग जाने योग्य है और यह मार्ग नहीं जाने योग्य है।

आप भय रहित हैं। आप एक स्वरूप भी हैं और अनेक स्वरूप भी हैं। अर्थात्
ापको भय नहीं इसलिये आप भय रहित हैं। आप एक स्वरूप भी हैं और अनेक स्वरूप भी हैं। स्याद्वाद विद्या (अने-
ात्म स्वरूपकी अपेक्षा एक रहने पर भी अनेक गुणोंकी अपेक्षा आप अनेक स्वरूप हैं। स्याद्वाद विद्या (अने-
ांतवाद) के आप पारगामी हैं। समस्त जगत आपको पूजता है। मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीनों
ानोंके धारक हैं। जिस समय आप गर्भके अन्दर विराजते थे उस समय भी सुर असुर आपको नमस्कार
रते थे। भव्योंके लिये आप संसाररूपी रोगके नाश करनेके लिये पवित्र औषध स्वरूप हैं। ध्यानी हैं। दानी
ं और दया स्वरूप हैं। प्रभो ! समस्त आकाश तो कागज बनाया जाय। जलसे व्याप्त जितने भर समुद्र हैं
न सबके जलको स्याही बनाया जाय। मेरु पर्वतको कलम बनाया जाय और उच्च विद्याके विधान देवोंके इन्द्र
र एक जगह बैठकर आपके गुणोंको लिखनेवाले बनाये जांय तो भी वे आपके गुणोंके लिखनेमें समर्थ नहीं हो
कते बस इस प्रकार सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने भगवान विमलनाथकी स्तुति की एवं जय जयकार शब्दके साथ उन्हें
रावत हाथीपर सवार कर बड़े समारोहसे कंपिला नगरीको ओर चल दिया ॥ १११ ॥ कंपिला नगरीमें आकर
ाजा कृतवर्माका आंगन देवोंके जय जयकार शब्द और बजते हुए नगाड़ोंके शब्दोंसे व्याप्त हो गया ठीक है
त्रिलोकी भगवानकी प्रचण्ड कीर्तिके विषयमें क्या कहा जा सकता है ॥ ११२ ॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने आंगनके
मध्य भागमें भगवानके माता और पिताको एक मनोज्ञ सिंहासनपर विराजमान किया। सुगंधित जलसे उनका
अभिषेक किया और भगवान विमलनाथको उन्हें सौंप दिया ॥११३॥ इन्द्रने अनेक देवांगनाओंको कुण्डलाकार
खड़ा किया एवं वे विशेष भाव और लयोंके साथ अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं उस समय भगवानके जन्मो-
त्सवके उपलक्षमें ताल ओर स्वरोंके साथ विशेष विशेष गाने होने लगे आनन्दमयी बाजे बजने लगे। जिसमें
अनेक प्रकारको ढारें दीख पड़ता थीं। मिलना बिछुड़ना रूप हाव भाव दीख पड़ते थे। अनेक प्रकारके नाटकोंके
कार्य नजर पड़ते हैं। फिरना आदि दीख नहीं पड़ता रत्न जड़ित बांसुरियोंके रस भरे राग युक्त होते हैं एवं
मनको प्यारे महा रागोंकी जहांपर उत्पत्ति है ऐसे उस आनन्द नाटकको देवोंने किया ॥११६॥ भगवान विमल-
नाथके माता पिताको देवोंने नाना प्रकारके भूषण और वस्त्रोंसे शोभायमान किया। आप पवित्र हैं बड़े बड़े देव
आपको पूजा करनेवाले हैं इसलिये आप धन्य हैं इस प्रकार उनकी बड़े प्रेमसे स्तुति की ॥११७॥ इंद्रने भगवान
[illegible] उम्रके देवोंकी उनके साथ खेलनेके लिये योजना कर दी। अनेक देवोंसे वेष्टित वह अपने स्थानपर लौट
गया एवं अन्य देव भी अपने अपने स्थानोंपर चले गये ॥ ११८ ॥ इस प्रकार देवोंके द्वारा जिनेन्द्र भगवानके

जन्मोत्सव किये जानेके बाद राजा कृतवर्माने भी उनका जन्मोत्सव मनाया। पताका और तोरणोंकी पंक्तियेंसे उसने सारा नगर सजवा दिया ॥११६॥ बहुतसे स्वर्ण और रत्न दानमें दिये और भगवान जिनेन्द्रकी उत्पत्तिसे अपने जन्मको धन्य समझा ठीक ही है पुत्रकी उत्पत्ति विशेष हर्षको करने वाली होती है ॥ १२० ॥ उस समय भगवान जिनेंद्रके जन्मोत्सवके उपलक्षमें दुन्दुभी बाजे बजने लगे। नगाड़ोंके शब्द होने लगे। बंदीगण विरद बखानने लगे। शंखोंके मनोहर शब्द होने लगे। झालरी और पटह जातिके बाजोंके मनोहर शब्द सुने जाने लगे एवं नाचनेवाली आनन्द नाच नाचने लगीं विशेष क्या उस समयकी विभूतिका वर्णन करना शक्तिके बाहिर है ॥ १२२ ॥ जिस प्रकार द्वितीयाका चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता चला जाता है। उसी प्रकार बालक रूप भगवान विमलनाथ दिनों दिन सुख पूर्वक बढ़ने लगे एवं महा मनोहर भांति भांतिके रूप धारण कर देवगण उन्हें हंसाने खिलाने लगे ॥ १२३ ॥ भगवान बासुपूज्यका तीस सागर प्रमाण तीर्थकाल जब बीत चुका था एवं एक पल्योपम काल पर्यन्त धर्मका ध्वंस हो चुका था। उस समय भगवान विमलनाथका जन्म हुआ था। इन भगवान विमलनाथकी आयु साठ लाख वर्ष प्रमाण थी। साठि धनुष प्रमाण शरीरकी ऊंचाई थी एवं उस शरीरकी प्रभा सोने की प्रभा जैसी थी ॥ १२५ ॥ भगवान-विमलनाथके कुमार कालके १५००००० पन्द्रह लाख वर्ष जब बीत गये उस समय उनका राज्याभिषेक हुआ एवं अपने अद्वितीय प्रतापसे उन्होंने समस्त जगतको वश कर डाला ॥ १२६ ॥ भगवान विमलनाथकी पटरानीका नाम पद्मा था एवं वह साथ उत्पन्न होनेवाली सरस्वती देवी सरीखी जान पड़ती थी। भगवान विमलनाथको तीव्र पुण्य उदयके प्रतापसे एवं धीरवीरता आदि सभी बातें प्राप्त थीं ।१२७। जिस प्रकार समुद्रकी तरंगें प्रति क्षण बढ़ती चलीं जातीं हैं उसी प्रकार भगवान जिनेंद्रके अन्दर सत्य आदि गुण निरंतर बढ़ते चले जाते थे। संसारकी समस्त बासनाओंसे सर्वथा वहिर्भूत बड़े बड़े योगी भी उनकी कीर्तिकी सराहना और प्रशंसा करते थे एवं समस्त दिशाओंमें वह व्याप्त थी ॥१२८॥ विशेष क्या जिस भगवान विमलनाथको बड़े बड़े देव राजा विद्याधर चक्रवर्ती और अर्ध चक्री भी मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं उनके विषयमें जो भी वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥१३०॥ अनेक बड़े बड़े राजा जिनके चरण कमलोंको सानन्द पूजा करते हैं और जो उत्तम ज्ञानके धारक हैं ऐसे भगवान बिमलनाथका राज्य काल तीस लाख वर्ष प्रमाण था ॥ १३१ ॥ वे भगवान विमलनाथ स्त्रियोंके हाव भाव और चुम्बन आदिसे सार्थक छहो ऋतुओंमें होनेवाले नाना प्रकारके भोगोंका आनन्द भोगते थे। भोग रूपी क्षीर समुद्रमें मग्न वे भगवान विमलनाथ अपनी आयुके

गये हुये विशाल भी कालको नहीं जानते थे ठीक ही है जब मनुष्य विशेष सुखमें मग्न हो जाते हैं उस समय उन्हें विशाल भी युगांतकाल लव—छोटेसे कालके टुकड़ेके समान जान पड़ता है ॥ १३३ ॥ जिस प्रकार सदा लक्ष्मीसे आलिङ्गित परमतमें कृष्ण वर्ग लोकका सुख भोगते रहते हैं उसी प्रकार जो अनेक हाथी और घोड़ोंसे शोभायमान हैं राजाओंके अभिष्ट हैं। पुण्यके प्राप्त उत्तमोत्तम स्त्रियोंके भोगोंको प्रदान करनेवाला है एवं समस्त सुखका समुद्र है। ऐसे उस उत्तम राज्यको भगवान विमलनाथने सानन्द भोगा संसारमें, धर्म एक उत्तम पदार्थ है क्योंकि उसीकी कृपासे यश विशेष लक्ष्मी पुत्र सुन्दर स्त्रियां चक्रवर्तीपना अर्ध चक्रीपना बलभद्र पद्वी भूमि का सुख और स्वर्गोंका सुख सुलभ रूपसे प्राप्त हो जाता है। धर्मकी कृपासे कोई भी बात दुर्लभ नहीं ॥ १३५ ॥

इति श्रीविमलनाथ पुराणमें भगवानकी उत्पत्ति इन्द्र द्वारा उनका जन्म कल्याण और आनन्द नाटकको वर्णन करनेवाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥३॥

चौथा सर्ग।

जो भगवान आदिनाथ युगको आदिमें होनेवाली हैं। मोक्ष कल्याणको प्रदान करनेवाले हैं। स्वयं कल्याण स्वरूप हैं। अत्यंत सौम्य होनेसे करोड़ों चन्द्रमाकी कांतिको धारण करनेवाले हैं और समस्त जगतके स्वामी हैं उन भगवान आदिनाथको मैं अपने कल्याणके निमित्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ एक दिनकी बात है कि शरद ऋतुके अन्दर वे नरनाथ भगवान विमलनाथ अपनी सेनासे वेष्टित हो एक विशाल बनमें प्रवेश कर गये और वहां अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें करने लगे। सामने एक तालाबमें उन्हें हिमानी—बरफका समूह दीखा जो कि देखते ही अत्यंत कौतूहलका करनेवाला था सफेद था चंद्रमा और कुन्दपुष्पको प्रभाका धारक था और चित्तको अत्यंत आनन्द प्रदान करनेवाला था ॥ ३ ॥ वे उसे बड़ी आनन्दमयी दृष्टिसे देख रहे थे कि वह देखते देखते पिघल गया बस उधर तो वह पिघला और इधर भगवान विमलनाथके चित्तमें एकदम संसार शरीर भोगोंसे बैराग्य हो गया वे अपने मनमें इस प्रकार वैराग्य भावना भाने लगे कि—जिस प्रकार यह बरफका समूह देखते देखते पिघलकर नष्ट हो गया है उसी प्रकार संसारकी जितनी भी चीजें हैं अपना अपना काल पाकर सभी नष्ट होनेवाली हैं यह जो मेरे साथ बिशाल सेना है इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं। अनेक शुभ-लक्षणोंका धारक, यह शरीर भी मेरा हितकारी नहीं कुटुम्ब पुत्र स्त्री पदार्थ भी जो कि अत्यंत प्यारे माने जाते हैं

उनसे भी मेरा कोई प्रयोजन नहीं सर सकता क्योंकि काल पाकर ये सब नष्ट होनेवाले हैं सदा काल मेरे साथ रहनेवाला कोई नहीं ॥ ५ ॥ ये यौवन धन और शरीर बिजलीकी चमकके समान चंचल हैं एवं जिस प्रकार यह कठिन भी बरफका समूह देखते देखते पिघलकर नष्ट हो गया है उसी प्रकार ये भी क्षणभरमें विनश जानेवाले हैं, यह बिलकुल निश्चित बात है ॥ ६ ॥ पिता संसारके अन्दर जो पाप करता है पुत्र उसका फल नहीं भोगता तथा पुत्र जो पाप उपार्जन करता है माता और पिता भी उसके फलका भोग नहीं करते किन्तु दुःखके सागर रूप इस संसारमें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल आप ही भोगना पड़ता है। शुभ अशुभ कर्मसे जायमान दुःख और सुखका बटानेवाला कोई भी नहीं है ॥ ८ ॥ पशुकी आयु जिस प्रकार निरर्थक बीतती है उस प्रकार मेरी आयुके चार भागोंमें तीन भाग तो निरर्थक चले गये रंचमात्र भी मैं धर्मका आराधन नहीं कर सका क्योंकि धर्मके बिना जीना बिफल है ॥ ९ ॥ संसारमें जिन महानुभावोंने धर्म अर्थ काम और मोक्षका साधन नहीं किया और नाम एवं प्रसिद्धिकी अभिलाषा नहीं रोकी वे पुरुष अधम है उन्होंने अपने जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं समझा ॥ १० ॥ जिस मनुष्यका यह विचार है कि वृद्धावस्था आनेपर हम विषयोंको जीत लेंगे और उत्तम तपको तप लेंगे वह मनुष्य भले ही चाहे समर्थ हो तथापि जिस प्रकार तुन्दित—बड़े पेटवाले मेरु पर्वत पर नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार वह पुरुष भी वृद्धावस्थामें विषयोंपर विजय और उत्तम तपका आचरण नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ काम क्रोध और लोभ ये तीनों नरकके द्वार माने जाते हैं इन्हींको अपनानेसे नरकमें जाना पड़ता है इसलिये मुनिगण इन तीनोंका सर्वथा त्यागकर चिन्मय मोक्षरूपी परम सुखका रसास्वादन करते हैं ॥ १२ ॥ जो महानुभाव स्त्री और लक्ष्मीकी ममतामें फंसकर गृहस्थ अवस्थामें भी धर्मकी अभिलाषा रखते हैं वे महानुभाव बन्ध्या स्त्रीके पुत्रके शिरपर आकाशके फूलोंसे बने मुकुटको देखना चाहते हैं इसलिये वे दुराचारी हैं—सम्यक् चारित्रके पालन करनेवाले नहीं हो सकते सार यह है कि आकाशके पुष्पोंसे गुथे हुए मुकुटसे युक्त बांझके पुत्रका होना जिस प्रकार असंभव है उसी प्रकारको धन आदिके मोहमें मूढ़ होकर धर्मका पालन करना भी असंभव है। स्त्री आदिके मोहमें ग्रस्त पुरुष कभी वास्तविक धर्म पालन नहीं कर सकता ॥१३॥ यदि क्षणमात्र भी परिग्रहके अन्दर राग बना रहे तो जिस प्रकार गधेके सीगोंका होना संसारमें असम्भव है उसी प्रकार मोक्षकी प्राप्ति असम्भव है—रागकी विद्यमानतामें कभी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १४ ॥ इस प्रकार विचार करते करते भगवान विमलनाथके संसार, शरीर आदिसे उदासीनता रूप विशिष्ट ज्ञान हो गया एवं उसीसमय

सारस्वत आदि लोकांतिक देव भगवानके प्रतिबोधनेके लिये यहां आकर उपस्थित हो गये ॥ १५ ॥ ये देव चार लाख सात हजार आठसौ बीस ४०७८२० थे और ये सब एक भवावतारी बाल ब्रह्मचारी ही हैं ॥ १६ ॥ वे भगवान विमलनाथके सामने खड़े होकर इस प्रकार कहने लगे—भगवन् ! जो मार्ग दोषोंसे रहित है। अनेक गुणोंका भंडार है। वैराग्य रससे परिपूर्ण है। छल छिद्र कपटसे रहित है और सर्वोत्तम कल्याणके अभिलाषी सज्जन जिसे अपनाते हैं उसी मार्गको इस समय आपने स्वीकार किया है इसलिये आपको वह अवश्य प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिये। यदि आप उसे धारण कर छोड़ देंगे तो आप निश्चय समझिये सारा संसार आप की हंसी करेगा ॥ १८ ॥ जो महानुभाव किसी भी कार्यका आरम्भ कर उसे पूरा करते हैं वे ही मनुष्य संसारमें शूरबीर समझे जाते हैं तथा वे ही विवेकी, समर्थ, दाता, गुणवान और विद्वान माने जाते हैं एवं वे ही संसारके भूषण गिने जाते हैं ॥ १९ ॥

इस जीवने संसारमें रहकर स्त्री राज्य और धनसे जायमान सुख अनेक बार भोगा है तथापि भोग आदिसे इसकी तृप्ति नहीं होती ॥२०॥ भगवन् ! आपके इस पवित्र वंशमें अतुल सम्पत्तिके स्वामी बड़े बड़े चक्रवर्त्ती और प्रतापी राजा हो गये हैं और क्रम क्रमसे काल उन्हें अपना कवल बनाता चला गया है इसलिये संसारमें अविनाशी पदार्थ कोई जान नहीं पड़ता ॥२१॥ इन विषय भोगोंमें लीन रहने पर इन्द्रियां नष्ट होती हैं। पाप-का आस्रव होता है। पापके आस्रवसे बन्ध होता है एवं उस बन्धकी कृपासे नियमसे इस जीवको नरकमें जाना पड़ता है ॥ २२ ॥ प्रभो ! जिस प्रकार चन्दन वृक्षके सम्बन्धसे आक धतूरे आदिके वृक्ष भी चन्दन स्वरूप हो जाते हैं उसी प्रकार जब आप सरीखे महानुभावके सम्बन्धसे अन्य मनुष्योंको मोक्ष प्राप्त हो जाती हैं तब स्वयं आप तो उसे प्राप्त करेंगे ही मोक्ष लक्ष्मीको हस्तगत करनेका पूरा अधिकार आपको है इसलिये अब आप शीघ्र दिगम्बर दीक्षा धारण कर संसारका उद्धार कीजिये ॥२३॥ बस लौकांतिक देवोंके इस प्रकार सार गर्भित वचन सुन भगवान विमलनाथने जीर्ण तृणके समान समस्त राज्यका परित्याग कर दिया ॥ २४ ॥ दीक्षा कल्याणके उपलक्षमें देवोंने उनका अभिषेक किया। समस्त देव पालकी तैयार कर भगवानके सामने खड़े हो गये। अनेक देवोंसे व्याप्त वे भगवान शीघ्र ही पालकीमें सवार हो गये। सात पैड़ तक राजा लोग बड़े आदरसे उनकी पालकी ले चले। उसके बाद इन्द्रोंने उनके पालकी लेली। छियानबे पैड़ प्रमाण इन्द्रगण उसे जमीनपर ले चले, पीछे आकाश मार्गसे ले जाकर सहेतुक नामके विशाल उद्यानमें इन्द्रोंने उस पालकीको ले जाकर रख दिया।

उस उद्यानकी मणिमयी शिलापर वे भगवान जिनेन्द्र विराजमान हो गये। वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका उन्होंने परित्याग कर दिया। हजार राजाओंके साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। पर्यंक आसन मांड़ लिया। ध्यान मुद्रासे नेत्रोंको निश्चल कर लिया तथा समस्त जगतमें जिनकी कीर्ति व्याप्त है ऐसे उन भगवान विमलनाथने माघ सुदी चौथके दिन जब कि जन्म नक्षत्र विद्यमान था 'सिद्धोंको नमस्कार हो' ऐसा कहकर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥२८॥ अनेक देवोंसे व्याप्त इन्द्रोंने बड़े ठाट बाटसे भगवान विमलनाथ दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया। भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति की। नमस्कार किया एवं सबके सब बड़े आनन्दसे अपने अपने स्थान चले गये ॥२९॥ दीक्षा ग्रहण करते समय भगवानने षष्ठोपवास—बेला धारण किया और वे अपनी आत्माके स्वरूपके चिन्तवनमें लीन हो गये जिससे उनके उसी क्षणमें मनःपर्यय नामका चौथा ज्ञान प्रगट हो गया ॥ ३० ॥ इसी पृथ्वीपर एक नन्दन नामका महामनोज्ञपुर विद्यमान है उस समय उसका पालन करनेवाला राजा विजय था जो कि अत्यन्त बुद्धिमान था और विपुल सम्पत्तिका स्वामी था ॥३१॥ बेला उपवासके समाप्त हो जानेपर दूसरे दिन वे भगवान विमलनाथ राजा विजयके घर पारणाके निमित्त आये। भगवान विमलनाथका शरीर सुवर्णमयी था और देहका अद्वितीय प्रभासे व्याप्त था इसलिये वे चलते फिरते अनुपम कल्पवृक्ष सरीखे जान पड़ते थे ॥३२॥ भगवान जिनेन्द्रको आहारके लिये अपने घर आता देख राजा विजयको परमानन्द हुआ। भगवानको देखते ही वह शीघ्र खड़ा हो गया। तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया एवं हाथ जोड़कर भावोंकी पवित्रतासे अपने कर्मोंके नाश करनेके लिए वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—भगवन्! आपके शुभ आगमन से आज मैं पवित्र हो गया क्योंकि आप तीन लोकके नाथ हैं इस प्रकारके महान् पुरुषका मुझ सरीखे क्षुद्र पुरुषके घरमें आना बड़ी कठिनताका कार्य है ॥ ३४ ॥ जन्म मरण और जरा रूपी तीनों प्रकारकी अग्नियोंके संतापसे संतप्त मेरे लिये हे भगवन्! आपका आना शीतल चन्दन अमृत वा रसायन सरीखा हुआ है क्योंकि चन्दन आदिके संसर्गसे जिस प्रकार ताप मिट जाता है उसी प्रकार आपके समागमसे मेरा भी जन्म आदिका ताप मिट जायगा ॥३५॥ प्रभो! आपके आनेसे आज मैं यह समझता हूँ कि मेरे घरमें कामधेनु आ गई वा कल्प वृक्ष आ गया किम्वा आज मुझे परम पदकी प्राप्ति हो गई अथवा वर्षाका समय न रहने पर भी मेरे घरमें आकाशसे वर्षा हो निकली ॥३६॥ जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र लह लहा उठता है उसी प्रकार हे देव! आपको देखकर मेरा हृदयरूपी विशाल समुद्र मारे आनन्दके उमड़ रहा है तथा चन्द्रमाको देखकर जिस प्रकार

आप भी महाभव्य रूपी चकोर पक्षियोंको आनंद
चकोर पक्षीको परम आनन्द होता है उसी प्रकार भगवन् ! स्तुतिकर राजा विजयने उनके चरणोंका प्रक्षाल
प्रदान करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार भगवान विमलनाथकी स्तुतिकर राजा विजयने उनके चरणोंका प्रक्षाल
किया । नवधा भक्तिसे जायमान पुण्यका उपार्जन किया एवं दाताके सात गुणोंसे शोभायमान क्षीरका आहार
उन्हें दिया ॥३८॥ राजा विजयके घरमें भगवानके आहारसे जायमान पुण्यसे दुन्दुभिका बजना रत्नोंका पड़ना
सुगंधित पवनका बहना सुगंधित जलका बरसना और पुष्पोंका बरसना ये पांच प्रकारके आश्चर्य हुये ॥ ३९ ॥
पात्रदानके विपयमें ग्रन्थकार अपनी सम्मति देते हैं कि—पात्रदानसे बढ़कर पुण्यका कार्य संसारमें न तो है और
न होगा क्योंकि पात्रदानकी कृपासे देव सरीखे भी खिचे चले आते हैं फिर तीनों लोकमें दुर्लभ चीज रही क्या
जाती है ? ॥४०॥ जिस प्रकार वटवृक्षके बहुत छोटे बीजसे विशाल वृक्ष उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार सुपात्र
के लिये सरसोंके बराबर थोड़ा दिया हुआ भी दान मेरुके समान फलता है ॥४१॥ उत्तम पात्रके मिलने पर जो
उसे भक्ति पूर्वक आहार दिया जाता है वह सफल होता है तथा दान देनेवाला अन्य मामूली स्थानोंको न प्राप्त
होकर मोक्षपदको प्राप्त करता है और परमतेजस्वी माना जाता है ॥४२॥ यदि दान देना ही बन्द कर दिया जाय
तो गृहस्थ वा मुनि धर्मका ही नाश हो जाय तथा धर्मके नष्ट हो जानेपर मोक्षपद भी नहीं प्राप्त हो सकता
क्योंकि मोक्षपदकी प्राप्तिमें धर्म ही कारण है इसलिये दानका कभी भी निषेध नहीं किया जा सकता ॥४३॥ जो
पात्र लूले, लंगड़े अपाज हैं कांति रहित हैं उन्हें करुणा बुद्धिसे दान देना चाहिये और उत्तम आदि पात्र मिल
जांय तो उन्हें उत्तम बुद्धिसे भाव पूर्वक विशिष्ट दान देना चाहिये ॥ ४४ ॥ यह सर्वथा सुनिश्चित बात है कि
पात्रके लिये भक्ति पूर्वक दिया हुआ एक रोटीका टुकड़ा भी लाख टुकड़ारूप फलता है तथा वह दिया हुआ
टुकड़ा बलवान भी पापको नष्ट करता है और अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम भोगोंका प्रदान करनेवाला माना जाता
है ॥ ४५ ॥ जिनोंमें श्रेष्ठ वे भगवान विमलनाथ राजा विजयके घरमें आहार लेकर वनको लौट गये । उनके
शरीरकी कांति सुवर्णमयी थी और अनेक देव उनकी सेवा करते थे इसलिये वे अनेक देवोंसे वेष्टित सुवर्णमय
मेरुपर्वत सरीखे जान पड़ते थे ॥४६॥ भगवान विमलनाथने अपने निर्मल चित्तसे सामायिक रूप संयमको धारण
कर वनके मध्यमें तीन वर्ष तक घोर तप तपा बाद उन्होंने उसी सहेतुक नामक अपने दीक्षावनमें वेलाकी प्रतिज्ञा
कर तीव्र तपसे ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंको नष्ट किया जिससे माघ सुदी छठके दिन जब कि सांयकालका
समय था और दीक्षा नक्षत्र वा जन्म नक्षत्र विद्यमान था जंबू वृक्षके नोचे शुभके उदयसे उनके केवल ज्ञा

प्रगट हो गया ॥४९॥ भगवान विमलनाथको केवल ज्ञान होते ही उनके ज्ञान कल्याणका उत्सव मनानेके लिये शीघ्र ही इन्द्र आदि देवगण उस सहेतुक वनमें आ गये। एवं जिसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती ऐसा अत्यन्त देदीप्यमान समवसरण रच दिया गया ॥ ५० ॥ जिनके चरण कमलोंकी बड़े बड़े इन्द्र आदि देव सेवा करते हैं ऐसे वे भगवान विमलनाथ अनेक देशोंमें विहार करने लगे एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको खिलाता है उसी प्रकार सूर्य स्वरूप वे भगवान भव्यरूपी कमलोंको बोधने लगे—वास्तविक उपदेश देने लगे ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार पहाड़की शिखरपर विद्यमान सूर्य शोभित होता है उसी प्रकार यक्षोंके मस्तकोंपर विराजमान और "हे भगवान विमलनाथ आपकी जय हो" इत्यादि रूपसे जय जय घोषणा करता हुआ धर्मचक्र उनके आगे आगे चलने लगा ॥५२॥ जिस प्रकार सप्तर्षि आदि तारा गणोंके मध्यमें आकाशके अन्दर रहनेवाला चन्द्रमा चित्रा नक्षत्रके साथ शोभा धारण करता है उसी प्रकार मुनि आदि गणोंके मध्यभागमें विराजमान आकाशमें अधर रहनेवाले वे भगवान विमलनाथ अत्यन्त शोभित होते थे ॥ ५३ ॥

इसी जम्बूद्वीपके अन्दर अनेक भव्योंसे व्याप्त और छह खण्डोंका धारक एक भरतक्षेत्र नामका प्रसिद्ध क्षेत्र है। उस भरत क्षेत्रके अन्दर एक सौराष्ट्र (सोरठ) नामका देश विद्यमान है ॥ ५४ ॥ सौराष्ट्र देशके अन्दर द्वारिका नामकी नगरी है जो कि नाना प्रकारकी शोभाओंसे शोभायमान है भांति भांतिके सदा उसमें अनेक उत्सव हुआ करते हैं एवं सुवर्ण और रत्नमयी अनेक उत्तमोत्तम प्रतिमाओंसे मण्डित जिन मन्दिरोंसे व्याप्त है ॥ ५५ ॥ वह द्वारिकापुरी उस समय विशाल नितम्ब लम्बी चोटी मुख और स्थूल स्तनोंसे शोभायमान स्त्री सरीखी जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री अनेक सुन्दर पुरुषोंसे व्याप्त रहती है उसी प्रकार वह नगरी भी महामनोहर पुरुषोंसे भरी हुई थी तथा सुन्दर भी स्त्री जिस प्रकार विषम-कुटिलाईको लिये होती है उसी प्रकार वह पुरी भी अनेक विशाल विशाल किलोंसे विषम थी—शत्रुओंके अगम्य थी ॥५६॥ वह द्वारिका-पुरी सत्य अहिंसा धर्म दया दान सरोबर बावड़ियें और घरोंसे व्याप्त थी इसलिये वह स्वर्गपुरी सरीखी जान पड़ती थी और नौ योजन प्रमाण लम्बी थी। तेरह योजन प्रमाण चौड़ी एवं दो हजार छोटे छोटे दरवाजोंसे शोभायमान थी ॥५८॥ उस पुरीका रक्षक स्वयंभू नामका नारायण था जिसका बड़ा भाई धर्म नामका बलभद्र था। स्वयं वो तीन खण्डका स्वामी—अर्धचक्री था। भूमिगोचरी विद्याधर राजाओंसे सेवित था एवं इन्द्र जिस प्रकार स्वर्गपुरीकी रक्षा करता है उस प्रकार वह द्वारवतीपुरीकी रक्षा करता था ॥५९॥ तथा वह नारायण स्वयंभू

अन्धकारमें अच्छे बुरे मार्गका ज्ञान नहीं होता। इसलिये अज्ञानतासे खड्डेमें भी गिरजाना पड़ता है ॥ २३ ॥ आठवें स्वप्नमें माताने मीनोंका युगल देखा जो कि जलमें किलोल करनेवाला था सुन्दर था और अपनी चाल ढालसे मनको हरण करता था नवमे स्वप्नमें सुवर्णमयी दो घड़े देखे जिनके मुख कमलोंसे ढके हुए थे और वे जलसे भरे हुए थे ॥ २४ ॥ दशवें स्वप्नमें एक महामनोहर तालाब देखा जो कि जलसे लबालब भरा था एवं फूले हुये कमलोंसे व्यास था। ग्यारहवें स्वप्नमें एक विस्तीर्ण समुद्र देखा जो कि चंचल तरंगोंकी मालाओंसे गर्जता था। बारहवें स्वप्नमें एक महा मनोज्ञ सिंहासन देखा जो कि रत्न और सुवर्णोंसे रचा हुआ था और देवमयी था। तेरहवें स्वप्नमें विमान देखा जो कि छोटी छोटी घंटरियोंसे शब्दायमान था एवं शब्द करने और विस्तीर्णतामें समुद्रकी उपमा धारण करता था ॥२६॥ चौदहवें स्वप्नमें नाग कुमारोंका भवन देखा जो कि अत्यंत देदीप्यमान था एवं नाग कुमार जातिके देवोंसे व्यास था। पन्द्रहवें स्वप्नमें रत्नोंकी राशि देखी जो कि अत्यंत देदीप्यमान थी। एवं सोलहवें स्वप्नमें जलती हुई निर्धूमअग्नि देखी ॥ २७ ॥ रात्रिके शुभ पश्चिम भागमें जिस समय माता जय श्यामा सोलह स्वप्न देख चुकी उस समय सबसे अन्तमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा जो कि सफेद रंगका था और पर्वतके समान उन्नत था ॥ २८ ॥ समीचीन ध्यानमें लीन एवं सुन्दर लक्षणोंकी धारण करनेवाली वह माता जग गई। शीघ्र ही उसने शैय्या छोड़ दी एवं स्नानकर सामायिक करने बैठ गई। महाराज और महाराणीके जगानेके लिये प्रातःकालमें महा मनोहर बाजोंके शब्द होते हैं एवं बंदीगण विरुद बखानते हैं। महाराणीके जगते समय भी उत्तमोत्तम बाजोंके शब्द होने लगे एवं बंदीगण विरुद बखानने लगे इसलिये वह माता अत्यंत प्रसन्न थी। सामायिकके अन्तमें वह माता उठी और अपने स्वप्नोंका फल पूछने के लिये प्रसन्नचित्त हो अपने स्वामीके पास चल दी ॥ ३० ॥ जिस समय माता जयश्यामा राजा कृतवर्माके पास चली उस समय उसका सारा शरीर अनेक प्रकारके शृंगारोंसे देदीप्यमान था उसके कठिन और पीन दोनों स्तन विचित्र शोभा बढ़ा रहे थे। उसके शरीरसे तपे हुये सुवर्णकी कांति फूट रही थी एवं उसका अंग नम्रीभूत था बस सभामें पहुंचते ही वह अपने स्वामीके चरण कमलोंमें जाकर गिर गई। अपनी महाराणीको इस प्रकार पूर्ण विनययुक्त देखकर राजा कृतवर्माको बड़ा आनन्द हुआ एवं हर्षसे गद्गद् हो वह इस प्रकार अपना स्नेह व्यक्त करने लगा :—हे महादेवि ! आप जो यहांपर पधारी हैं उससे मैं अत्यन्त आभारी हूँ बस ऐसा कहकर आधा सिंहासन छोड़ दिया एवं अपने हाथसे माता जयश्यामाका हाथ पकड़कर उसे अपनी बाईं

और बड़े आदरसे बैठा लिया ॥ ३३ ॥ माता जयश्यामा भी अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे इस प्रकार सन्मान पाकर बड़ी खुश हुई और आनन्दका अनुभव करने लगी। बात भी ठीक है अपने स्वामी द्वारा किया गया सन्मान ही स्त्रियोंके लिये विशेष आनन्दका कारण होता है ॥ ३४ ॥ कुछ समय तक आनन्दानुभवनके बाद महारानी जयश्यामाने उत्कृष्ट स्नेह व्यक्तकर इस प्रकार अपने स्वामीसे कहा :—प्राणनाथ ! रात्रिके पश्चिम भाग में मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं एवं पहिले स्वप्न हाथीसे लेकर अन्तिम स्वप्न अग्निपर्यंत समस्त स्वप्न कह भी सुनाये एवं यह प्रार्थना की कि इन स्वप्नोंका फल क्या होना चाहिये ? हे कृपाके सागर स्वामी आप कृपाकर कहें ॥ ३६ ॥ रानी जयश्यामाके सोलह स्वप्नोंको सुनकर महाराज कृतवर्मा बड़े प्रसन्न हुए और वे यह कहने लगे—हे कमलनयनी और नितम्बोंके भारसे मंद चालसे चलनेवाली प्रिये ! मैं अनुक्रमसे स्वप्नोंका फल कहता हूँ तुम आनन्पूर्वक सुनो—तुमने जो स्वप्नमें हाथी देखा है उसका फल यह है कि समस्त कुटुम्बको आनन्द प्रदान करनेवाला तुम्हारे पुत्र होगा। बैल जो देखा है उसका फल यह है कि वह समस्त भारको धारण करने वाला होगा। स्वप्नमें सिंहके देखनेका यह फल है कि वह सिंहके समान पराक्रमी और तीनों लोकोंका विजय करनेवाला होगा। लक्ष्मीके देखनेका यह फल है कि वह तीनों लोककी लक्ष्मीका स्वामी होगा। पुष्पमालायें जो दो देखी हैं उनका फल यह है कि वह पुत्र शुक्ल लेश्याका धारक अत्यंत कोमल चित्तवाला होगा। चन्द्रमाके देखनेका फल यह है कि वह चन्द्रमाके समान लोगोंको आनन्द प्रदान करनेवाली शांतिका धारक होगा और परमतत्त्वका जानकार होगा। सूर्यके देखनेका फल यह है कि वह पुत्र अपने प्रतापसे समस्त लोकको वश करेगा। मछलियोंके देखनेसे वह उत्तम राज्यका भोगनेवाला होगा और देवगण उसकी पूजा करेंगे। दो घड़ोंको जो स्वप्नमें देखा है उसका फल यह है कि उस पुत्रका अभिषेक स्वयं इन्द्र मेरु पर्वतपर करेगा। तालाबके देखनेका यह फल है कि वह समस्त शुभलक्षणोंसे शोभायमान होगा। समुद्रके देखनेसे वह पुत्र दिव्य ध्वनिका स्वामी होगा। उसकी आज्ञा गंभीर होगी योगी होगा और देवगण उसके गुणोंका पता न पा सकेंगे एवं उसका चिदा-नंदस्वरूप वचन और मनके अगोचर होगा अर्थात् न वचनसे कहा जायगा और न मनसे विचारा जा सकेगा। स्वप्नमें जो सिंहासन देखा है उसका फल यह है भूलोकमें सब लोग उसकी पूजा करेंगे। विमान देखनेका यह फल है कि वह स्वर्गसे चयकर तुम्हारे गर्भमें आवेगा। नागकुमारोंका जो भवन देखा है उसका फल यह है कि समस्त नाग कुमारगण उसकी पूजा करेंगे। रत्नोंका पुंज देखनेसे वह करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक

प्रभाका धारक होगा एवं स्वप्नमें जो अग्नि देखनेमें आई है उसका फल यह है कि वह तुम्हारा पुत्र समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला होगा। चिदानंद चैतन्यस्वरूप होगा मोक्षलक्ष्मीका स्वामी होगा एवं अत्यंत बुद्धिमान होगा अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे इस प्रकार स्वप्नोंका फल सुनकर माता जयश्यामाका हृदय आनंदसे उछलने लगा। एवं उस समय पुत्रकी उत्पत्तिके समाचार सुनते ही उसे यह जान पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त हो गया है। वह बड़े आदरसे अपने मन्दिरमें आ गई एवं अत्यंत आनन्दका अनुभव करने लगी ॥४७॥ कदाचित् जेठ कृष्ण दशमीके दिन जब कि उत्तर भाद्रपद नामका शुभ नक्षत्र विद्यमान था वह सहस्रारेंद्र नामका देव अपने निवास स्थान स्वर्गसे क्या चला एवं देवांगनाओं द्वारा भले प्रकार संशोधित माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया। वह सहस्रारेंद्र भगवान विमलनाथका जीव था इसलिये उसके गर्भमें आते ही चारों प्रकारके देवोंके आसन कंपायमान हो गये जिससे उन्हें मालूम हो गया कि भगवान विमलनाथ माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गये हैं इसलिये वे सानन्द उनके गर्भकल्याणकका उत्सव मनानेके लिये चल दिये एवं आनन्द पूर्वक उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान लौट गये ॥५०॥ सौधर्म इन्द्रकी आज्ञासे छप्पन कुमारियाँ तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाली माता जयश्यामाकी यथावसर भक्तिपूर्वक सेवा करने लगीं ॥ ५१ ॥ उनमें कोई कोई कुमारी नाना प्रकारके वस्त्र आदि पदार्थोंसे माताका शृङ्गार करने लगीं। कोई कोई कुमारी स्नान विलेपन आदिसे माताके शरीरको सुगंधित करने लगीं। कोई कोई प्रतिसमय माताके पैर दवाने लगीं। कोई माताको हिंडोलेमें बैठाकर झुलाने लगीं। कोई नाना प्रकारके व्यंजनोंसे व्याप्त एवं रूप और लावण्यका बढ़ानेवाला महा स्वादिष्ट भोजन तैयार कर माताको जिमाती थीं। कोई कोई माता जयश्यामाके सुख पूर्वक संतान हो इस अभिलाषासे उसके आगे नाना प्रकारके रसोंसे व्याप्त मनोहर गानेके साथ आनन्द नाच नाचने लगीं। किसी किसीने माताके सामने मनुष्यके शरीरके समान ऊंचा निर्मल और शुभदर्पण रक्खा और उसे दिखाने लगीं एवं कोई कोई मातासे इस प्रकार प्रश्न करने लगीं—अच्छा माता! बतावो दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें मनुष्योंको ग्रहण करने योग्य पदार्थ क्या है? माता उत्तर देतीं निर्ग्रन्थ गुरुओंका बचन ही भक्ति पूर्वक संसारमें ग्रहण करने योग्य है। प्रश्न—जिनका बचन ग्रहण करने योग्य होता है वे गुरु संसारमें कौन हैं? उत्तर—जो तत्त्वोंका स्वरूप भले प्रकार जाननेवाले हैं और समस्त प्राणियोंको हित सुझाने वाले हैं। प्रश्न—माता सबसे जल्दी क्या काम संसारमें करना चाहिये। उत्तर—संसार बड़ा दुःखदायी है जहांतक बने वहांतक

सबसे पहिले इसका छेदन करना चाहिये। प्रश्न—संसारमें मोक्षका कारण क्या पदार्थ है? उत्तर—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अर्थात् बिना सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती। प्रश्न—माता! संसारमें विद्वानोंके लिये पथ्य-हितकारी, चीज क्या है? उत्तर—स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाला धर्म। प्रश्न—संसारमें पवित्र पुरुष कौन हैं? उत्तर—जिसका मन शुद्ध है। प्रश्न—पण्डित कौन है? उत्तर—जो हित और अहितका विवेक रखता है। प्रश्न—विष किसको कहना चाहिये? उत्तर—निर्ग्रन्थ गुरुओंका सत्कार न करना उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखना ही हलाहल विष है क्योंकि वैसा करनेसे आत्मस्वरूपका तीव्ररूपसे घात होता है। प्रश्न—संसारमें सार पदार्थ क्या है? उत्तर—उत्तम कुलका पाना। प्रश्न—संसारमें मदिरा किसे कहनी चाहिये? उत्तर—स्त्री पुरुष आदि कुटुम्बके साथ मोह रखना ही मदिरा है। प्रश्न—संसारमें बैरी कौन है? उत्तर—अशुभ कर्म। प्रश्न—दुर्जय पदार्थ अर्थात् जिसका जीतना कठिन है ऐसा पदार्थ संसारमें कौन है? उत्तर—इन्द्रियोंके विषय क्योंकि ये प्राणियोंके घात करनेवाले हैं इसके फंदमें पड़कर प्राणि अपना हित नहीं पहिचान सकता॥ ६० ॥ प्रश्न—संसारमें निन्दित चीज क्या है? उत्तर—किसी चीजका मांगना मांगनेके बराबर कोई भी निन्दनीय चीज नहीं। प्रश्न—संसारमें विषकी वेल क्या है? उत्तर—तृष्णा। प्रश्न—संसारमें डर किसका है? उत्तर—मृत्युका। सारा संसार मृत्युसे घबड़ाता है। प्रश्न—संसारमें विलोचन-नेत्र रहित कौन है? उत्तर—जो पुरुष रागी है। प्रश्न—जिसका जल्दी पता नहीं पाया जा सकता ऐसा संसारमें गहन पदार्थ क्या है? उत्तर—स्त्रियोंका चरित्र अत्यन्त गहन है—विद्वानसे विद्वान भी उसका जल्दी पता नहीं पा सकता। प्र०—संसारमें सबसे शूरवीर कौन है? उत्तर—जो पुरुष स्त्रियोंका त्यागी है वही शूरवीर है तथा जो क्रोधका त्यागी है और दानियोंमें प्रधान है वह भी शूरवीर है। प्र०—संसारमें सबसे गौरवकी बात क्या है? उत्तर—आनन्द प्रदान करनेवाली आयाञ्चा अर्थात् किसीसे कुछ न मांगना यही अत्यन्त आनन्दकी बात है। प्र०—संसारमें दरिद्रता क्या कहलाती है। उत्तर—महा लोभपना जो पुरुष अत्यंत लोभी है वही नितांत दरिद्री हैं। प्रश्न—संसारमें जीवन क्या है? उत्तर—यशस्वीपना-मनुष्य अपने आयुके अन्तमें नियमसे मर जाता है परन्तु उसका यश सदा काल ज्योंका त्यों बना रहता है। प्रश्न—संसारमें जागनेवाला कौन कहा जाता है? उत्तर—जो महानुभाव परमध्यानी और संयमी हैं वही संसारमें जागनेवाला है। प्रश्न—संसारमें निद्रा क्या चीज है? उत्तर—मूर्खता-मूर्ख सदा सोता ही रहता है। प्रश्न—कमलके पत्रपर रक्खी हुई जलकी बून्दके समान चंचल

पदार्थ संसारमें क्या है ? उत्तर—यौवन और धन। प्र०—चन्द्रमाकी किरणोंके समान लक्षणोंके धारक और उसके समान छिपे हुए हाथोंसे युक्त संसारमें कौन है ? उत्तर—निन्दा रहित सज्जन अर्थात् सज्जन पुरुष किसी की भी निन्दा नहीं करते और चुप रूपसे दूसरेका उपकार करते हैं हल्ला कर किसीका उपकार नहीं करते। प्र०—माता ! संसारमें साक्षात् नरक क्या माना जाता है ? उत्तर—परतंत्रता जो कि स्वतंत्रता रूप सुखसे सर्वथा रहित है। प्र०—संसारमें सुख क्या चीज है ? उत्तर—समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे रहित रहना ही सुख है। प्रश्न—संसारमें भूषण क्या है ? उत्तर—शुभ शील और सत्यता ही निश्चल और अद्वितीय भूषण है। कड़ा कुण्डल आदि भूषण नहीं माना जा सकता। प्र०—संसारमें मित्र कौन है ? उत्तर—जो हितका शासन करनेवाला है। प्र०—कानोंसे रहितपना क्या है? उत्तर—शास्त्रके सुननेका अभाव अर्थात् जो पुरुष आत्म हितकारी शास्त्र नहीं सुनता वह कानोंके रहते भी बधिर है। प्रश्न—संसारमें मरण क्या है? उत्तर—नाना प्रकारसे चित्तको सन्ताप देनेवाली मूर्खताही संसारमें मरण है। प्रश्न—संसारमें ध्यान करने योग्य पदार्थ क्या है? उत्तर—समस्त जीवोंको आनंद प्रदान करनेवाले एवं चैतन्य स्वरूप भगवान ऋषभदेव। प्रश्न—संसारमें मुख्य चीज क्या है ? उत्तर—दया दान और यथा शक्ति तपस्विता॥६८॥ इत्यादि अनेक महा गूढ़ प्रश्नोत्तर हो चुकते थे तब कोई कोई देवांगना मातासे यह कहतीं कि हे माता ! तुम भगवान जिनेन्द्रकी माता हो और इस समय भगवान जिनेन्द्र आपके गर्भमें विद्यमान हैं इसलिये आप हमारी पहेलीका अर्थ बतलाइये। एकने कहा—हे माता ! शरीरका फल क्या है ? और शरीरकी अज्ञानता बतलानेवाला कौन है ? आप कहैं। उत्तर—केवल ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला मेरा सुन्दर ध्यान। अर्थात् उत्तम ध्यान करना ही शरीर धारण करनेका फल है और उसीसे शरीरकी जड़ता जानी जाती है। (इस श्लोकमें 'कथप कहैं' यह क्रिया गुप्त है और यह प्रश्न और उत्तर गर्भित है। हे माता इस दुस्तर संसारसे रक्षा करनेवाला कौन है ? उत्तर—समस्त बैरियोंका सेनाके सहनेमें जो चक्रवर्तीके समान शोभायमान हैं। बलवान हैं। निन्दित आचार रूपी अन्धकारके नाश करनेके लिये जो सूर्यके समान हैं (यह चौकौंण बन्ध श्लोक है) जो सम चक्रवर्ती और असम-दरिद्रीमें समान भावके रखनेवाले हैं चन्द्रमाके समान मुखवाले हैं। जिनका ज्ञान चैतन्य रूपकी प्रशंसा करनेवाला है एवं न जो अनादरको माननेवाले हैं और न आदरकी पर्वा करनेवाले हैं वे ही इस संसारसे प्राणियोंका उद्धार कर सकते हैं अन्य नहीं। यह एक पाद कम यमकालङ्कार हैं। अर्थात् तीन पदोंमें यमक हैं अन पादमें यमक नहीं ॥७२॥ माता जयश्यामाके गर्भमें भगवान

जिनेन्द्र थे इसलिये उनके प्रभावसे देवियोंने जो भी प्रश्न किये माताने उत्तम ज्ञानके धारक मुनिके समान समस्त प्रश्नोंका खुलासा रूपसे उत्तर दिया था ॥७३॥

गर्भ जैसा जैसा बढ़ता जाता है स्त्रियोंका उदर भी बढ़ता चला जाता है और उदर पर जो त्रिवली रहती है वह भी नष्ट हो जाती है परन्तु माता जयश्यामाका गर्भ यद्यपि दिनों दिन बढ़ता जाता था तथापि उनके उदरकी त्रिवली नष्ट नहीं हुई थी। उदर वैसाका वैसा ही विद्यमान था तथा माता जयश्यामाका गर्भ गुप्त था किसीको जान नहीं पड़ता था इसलिये गर्भके समय जिस प्रकार अन्य स्त्रियोंको अनेक प्रकारकी बाधायें होतीं है उस प्रकार माता जयश्यामाको किसी समय कैसी भी बाधा न थी ॥७५॥ स्वयं भगवान जिनेन्द्रके अवतरणेके कारण माता जयश्यामाका गर्भ अत्यन्त पवित्र था इसलिये उस पवित्र गर्भके प्रसादसे माता जयश्यामाको सोनेमें सुख मिलता था। रुचि पूर्वक वह भोजन और जल ग्रहण करती थीं उसकी मनोहर चाल थी। बुद्धि सदा निर्मल रहा करती थी एवं वह सुखनींद सोती थीं ॥७६॥ क्रमसे जब गर्भके मास पूरे हो गये उस समय माता जयश्यामाने माघ सुदि चौथके दिन जब कि उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र था सुख पूर्वक भगवान जिनेन्द्रको जना। बालक रूप भगवान जिनेन्द्र तेजके पुंज स्वरूप एवं कुलरूपी आकाशमें वे भगवान सूर्य थे। मति ज्ञान श्रुत ज्ञान और अवधिज्ञान रूप तीन ज्ञानके धारक थे। तीनों लोकके स्वामी थे और सुन्दर लक्षणोंसे शोभायमान थे ॥७८॥ जिस समय भगवान जिनेन्द्र उत्पन्न हुए उस समय स्वर्गमें घटानाद होने लगा। ज्योतिषियोंके घरोंमें सिंहनाद होने लगा। व्यन्तरोंके घरोंमें भेरी बजने लगी और भवनवासियोंके घरोंमें शंखनाद होने लगा ॥७९॥ जिस समय घण्टानाद आदि चिह्नोंसे देवोंके दण्डोंको भगवान विमलनाथके जन्मका पता लगा उन्हें बड़ा आनन्द हुआ एवं सबके सब उनके अभिषेकके लिये उत्सुक हो गये ॥ ८० ॥ उस समय कुबेरने अपने स्वामी इन्द्रकी आज्ञासे ऐरावत नामके हाथीका निर्माण किया जो हाथी एक लाख योजनका चौड़ा और सौ मुखोंसे शोभायमान रहता है ॥८१॥ हाथीके प्रत्येक मुखसे आथ आठ दांत रचे गये प्रत्येक दांत पर एक एक सरोवर रचा गया। हर एक सरोवरमें पचीस पचीस कमलिनी (कमलोंकी वेलें) प्रत्येक कमलिनीमें दो सौ पचीस पचीस कमल और प्रत्येक कमलके सौ सौ दल (पत्ते) रचे गये एवं प्रत्येक दलपर एक एक देवांगना सानन्द नृत्य करती चली जातीथीं ऐसी रचना की गई। तथा ऐरावत हाथीके कुक्षिभागमें तेतीस सभाओंकी रचना की गई। जो कि महामनोहर थो और हर एकमें तेतोस करोड़ देव निवास करते थे। इस प्रकार अद्भुत रचनाके

वह धर्मात्मा सौधर्म स्वर्गका इन्द्र बड़े समारोहसे सवार हो लिया ॥ ८४ ॥ वह धर्मात्मा सौधर्म
धारक ऐरावत हाथीपर प्रथम स्वर्ग सौधर्म इन्द्र बड़े समारोहसे सवार हो लिया ॥ ८४ ॥ वह धर्मात्मा सौधर्म
स्वर्गका इन्द्र अपनी प्यारी इन्द्राणी और देवोंके साथ भक्ति भावसे स्वर्गसे कंपिलाकी ओर चल दिया। ठीक
ही हैं जो सज्जन हैं—आत्माका वास्तविक स्वरूप समझते हैं उन्हें अपने उत्तम परिणाम ही प्यारे हैं वे धार्मिक
कार्यको दिखावटी रूपसे नहीं करना चाहते ॥ ८५ ॥ तारा गणकी कांतिके समान सफेद उस ऐरावत हाथीको
कंपिला नगरीके ऊपरके आकाशमें ठहरा दिया और भगवान जिनेन्द्रको राजमहलसे लानेके लिये अपनी प्यारी
इन्द्राणीको आज्ञा दी ॥८६॥ धर्मात्मा उस इन्द्राणीने बड़े आनन्दसे भगवान जिनेन्द्रके गर्भ गृहमें प्रवेश किया।
मायामयी निद्रासे माता जयश्यामाको निद्रित कर दिया। बालक भगवान जिनेन्द्रको उठाकर अपने हाथमें ले
लिया। भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं अपने प्राणनाथ इन्द्रके हाथमें लाकर दिया जिस समय इन्द्राणीने भग-
वान जिनेन्द्रको इन्द्रके हाथमें समर्पण किया उनकी सर्वोच्च और अद्वितीय कांति निहार कर वह विचारने लगा
कि—यह साक्षात् सूर्य ही मेरे हाथपर आकर रख गया है किंवा अनेक तेजोंका यह एक अद्वितीय पुंज है।
बड़े आनन्दसे उसने उसी समय भगवान जिनेन्द्रको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं जिनकी असंख्याते देव
बड़े प्रेमसे सेवा करनेवाले थे ऐसे उन बालक भगवान जिनेन्द्रको गोदीमें विराजमान कर वह बड़े समारोहके
साथ मेरु पर्वतकी ओर चल दिया।

मेरुपर्वत पर सौमनस आदि चार बनोंमेंसे एक पाण्डुक नामका बन है जो कि नाना प्रकारकी चित्र विचत्र
शोभाओंसे व्याप्त है। उसी पाण्डुक बनके अन्दर एक पाण्डुक नामकी शिला है जो कि दूसरी मोक्ष सरीखी
शोभायमान जान पड़ती है। आधे चन्द्रमाके आकारको धारण करनेवाली है। अत्यन्त मनोहर है। सौ योजन
प्रमाण लम्बी पचास योजन प्रमाण चौड़ी और आठ योजन प्रमाण मोटी है और उसके ठीक मध्य भागमें महा
मनोहर तीन सिंहासन विराजमान हैं। सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने पूर्व दिशाकी ओर मुखकर भगवान जिनेन्द्रको
उस मनोहर सिंहासनपर विराजमान कर दिया और क्षीर समुद्रसे जल लानेके लिये देवोंको आज्ञा दी ॥९२॥
अपने स्वामीकी आज्ञानुसार देवोंने कलशे उठाये जो कि आठ योजन प्रमाण गहरे थे। संख्यामें एक हजार
आठ थे। नाना प्रकारके देदीप्यमान रत्नोंसे खचित थे और सुवर्णमयी थे ॥९३॥ हे भगवान जिनेन्द्र! आप
चिरकाल जीओ इत्यादि जय जयकार करनेवाले देव पंक्तिरूप आकाशमें खड़े हो गये। एवं जिनेन्द्रकी भक्तिसे
प्रेरित हो क्षीर समुद्रके जलसे भरे हुये घड़े आने लगे ॥९४॥ भगवान जिनेन्द्रकी भक्तिसे हर्षायमान गुणरूप

सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने शीघ्रही मायामयी हजार भुजाओंकी रचना कर ली और उन भुजाओंसे सुवर्णमयी कुम्भोंको ले लेकर बड़े आदरसे भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक करने लगा ॥ ९५ ॥ जिस समय भगवान जिनेंद्रका अभिषेक होने लगा उस समय तरंगोंसे शोभायमान जल मेरुके चारों ओर पड़ने लगा। जलकी वैसी दशा देख कर देवोंको यह संदेह उत्पन्न होता था कि करोड़ों नदियां मेरु पर्वतसे निकल पड़ीं हैं। नाना प्रकारके देदीप्यमान रत्नोंसे व्याप्त मेरु पर्वतपर फैला हुआ वह हरा नीला आदि पांचों वर्णोंको धारण करता था एवं कहीं कहीं पर रत्नोंकी कांतिसे उसकी धारायें टूटी हुईं नजर पड़ती थीं ॥९७॥

भगवान जिनेंद्रके मस्तक पर कुम्भ ढारते समय जो जलका धधकार शब्द होता था उसे मोर हँस और स्याल नामके पक्षी मेघका शब्द मानकर एवं उस समयको वर्षा ऋतु समझकर अपने अपने मनोहर शब्दोंसे आकाशको व्याप्त करते थे ॥९८॥ एक हजार आठ कलसोंमेंसे हजार कलसोंसे तो स्वयं इन्द्र भगवान जिनेंद्रका अभिषेक करता था तथा शेष देवगण बाकी बचे आठ घड़ोंसे उस अभिषेकको करते और मनमें उनकी भावना भाते थे। जिस समय भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक समाप्त हो गया सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणीने उवटन आदि कर भगवान जिनेंद्रको सजाना प्रारम्भ कर दिया ॥९९॥ भगवानके बज्रमयी शरीरमें पहिलेसे ही दोनों कान छिदे थे तथापि अन्य बालकोंका कर्ण वेध (कानोंका छिदना) संस्कार होता है इसलिये इन्द्रने उपचारसे भगवान जिनेन्द्रका बड़े ठाट बाटसे कर्णवेध उत्सव मनाया ॥१००॥ महामनोहर मुकुट कुण्डल करधनी कड़े और बाजूबंध भगवानको पहिनाये एवं स्वर्गमें होनेवाले नाना प्रकारके मनोज्ञ वस्त्र पहिनाकर भगवान जिनेन्द्रको शोभायमान कर दिया ॥१०१॥ इन्द्रने भगवान जिनेन्द्रका विमलवाहन नाम रक्खा एवं उष्ट्रासन (ऊट जिस प्रकार बैठता है उस आसनसे बैठकर) भक्तिसे गद्गद् हो भगवान जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

भगवन्! आप तीनों लोकके स्वामी हैं। निर्मल ज्ञानके धारक हैं। उत्तमोत्तम गुणोंके समुद्र हैं। धर्मकी साक्षात् मूर्ति हैं। राग द्वेष आदि समस्त बैरियोंके जीतनेवाले हैं मोक्ष रूपी सर्वोच्च कल्याणके दाता हैं परम कांतिके धारक हैं। सदा काल आनन्दित रहनेवाले हैं। सर्वदा रहनेवाली ज्ञान आदि महानिधिके स्वामी हैं। अज्ञानरूपी अन्धकारके नाश करनेके लिये सूर्यके समान हैं। मोक्षरूपी लोकोत्तर सुन्दरीके प्यारे हैं ॥ १०२॥ प्रभो! आप इतने इतने अपरिमित और अगम्य गुणोंके भण्डार हैं कि निरंतर आत्माके स्वरूपके चिंतवन करनेवाले योगी भी आपके स्वरूपका विचार नहीं कर सकते। आप विनाश रहित अविनाशी हैं। किसी भी

शत्रुरूपी वनके लिये दावानल था । छिपे हुए पराक्रमका धारक और क्रोध रहित शांत होनेके कारण
चन्द्रमा सरीखा था । अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वी तलको वश करनेवाला था और प्रजारूपी कमलिनियों
को प्रसन्न करनेवाला सूर्य था—उसके राज्यमें सारी प्रजा प्रसन्न और सुखी थी ॥ ६० ॥ जिस प्रकार भ्रमर
कमलकी सेवा करते हैं उसी प्रकार सोलह हजार मुकुट बद्ध राजा उस नारायण स्वयंभूके चरण कमलोंके सेवक
थे ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार देवांगना देवोंको सुखी बनाती हैं उसी प्रकार सोलह हजार मृग लोचनी रानियां नारा-
यण स्वयम्भूकी सेवा करतीं और उसे सुखी बनाती थीं। उसके नौ करोड़ घोड़े थे जो कि तेज पानीके महा
मनोहर थे। ब्यालीस लाख हाथी थे जिनके कि गंडस्थलोंसे मद चूता था। मदसे उत्कट थे और इतने ऊंचे थे
मानों आकाशको स्पर्श करते थे ॥ ६३ ॥ उस राजा स्वयम्भूके शंख, दण्ड, गदा, धनुष, खड्ग, चक्र और शक्ति
ये सात रत्न थे। अड़तालीस करोड़ संख्या प्रमाण उसके ग्राम थे। डेढ़ करोड़ गायें थीं और अनेक प्रकारकी
विपुल विभूति थी ॥ ६५ ॥ मूसल, गदा, माला और शीर नामक शस्त्रोंके धारक, अत्यन्त सामर्थ्यवान अपने
बड़े भाई बलभद्रके साथ वह स्वयम्भू नामका नारायण अपने राज्यका सुखपूर्वक भोग करता था ॥ ६६ ॥ अनेक
मदोन्मत्त राजाओंको जीतकर वह नारायण स्वयम्भू सानन्द प्रजाका पालन करता था कि उसी समय अनेक
देशोंमें बिहार कर भगवान विमलनाथ वहांपर आये। वे भगवान परम निर्लोभी थे। समस्त दोषोंसे रहित निर्मल
थे। शांत थे। राग और द्वेषसे रहित एवं अविनाशी थे इस लिये यह बात हरेक मनुष्य जान ही नहीं सकता
था कि कहां उनका जाना होता था और कहां आना होता था। जिस तरह चन्द्रमा प्रतिदिन उदयाचलपर उदित
होकर अस्ताचल पर अस्त होता है यह उसका नियोग ही है उसी प्रकार गमन आगमन भी नियोग स्वरूप ही
था क्योंकि वह गमन आगमन यथार्थ रूपसे पदार्थोंका प्रबोध करनेवाला था। जो पुरी नारायण स्वयम्भूकी राज-
धानी थी उसी पुरीके मदन नामक उद्यानमें भगवान विमलनाथके आ जानेपर आनन्दित हो कुबेरने इन्द्रकी
आज्ञासे शीघ्र ही समवसरण रचना प्रारम्भ कर दिया जो कि विचित्र शोभाका धारक था, विशाल था। समव-
सरणके अन्दर चित्र विचित्र प्राकार उनकी भीतियां, विशाल सिंहासन, सीढ़ियां, मानस्तंभ और तालाबोंकी
जो रचना की गई थी उसका वर्णन धुरन्धर कवि भी नहीं कर सकते थे। बस केवल ज्ञानसे विराजमान भगवान्
विमलनाथके ठहरते ही इंद्रकी मायासे शीघ्र ही समवसरण तैयार हो गया और वे भगवान् विमलनाथ जो कि
अपने दिव्य ज्ञानसे तीनों लोकोंके जाननेवाले थे एवं जिनके चरण कमलोंको जय जय शब्दोंके करनेवाले व्यंतर

सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने शीघ्रही मायामयी हजार भुजाओंकी रचना कर ली और उन भुजाओंसे सुवर्णमयी कुम्भों-को ले लेकर बड़े आदरसे भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक करने लगा ॥ ९५ ॥ जिस समय भगवान जिनेंद्रका अभिषेक होने लगा उस समय तरंगोंसे शोभायमान जल मेरुके चारों ओर पड़ने लगा। जलकी वैसी दशा देख कर देवोंको यह संदेह उत्पन्न होता था कि करोड़ों नदियां मेरु पर्वतसे निकल पड़ीं हैं। नाना प्रकारके देदीप्य-मान रत्नोंसे व्याप्त मेरु पर्वतपर फैला हुआ वह हरा नीला आदि पांचों वर्णोंको धारण करता था एवं कहीं कहीं पर रत्नोंकी कांतिसे उसकी धारायें टूटी हुईं नजर पड़ती थीं ॥९७॥

भगवान जिनेंद्रके मस्तक पर कुम्भ ढारते समय जो जलका धधकार शब्द होता था उसे मोर हँस और स्याल नामके पक्षी मेघका शब्द मानकर एवं उस समयको वर्षा ऋतु समझकर अपने अपने मनोहर शब्दोंसे आकाशको व्याप्त करते थे ॥९८॥ एक हजार आठ कलसोंमेंसे हजार कलसोंसे तो स्वयं इन्द्र भगवान जिनेंद्र का अभिषेक करता था तथा शेष देवगण बाकी बचे आठ घड़ोंसे उस अभिषेकको करते और मनमें उनकी भावना भाते थे। जिस समय भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक समाप्त हो गया सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणीने उवटन आदि कर भगवान जिनेंद्रको सजाना प्रारम्भ कर दिया ॥९९॥ भगवानके वज्रमयी शरीरमें पहिलेसे ही दोनों कान छिदे थे तथापि अन्य बालकोंका कर्ण वेध (कानोंका छिदना) संस्कार होता है इसलिये इन्द्रने उपचारसे भगवान जिनेन्द्रका बड़े ठाट बाटसे कर्णवेध उत्सव मनाया ॥१००॥ महामनोहर मुकुट कुण्डल करधनी कड़े और बाजूबंध भगवानको पहिनाये एवं स्वर्गमें होनेवाले नाना प्रकारके मनोज्ञ वस्त्र पहिनाकर भगवान जिनेन्द्रको शोभायमान कर दिया ॥१०१॥ इन्द्रने भगवान जिनेन्द्रका विमलवाहन नाम रक्खा एवं उष्ट्रासन (ऊंट जिस प्रकार बेठता है उस आसनसे बैठकर) भक्तिसे गद्गद् हो भगवान जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

भगवन् ! आप तीनों लोकके स्वामी हैं। निर्मल ज्ञानके धारक हैं। उत्तमोत्तम गुणोंके समुद्र हैं। धर्मकी साक्षात् मूर्ति हैं। राग द्वेष आदि समस्त वैरियोंके जीतनेवाले हैं मोक्ष रूपी सर्वोच्च कल्याणके दाता हैं परम कांतिके धारक हैं। सदा काल आनन्दित रहनेवाले हैं। सर्वदा रहनेवाली ज्ञान आदि महानिधिके स्वामी हैं। अज्ञानरूपी अन्धकारके नाश करनेके लिये सूर्यके समान हैं। मोक्षरूपी लोकोत्तर सुन्दरीके प्यारे हैं ॥ १[illegible] ॥ प्रभो ! आप इतने इतने अपरिमित और अगम्य गुणोंके भण्डार हैं कि निरंतर आत्माके स्वरूपके चि[illegible]न करनेवाले योगी भी आपके स्वरूपका विचार नहीं कर सकते। आप विनाश रहित अविनाशी हैं। किसी[illegible]री

और क्रोध रहित शांत होनेके कारण
शत्रुरूपी वनके लिये दावानल था। छिपे हुए पराक्रमका धारक और क्रोध रहित शांत होनेके कारण
चन्द्रमा सरीखा था। अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वी तलको वश करनेवाला था और प्रजारूपी कमलिनियों
को प्रसन्न करनेवाला सूर्य था—उसके राज्यमें सारी प्रजा प्रसन्न और सुखी थी ॥ ६० ॥ जिस प्रकार भ्रमर
कमलकी सेवा करते हैं उसी प्रकार सोलह हजार मुकुट बद्ध राजा उस नारायण स्वयंभूके चरण कमलोंके सेवक
थे ॥ ६१ ॥ जिस प्रकार देवांगना देवोंको सुखी बनाती हैं उसी प्रकार सोलह हजार मृग लोचनी रानियां नारा-
यण स्वयम्भूकी सेवा करतीं और उसे सुखी बनाती थीं। उसके नौ करोड़ घोड़े थे जो कि तेज पानीके महा
मनोहर थे। ब्यालीस लाख हाथी थे जिनके कि गंडस्थलोंसे मद चूता था। मदसे उत्कट थे और इतने ऊंचे थे
मानों आकाशको स्पर्श करते थे ॥ ६३ ॥ उस राजा स्वयम्भूके शंख, दण्ड, गदा, धनुष, खड्ग, चक्र और शक्ति
ये सात रत्न थे। अड़तालीस करोड़ संख्या प्रमाण उसके ग्राम थे। डेढ़ करोड़ गायें थीं और अनेक प्रकारकी
विपुल विभूति थी ॥ ६५ ॥ मूसल, गदा, माला और शीर नामक शस्त्रोंके धारक, अत्यन्त सामर्थ्यवान अपने
बड़े भाई बलभद्रके साथ वह स्वयम्भू नामका नारायण अपने राज्यका सुखपूर्वक भोग करता था ॥ ६६ ॥ अनेक
मदोन्मत्त राजाओंको जीतकर वह नारायण स्वयम्भू सानन्द प्रजाका पालन करता था कि उसी समय अनेक
देशोंमें बिहार कर भगवान विमलनाथ वहांपर आये। वे भगवान परम निर्लोभी थे। समस्त दोषोंसे रहित निर्मल
थे। शांत थे। राग और द्वेषसे रहित एवं अविनाशी थे इस लिये यह बात हरेक मनुष्य जान ही नहीं सकता
था कि कहां उनका जाना होता था और कहां आना होता था। जिस तरह चन्द्रमा प्रतिदिन उदयाचलपर उदित
होकर अस्ताचल पर अस्त होता है यह उसका नियोग ही है उसी प्रकार गमन आगमन भी नियोग स्वरूप ही
था क्योंकि वह गमन आगमन यथार्थ रूपसे पदार्थोंका प्रबोध करनेवाला था। जो पुरी नारायण स्वयम्भूकी राज-
धानी थी उसी पुरीके मदन नामक उद्यानमें भगवान विमलनाथके आ जानेपर आनन्दित हो कुबेरने इन्द्रकी
आज्ञासे शीघ्र ही समवसरण रचना प्रारम्भ कर दिया जो कि विचित्र शोभाका धारक था, बिशाल था। समव-
सरणके अन्दर चित्र विचित्र प्राकार उनकी भीतियां, बिशाल सिंहासन, सीढ़ियां, मानस्तंभ और तालाबोंकी
जो रचना की गई थी उसका वर्णन धुरन्धर कवि भी नहीं कर सकते थे। बस केवल ज्ञानसे विराजमान भगवान्
बिमलनाथके ठहरते ही इंद्रकी मायासे शीघ्र ही समवसरण तैयार हो गया और वे भगवान् विमलनाथ जो कि
अपने दिव्य ज्ञानसे तीनों लोकोंके जाननेवाले थे एवं जिनके चरण कमलोंको जय जय शब्दोंके करनेवाले व्यंतर

इंद्र देवेन्द्र और स्वर्गोंके देव भक्ति पूर्वक पूजते थे, उस समवशरणके मध्य भागमें विराज गये ॥७३॥ जिस
बनमें भगवान विमलनाथ बिराजे थे वह बन महा मनोहर दीख पड़ता था उसमें रहनेवाले बृक्ष, फल फूलोंसे
व्याप्त थे और नौबत घुरती रहती थी। उस बनके रक्षक मालीने जब बनकी यह विचित्र शोभा देखी और
नौबतका शब्द सुना तो उसे बड़ा आनन्द हुआ। अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे उसने अपनी टोकनी भर
ली। वह द्वारावतीकी ओर चल दिया, एवं राजाकी आज्ञासे राजसभामें प्रवेश कर उसने उस डालीको महाराज
स्वयम्भूकी भेंट कर दी ॥ ७५ ॥ राजा स्वयम्भूने ज्यों ही असमयमें होनेवाले फल पुष्प देखे त्यों ही मालीसे तो
उसने कुछ पूछा नहीं किन्तु अपने आप मारे चिन्ताके उसका मुख म्लान हो गया और मन ही मन इस प्रकार
चिन्ता करने लगा—असमयमें उत्पन्न होनेवाले ये फल फूल ऋतु कालके बाधक हैं, जो वस्तु जिस समयमें
होनेवाली हैं उस समयमें न होकर यदि अन्य समयमें होगी तो उससे कभी भी ऋतुका निश्चय नहीं किया जा
सकता। असमयमें होनेवाले जो ये फल फूल दीख पड़ते हैं उनका फल यही जान पडता है कि या तो किसीके
साथ महा भयंकर युद्ध करना होगा या कहींसे विशाल युद्धके समाचार सुननेमें आवेंगे। प्राचीन आचार्योंने
असमयमें जायमान पदार्थोंको देखनेका यह फल बतलाया है कि या तो राजाका अशुभ होगा या अकाल पड़ेगा
अथवा देशका भंग होगा ॥ ७८ ॥ अपने भाई नारायण स्वयम्भूको इस प्रकार चिन्ता और क्लेशसे क्लेशित
देख उसके बड़े भाई बलभद्र धर्मने कहा—भाई तुम इस डालीको देखकर क्या विचारने लग गये ? उस समय
स्वयम्भू चिन्तासे अत्यन्त व्यथित थे। मारे क्लेशसे उनके नेत्र म्लान हो रहे थे इसलिये दुःखित हो उन्होंने
उत्तरमें अपने भाईसे यह कहा—असमयमें होनेवाले इन फल फूलोंको देखकर मैंने जो कल्पना की है मैं आपसे
कहता हूँ आप ध्यान पूर्वक सुनें।

किष्किंधा नगरमें एक सुन्दर नामका राजा था जो कि विशाल सम्पत्तिकास्वामी था। अपने प्रचण्ड प्रतापसे
समस्त शत्रुओंका जीतने वाला था एवं अनेक उत्तमोत्तम गुणोंका स्थान था ॥८१॥ राजा सुन्दरकी स्त्रीका नाम
कमला था जो कि एक अलौकिक सुन्दरी थी और उससे उत्पन्न परमसुन्दरी नामकी कन्या थी जो कि विज्ञान
कला कौशल, लावण्य मनोज्ञ रूप रूपी भूषणोंसे भूषित थी ॥ ८२ ॥ विशेष क्या बिशाल और स्थूल नितंबोंसे
शोभायमान हंसके समान मीठे वचन बोलनेवाली रमणी परम सुन्दरीके समान कोई कन्या न थी ॥८३॥ अत्यंत
मानिनी उस कन्याने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी कि जिस मनुष्यके गलेमें मन्दार जातिके कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला

होगी उसी मनुष्यको प्रेमपूर्वक बड़े आदरसे मैं वरूंगी। दूसरे कामदेवके समान भी वरको मैं न वरूंगी। परम सुन्दरीके पिताने जब परम सुन्दरीकी यह प्रतिज्ञा सुनी तो उसे बड़ी घबड़ाहट हुई एवं वह उसकी कठिन प्रतिज्ञासे मन ही मन विचारने लगा—कन्या परमसुन्दरीने जो वैसी प्रतिज्ञा की है वह उसकी बड़ी भारी मूढ़ता है। मंदार वृक्षके सफेद पुष्पोंकी माला तो देव पहिनते हैं मनुष्योंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है? खैर, यदि इस कन्याका ऐसा ही बलवान आग्रह है तो बिना स्वयंबरके किये तीनों लोकमें इसके लिये वैसा वर नहीं मिल सकता। स्वयंवर करनेसे ही कदाचित् प्राप्त हो सकता है इसलिये इसके वरके लिये स्वयंबरकी ही रचना करनी होगी, बस ऐसा विचार कर राजा सुन्दरने शीघ्र ही स्वयंवर मंडपके तैयार होनेकी आज्ञा देदी तथा वह मण्डप भी रत्नोंके बने परकोटोंसे व्याप्त सुवर्णमयी स्तम्भोंसे शोभायमान एवं लटकते हुए तोरणोंसे देदीप्यमान शीघ्र ही तैयार हो गया ॥ ८८ ॥ स्वयंबर मण्डपके तैयार हो जानेपर राजा सुन्दरने समस्त देशोंके राजाओंके बुलाने के लिये पत्र भेजा जिसमें कि स्पष्ट रूपसे स्वयंबरके समाचारको सूचित करनेवाले अक्षर अङ्कित थे एवं वह शुभ मनोहर और प्रशस्त था ॥ ८९ ॥ पत्रके पाते ही शुभ कन्याकी प्राप्तिकी अभिलाषासे समस्त राजा किष्किंधापुरमें आये, एवं कन्याकी प्राप्तिमें जिनका चित्त लीन है सबके सब यथायोग स्थानोंपर ठहर गये ॥ ९० ॥ रात्रिके बीत जानेपर पूर्व दिशामें उदयाचलपर सूर्यका उदय हुआ। वह सूर्य उदयकालमें रक्त वर्णका था इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानों प्रसन्न हो वह राजाओंके देखनेके लिये आया है किंवा राजाओंकी विषय जनित लालसा पर हंसी प्रकट कर रहा है। अथवा अपने गोल आकार और ललाईसे कन्या परम सुन्दरीके ठगनेके किये मन्दार वृक्षके पुष्पोंकी आकृति बतलाता हुआ अन्धकारको जड़से भगा रहा है ॥ ९२ ॥ इस प्रकार सूर्यदेवके उदय हो जानेपर समस्त राजकुमार अपनी शय्याओंसे उठ गये। प्रातः कालीन नित्य क्रियायें की। नाना प्रकारके शृंङ्गार कर अपना शरीर सजाया एवं जिस प्रकार देव आते हैं उस प्रकार वे स्वयम्बर मण्डपमें आकर अपने अपने स्थानोंपर बैठ गये ॥ ९३ ॥ उन राजकुमारोंमें कई एक राजकुमार हंसके समान हाथोंके धारक थे। कई एक शुक-तोतोंके समान लालिमाको लिये हुए हाथोंसे शोभायमान थे। अनेक मदोन्मत्त फूल हाथोंमें लेकर उसे घुमा रहे थे और बहुतसे मंद मंद मुसका रहे थे ॥ ९४ ॥ जिसका एक हाथ धायके कंधेपर रक्खा हुआ है और जे नाना प्रकारके कौतूहलोंसे शोभायमान है ऐसी वह कन्या समस्त राजाओंके देखनेके लिये शीघ्र ही उस स्वयम्बर मंडप में आई एवं जिस समय वह वहां पर आकर खड़ी हुई तो कंचुकी उससे इस प्रकार कहने लगा—प्रिय पुत्री !

मेरी बात सुनो । इस समय समस्त देशोंके राजा इस स्वयम्बर मण्डपके अन्दर विराजमान हैं इनमेंसे जो तुम्हें पसन्द हो अच्छा लगता हो उसे ही आदर पूर्वक वर लो ॥ ९६ ॥ कन्या परम सुन्दरीने समस्त राजाओंकी ओर दृष्टि डाली परन्तु मन्दार पुष्पोंकी माला एकके भी गलेमें उसने नहीं देखी इसलिये अत्यन्द सुन्दर भी उन राजकुमारोंमेंसे एकको भी उसने नहीं वरा और वह सीधी अपने राजमहल लौट गई ॥ ९७ ॥ अनेक मानसिक कौतूहलोंसे परिपूर्ण वे समस्त राजकुमार कन्या परम सुन्दरोके मोहसे लालायित हो बराबर छह मास तक वहीं पड़े रहे । वे कन्या परम सुन्दरी पर इतने व्यामुग्ध थे कि अपने खाने पीनेकी भी उन्होंने पर्वाह न की थी इस लिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों किसी चतुर चित्रकारने उन्हें चित्रपटमें अङ्कित कर दिया है ॥ ९८ ॥

एक दिनकी बात है कि समस्त राजा और कन्यासे मण्डित सभा मण्डपमें एक कापाली आया जो कि महा भयङ्कर था । अंगमें भवूति रमाये था । हाथमें कपाल था । नग्न दिगम्बर था । जटाधारी था । गलेमें हड्डियोंकी माला पहिने था । अपनी कुटिल विद्याओंसे समस्त सभाके मनुष्योंको डरानेवाला था । शंख और चक्रोंको धारण किये था इसलिये साक्षात् कालसरीखा जान पड़ता था तथा सभा मंडपमें आकर वह पालती मार कर बैठ गया ॥ १०१ ॥ उसी समय मणिचूल नामका देवोंका स्वामी नन्दीश्वर महा द्वीपकी यात्रा कर आकाशमें अपनी स्त्रीके साथ जा रहा था जिस समय वह स्वयम्बर मंडपका भूमिपर आया उसकी स्त्रीने मधुर वचनोंमें यह पूछा, प्राण-नाथ ! नीचे यह क्या दृष्य दीख रहा है ? उत्तरमें मणिचूलने कहा—प्रिये ! कन्या परम सुन्दरीके निमित्त यह स्वयम्बर रचा गया है उसकी यह प्रतिज्ञा है कि जिस महानुभावके गलेमें मंदार पुष्पोंकी माला होगी उसे ही मैं वरूंगी अन्यको नहीं परन्तु पुष्पोंकी माला किसीके गलेमें है नहीं इसलिये वह कन्या किसीको वर स्वीकार करना नहीं चाहती । अपने पति मणिचूलकी यह बात सुन रम्भाको बड़ी हंसी आई एवं हंसी करनेके लिये पति के गलेसे उसने मंदार पुष्पोंकी माला निकाल कर कापाली योगीके सामने पटक दो ॥ १०५ ॥ योगीने शीघ्र ही माला उठाकर अपने गलेमें डाल ली और वह मौन धारण कर चुपचाप बैठ गया । कन्याको भी वह पता लग गया कि गूढ़ वेषका धारक वर प्राप्त हो चुका है इसलिये वह शीघ्र ही योगीके पास आने लगी ॥ १०६ ॥ कन्या परमसुन्दरीकी यह दशा देख उनसे पिता धाय और राजाओंने उसे रोक दिया, कपालीके पास नहीं आने दिया यह देख कपाली एकदम क्रुध हो गया और वह शीघ्र ही प्रेतारण्य बनकी श्मशान भूमिके अन्दर चला गया ॥ १०७ ॥ वहां पहुंचकर वह योगी अपने मनमें यह विचार करने लगा कि—देखो वह दिव्य मूर्ति चतुर कन्या

अपनी प्रतिज्ञानुसार मुझपर आसक्त हो मेरी ओर आती थी सो इन राजाओंने जबरन उसे आनेसे रोक दिया।
ये राजा लोग महा पापी और दुर्बुद्धि हैं। मुझे इनके लिये कोई ऐसा दुःखजनक कार्य करना चाहिये जिससे ये
कष्ट भोगें, बस ऐसा दृढ़ विचार कर वह योगी श्मशान भूमिके ऐसे प्रदेशमें बैठ गया जो कि भयंकर सर्प और
राक्षसोंके फूत्कार और फूत्कारोंसे भयंकर था। जिसका पृथ्वीतल रुधिरके फव्वारोंसे सदा तल बतल रहता था
और कातर डरपोकोंको निगलनेवाला था ॥ ११० ॥ वह योगी उस भयंकर श्मशानभूमिमें किसी मृत मनुष्यके
मस्तक पर आसन जमाकर बैठ गया और वज्रशृंखलिका नामकी भयंकर विद्या सिद्ध करने लगा ॥ १११ ॥ वह
वज्रशृंखलिका नामकी विद्या छत्तीस भुजाओंकी धारक थी अपने किल किल शब्दसे समस्त आकाश मण्डलको
गुजानेवाली थी एवं उसके मुख थे बस अपनी प्रचण्डतासे अनेक दुर्धर पर्वतोंको ढहाती हुई वह विद्या शीघ्र ही
कापालीके पास आई और रूक्ष शब्दोंमें इस प्रकार उसे धमकाने लगी—अरे तू कौन है और किस आशासे
इस भयंकर महा वनके अन्दर आकर बैठा है? इतना ही नहीं अनेक उपायोंसे उस योगीको ताड़ने लगी और
आसनसे डिगाने लगी परन्तु वह योगी अपने अटल सिद्धांत पर दृढ़ था इसलिये उस विद्या द्वारा अनेक प्रकारसे
डराने पर भी वह रंचमात्र भी अपने ध्यानसे न डिगा अचलरूपसे अपने आसनपर स्थिर रहा आया अन्तमें वह
विद्या प्रत्यक्ष होकर सामने आकर खड़ी हो गई एवं उस कपालीसे प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगी—वत्स!
मैं तुमसे राजी हुई, कठिनसे कठिन अपनी इच्छानुसार वर मांगो मैं देनेको तैयार हूँ। बस महा देवीके ऐसे
प्रसन्न बचन सुन कापालीने कहा—माँ! यदि तुम मुझे वर देना चाहती हो तो मैं अपना परम सौभाग्य समझता
हूँ आपके वर प्रदानसे मैं यह समझता हूँ कि समस्त विद्यायें मुझसे प्रसन्न हो चुकी और मैं अत्यन्त बलवान
भी शत्रुओंके लिये दुर्जय हो गया। मातेश्वरी! मैं आपसे यह वर चाहता हूँ कि आप रणके मैदानमें युद्ध
करनेके लिये दो यक्षोंको दें जो यक्ष कालके समान हो। समस्त राजाओंको नष्ट करनेवाले हों और पाषाण
सरीखे दृढ़ हो ॥ ११७ ॥ देवीने 'तथास्तु' कहकर अपने निवासस्थानकी ओर प्रयाण किया। योगीको भी बड़ी
प्रसन्नता हुई। प्रातःकाल होते ही समस्त राजकुमार स्वयंबर मंडपमें आकर अपने अपने स्थानोंपर बैठ गये।
अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। तंत्रियोंके कंठोंसे जायमान भांति भांतिके राग और गीत छिड़ने लगे। कन्या
परम सुन्दरीने भी बाजोंकी आवाज और गाने सुने और वह धायको लेकर स्वयम्बर मंडपमें आ गई ॥ ११९ ॥
जिनके मस्तकोंपर भांति भांतिके मुकुट शोभायमान हैं। जिनकी चेष्टा कामदेव सरीखी है और जो नाना प्रकारके

शृङ्गारोंको किये हैं ऐसे उन राजकुमारोंको वह कन्या देख ही रही थी कि उसी समय वह योगी आया ॥ १२० ॥
वह साधु अङ्गमें भभूति रमाये था। उसके जटाके बाल बिखरे थे इसलिये वह बड़ा भयंकर जान पड़ता था।
तथा हाड़ोंकी माला लिये था। उसके हाथमें शंख था। हंस रहा था। उसके नेत्र कुछ रक्त थे और बड़े बड़े
दांत बाहर निकले हुए थे। स्वयंबर मंडपके मध्यभागमें आकर वह वज्रके समान दृढ़ आसनसे बैठ गया। हाथमें
रुद्राक्षकी माला धारण कर ली एवं साक्षात् यमराज सरीखा जान पड़ता था ॥ १२२ ॥ मंदार पुष्पोंकी मालासे
विराजमान योगीको देखकर कन्या परम सुन्दरी बड़ी खुशी हुई और उस योगीको वर बनानेके लिये उसकी
ओर बढ़ने लगे परन्तु राजा लोगोंको यह बात पसन्द न आई उन्होंने शीघ्र ही उसे रोक दिया। राजाओंके द्वारा
कन्या परम सुन्दरीको इस प्रकार रुकता देख योगीको बड़ा क्रोध आया वह क्रुध हो एकदम अपने आसनसे उठ
खड़ा हुआ। योगीकी यह चेष्टा देख स्वयम्बर मंडपमें विद्यमान समस्त राजाओंमें खलबली मच गई सबोंके
मुखसे ये ही शब्द निकले कि यह योगी बड़ा दुष्ट और निर्दयी है इसे मारो मारो तथा बहुतसे राजा लोग उस
योगीको कुवाक्यरूप वाणोंसे वेधने लगे ॥१२४॥ वह सन्यासी समस्त राजाओंपर एकदम गुस्सा हो गया। राजा
और राजा लागोंकी मुखोंकी चेष्टाओंसे उसे यह जान पड़ने लगा कि साक्षात् प्रलय काल उपस्थित हो गया है
इसलिये अपने ऊपर एक बलवान विघ्न उपस्थित होता देख जिस समय खड़े होकर उसने महाशंख बजाया उसी
समय देवीके द्वारा भेजे हुए दो यक्ष सामने आकर गर्जने लगे वे दोनों यक्ष फुकार हुंकार शब्दोंके करने वाले
थे। पर्वतोंके फोड़ने वाले थे। अञ्जन पर्वतके समान ऊंचे थे। विशाल दन्त और विशाल भुजाओंके धारक
थे। मेघरूपके धारक उन दोनों यक्षोंने अपने पादोंके प्रहारसे समस्त राजा और किष्किंधा पुरीके राजा आदि
समस्त पुर वासियोंको तितर बितर कर दिया ॥ १२६ ॥ उसी समय विद्याधर आकाश मार्गसे जा रहा था।
कन्या परम सुन्दरीको देखते ही वह उसपर आशक्त हो गया और उसे तत्काल हर ले गया ठीक ही है जो
मनुष्य हृदयके दुष्ट होते हैं वे क्या क्या न उपद्रव कर छोड़ते हैं जो द्विजिह्व—चुगुलखोर होते हैं खर-कठोर होते
हैं। ईर्षा सहित होते हैं। विचार न कर कार्य करनेवाले होते हैं वे लोलुपी अनेक प्रकारके अनर्थोंको करते हुए
भी सदा काल जीवित रहते हैं। नारायण स्वयम्भू इस प्रकार कहकर अन्तमें अपने भाई बलभद्रसे कहा—भाई!
तुम अत्यन्त बुद्धिमान हो जो बात असंभव दीख पड़े बुद्धिमानोंको चाहिये कि उसके विषयमें शुभ अशुभका
ज्ञान अच्छी तरह कर लें सार यह है कि असंभव मंदार पुष्पोंकी मालाका हठकर कन्या परम सुन्दरीने जिस

डालीके अन्दर भी जो फल फूल दीख पड़ते हैं
प्रकार अपना सर्व नाश कर डाला था उसी प्रकार सामने रक्खी डालीके अन्दर भी जो फल फूल दीख पड़ते हैं
वे इस ऋतुके असंभव है इनके देखनेसे भी मुझे यही प्रतीत होता है कि कहीं बलवान अनर्थका सामना न
करना पड़े। इसलिये हे भाई! समस्त ऋतुओंके फल फूलोंसे भरी हुई इस डालीको देखकर मुझे बड़ी भारी
चिन्ता हो गई है एवं आगे कोई बलवान अनर्थ न आकर उपस्थित हो जाय इस विचारसे मेरा चित्त बड़ा उथल
पुथल हो रहा है। बस ऐसा कहते कहते नारायण स्वयंभूका मुख क्रूर हो गया नेत्र बक्र सूझ पड़ने लगे राजाकी
यह दशा देख माली मारे भयके कंप गया एवं अपनी चतुरतासे उनके हृदयका भाव समझ वह इस प्रकार
विनय पूर्वक कहने लगा—कृपानाथ! आपके अलौकिक पुण्यके प्रभावसे मदन नामके वनमें भगवान विमलनाथ
का समवसरण आया है उन भगवानकी बड़े बड़े इन्द्र पूजा और स्तुति करते हैं। उन्हीं भगवानके पुण्यके प्रभाव
से असमयमें भी वनके समस्त वृक्ष फल फूलोंसे लदबदा गये हैं और जहां तहां घूमते हुए भ्रमरगण उनप
गुंजार शब्द कर रहे हैं ॥ १३५ ॥ मालीके मुखसे ये आनन्द प्रदान करनेवाले वचन सुन नारायण स्वयंभू एक
दम सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। परोक्ष विनय की। एवं शुभ समाचार सुननेके कारण संतुष्ट हो उसे र
सुवर्णका बहुतसा दान दिया ॥१३६॥ चित्तमें अत्यन्त हर्षायमान राजा स्वयंभूने शीघ्र ही समस्त नगरमें आनन
भेरी बजवा दी और भगवान विमलनाथके समवसरणका आना समस्त पुर वासियोंको जना दिया। वह पुण्य
वान स्वयम्भू तीन लोकके नाथ भगवान विमलनाथकी बन्दना करनेके लिये शीघ्र ही हाथीपर सवार हो ग
तथा भाई परिवार और पुरवासियोंके साथ शीघ्र ही बनकी ओर चल दिया ॥१३८॥ रंग विरंगी कांतिसे शोभाय
मान हींस लगाते हुए अनेक घोड़े चलने लगे जो कि सूर्यके घोड़ोंके समान जान पड़ते थे और अपने खुरों
वृक्ष और पर्वतोंको ढाह देनेवाले थे। बड़े बड़े ऊंचे हाथी चलने लगे जो कि जंगम चलते फिरते पर्वत सरी
जान पड़ते थे। तथा उनके गंडस्थलोंपर सिंदूर लगा हुआ था और मद भी झरता था इसलिये वे हाथी ऐ
जान पड़ते थे मानो चमकती हुई विजलीसे शोभायमान ये मेघ ही हैं ॥ १४० ॥ उस समय हक्का, छक्का, हां
हटाओ इत्यादि शब्दोंसे समस्त आकाश मंडल व्याप्त था। अनेक प्रकारके बाजोंके शब्द हास्योंके शब्द अ
आनन्द पूर्वक बजाये गये तालोंके शब्द हो रहे थे इसलिये आपसमें एकको दूसरेका शब्द नहीं सुनाई पड़
था ॥१४१॥ हाथी और घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलिसे सूर्य एकदम ढक गया था दीख नहीं पड़ता था इसलि
दिनके अन्दर भी रात जान पड़ती थी ॥१४२॥ इस प्रकार विशाल विभूतिसे मंडित वह अर्धचक्री स्वयंभू भ

वान विमलनाथकी बंदनाके लिये चल दिया बनमें पहुंचते ही दूरसे ही उसे स्वर्णमयी मानस्तंभ दीख पड़ा भव्य जीव वह स्वयंभू शीघ्र ही हाथीसे उतर पड़ा। छत्र चमर आदि विभूति वहीं पर छोड़ दी। मारे आनन्दके उसका शरीर पुलकित हो गया। समवशरणकी जहां तहांकी शोभा निरखता हुआ उसने भीतर प्रवेश किया। भगवान जिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणा कीं महा मनोहर गद्योंमें स्तुति की एवं अपने भाई धर्मनाम बलभद्रके साथ भक्तिपूर्वक जल आदि अष्ट द्रव्योंसे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १४३ ॥ सबसे पहिले चक्रवर्ती स्वयम्भूने भौरोंके समूहसे व्याप्त जो कमल उनकी प्रभासे जाज्वल्यमान सुवर्णमयी झाड़ियोंमें रक्खे हुए जलकी धारासे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की। अन्य सिद्धांतकारोंकी शंका—जब जलकी एक बून्दके अन्दर भी असंख्याते जीव हैं ऐसा भगवान अर्हंतके मुखसे निकले शास्त्रोंमें कथन है तब धर्मके लिये जलकी स्थूल धारासे भगवान जिनेंद्र की पूजा पुण्य कार्य कैसे समझा जा सकता है? उत्तर, जिस प्रकार अग्निकी छोटीसी कणीसे भी बड़े बड़े काष्ठ भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार भगवान अर्हंतकी पूजासे जायमान पुण्यसे बलवान भी पापोंकी लड़ियां देखते देखते नष्ट हो जातीं हैं ऐसा शास्त्रका वचन है इसलिये जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करना अनुचित नहीं। शंका—आत्माके साथ प्रथमसे ही अगणित पापोंका सम्बन्ध विद्यमान है यदि असंख्यात जीव स्वरूप जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की जायगी तो उससे जायमान पापोंका समूह नियमसे नरक ले जायगा इसलिये जलकी धारासे पूजा करना ठीक नहीं है? उत्तर, जिस प्रकार संपूर्ण चन्द्रमामें थोड़ीसी कलंककी रेखा कुछ भी हानि नहीं करती—चन्द्रमा स्वरूप ही मानी जाती है उसी प्रकार जलकी धारासे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करनेपर अनंते पुण्य परमाणुओंका बन्ध होता है उनके सामने जलकी धारासे पूजन करनेपर जो पाप होता है वह नहीं सरीखा होता है। विशेष पुण्य परमाणुओंके सामने थोड़ीसी पाप परमाणु अपना बल नहीं दिखा सकती अर्थात् वे पुण्य स्वरूप ही परिणत हो जाती हैं ऐसा शास्त्रका उपदेश है इसलिये जलकी धारासे भगवान जिनेंद्र की पूजा करना किसी प्रकारका अनर्थ नहीं कर सकता। फिर भी शंका—

अग्निकी छोटी चिनगारी भी जिनकी डालियोंपर भाँति भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ऐसे महामनोहर हरे वृक्षों से मण्डित वनको देखते देखते खाख कर डालती है उसी प्रकार जलकी धारासे पूजन करनेपर उससे जायमान थोड़ासा पाप भयंकर अनर्थ कर सकता है इसलिये पापको उत्पन्न करनेवाली जलकी धारासे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा करना अनुचित है? उत्तर, बड़वानल जातिकी अग्नि बड़ी प्रौढ़ और तीव्र होती है और वह समुद्रमें उत्पन्न

होती है ऐसी कवि समय प्रख्याति है वह तीव्र अग्नि भी समुद्रकी रंचमात्र भी हानि नहीं करती उसके विद्यमान रहते भी झक झकाती हुई तरंगोंसे सदा गम्भीर बना रहता है उसी प्रकार जलकी धारासे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा किये जानेपर पुण्यका तो अधिक संचय होता है और पापका उपार्जन बहुत थोड़ा होता है इसलिये वह थोड़ासा पाप विशाल पुण्यरूपी समुद्रको लांघ नहीं सकता यह न्याय भी है कि अन्तरङ्गविधिसे वहिरङ्ग विधि बलवान होती है। पुण्य अन्तरंग विधि है और पाप बहिरंग विधि है बहिरंग विधि स्वरूप पाप अन्तरङ्ग विधि स्वरूप पुण्यको बाधा नहीं पहुंचा सकता इसलिये जलकी धारासे भगवान जिनेन्द्रकी पूजाका निषेध नहीं किया जा सकता। फिर भी शंका—गृहस्थाश्रमके कार्योंके करनेसे जो पाप उत्पन्न होगा उसका विनाश भगवान जिनेन्द्रके चरण कमलोंकी सेवासे हो सकता है परन्तु धर्मके स्थानमें जो पातक किया जायगा वह वज्रसे भी अधिक कठिन होगा उसका नाश न हो सकेगा इसलिये जल धारासे पूजन करनेपर जो भी पाप उत्पन्न होगा वह भी मिट नहीं सकता इसलिये जलकी धारासे पूजा नहीं करनी चाहिये ? उत्तर, भगवान जिनेन्द्रका सिद्धांत है कि ऋषि मुनि और यतियोंकी भले प्रकार पूजन उनके गुणोंका स्मरण ध्यान और उत्तम परिणामोंसे उन्हें नमस्कार करना चाहिये। इसी कारण जल धारासे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा करना अनुचित नहीं ॥ १५६ ॥ पुनः शंका—बड़े ऋषि जो कि रात दिन घोर तपोंको तप पुण्य संचय करते हैं यदि वे जलसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करें तब तो यह मान लिया जा सकता है कि जलसे पूजन करने पर जो पाप होगा उसे मुनिगण नष्ट कर सकते हैं परन्तु गृहस्थ जो कि रात दिन पापोंका संचय करते हैं यदि वे जलसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा करेंगे तो और भी पापका बोझा उनपर लदेगा उनका पापोंका भार हलका नहीं हो सकता इसलिये हिंसा जन्य पातकके भयसे जब मुनिगण जलसे पूजा नहीं करते तब गृहस्थोंको तो जलसे पूजा करनी ही नहीं चाहिये इसलिये जलसे पूजा की जो पुष्टि की गई है वह मिथ्या है ? उत्तर, मुनिगण समस्त प्रकारके आरम्भके त्यागी हैं इसलिये शास्त्रमें भगवानकी पूजाके लिये उन्हें आज्ञा नहीं किन्तु गृहस्थ घरमें फंसा रहनेके कारण अनेक प्रकारके आरम्भोंको करता रहता है और उन आरम्भोंसे अनंते पापोंकी उत्पत्ति होती रहती है। उन पापोंका नाश भगवान जिनेंद्र की पूजा आदिसे ही होता है इसलिये गृहस्थ अवस्थामें उत्पन्न होने वाले पापोंकी शांतिके लिये भगवान जिनेंद्र की पूजा करना आवश्यक है। यदि पूजन आदिसे उन पापोंकी शांति न की जायगी तो वह पाप हो जायगा उसका नाश जल्दी नहीं हो सकेगा इसलिये पूजा आदिका मार्ग जो शास्त्रके अन्दर पुष्ट किया गया है उसको

न लोपना चाहिये इसलिये जल आदिसे जो भगवान् जिनेंद्रकी पूजा की जाती है वह पापोंको उत्पन्न नहीं करती किन्तु पुण्यात्पादक हाती है। पुनः शंका—

भगवान् जिनेंद्रके भक्तोंका यह कहना है कि हमें भगवान् जिनेंद्रका स्वरूप वा उनके गुणोंका स्मरण करनेसे ही आनन्द प्राप्त हो जाता है इसलिये इस विषयमें हमारा (शंकाकारका) यही खास लक्ष्य है कि जब गुणोंके स्मरण करनेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है तब जल आदिसे पूजाका करना व्यर्थ है इसलिये भगवान जिनेंद्र की जो जलकी धारासे पूजा की जाती है वह हिंसाकी कारण होनेसे उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकतो ? उत्तर— जलको स्वच्छ धारासे भगवान जिनेन्द्रका पूजन करने पर राज्यमें विघ्नोंकी शांति होती है तथा इसी लोकमें अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है इसलिये जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा की जाती है। इस प्रकार अर्ध-चक्री स्वयम्भूने जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा की ॥ १५९ ॥ कल्याण स्वरूप अर्धचक्री उस स्वयम्भूने इस लोक और परलोकमें शरीरके कल्याणकी सिद्धिके लिये शीतलता प्रदान करनेवाले चन्दन द्रव्यसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की ॥ १६० ॥ जो तंदुल अखण्ड थे और उज्ज्वलतामें अष्टमीके चंद्रमाकी तुलना करते थे उन तंदुलोंसे स्वयम्भू नारायणने विशाल विभूतिकी प्राप्ति की अभिलाषासे भक्ति पूर्वक भगवान जिनेंद्रकी पूजा की ॥ १६१॥ समस्त प्रजाकी रक्षा करनेवाले उस चक्रवर्तीने जिनका रस झन्कार करते हुए भौंरोंसे पीया गया है और जो अत्यन्त मनोहर हैं ऐसे मंदार जातिके कल्प वृक्षोंके पुष्पोंसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की ॥१६२॥ उत्तम बुद्धिका धारक वह नारायण स्वयंभू समस्त साम्राज्य विभूतिकी प्राप्तिकी अभिलाषासे उत्तमोत्तम नैवेद्योंसे पूजा करने लगा जो नैवेद्य क्षीर और घृतआदि अतिशय उत्तम पदार्थोंसे तैयार किये गये थे ॥ १६३ ॥ अर्धचक्री स्वयम्भूने केवल ज्ञानकी प्राप्तिकी अभिलाषासे दीपकसे भगवान जिनेंद्रकी पूजा की, जो कि दीपक ऐसा जान पड़ता था मानो सुवर्णमयी मेरु पर्वतका पत्थरका खण्ड है अथवा यह देदीप्यमान सूरज है ॥ १६४ ॥ जो धूप चन्दन अगुरु और कपूरसे तैयार की गई थी ऐसी धूपसे समस्त कर्मोंके नाशकी अभिलाषासे राजा स्वयम्भूने भगवान जिनेंद्रकी पूजा की उस धूपकी इतनी उत्कट सुगंधि थी कि उससे समस्त दिशाओंका मंडल महक उठा था ॥ १६५ ॥ अर्धचक्री स्वयम्भूने उत्तम फल मोक्ष फलकी प्राप्तिकी अभिलाषासे श्रीफल आदि फलोंसे भरी रकेबीको तीन बार भगवान जिनेंद्रके सन्मुख उतारी और उन उत्तम फलोंसे भगवान जिनेन्द्रको पूजा की ।१६६। अन्तमें जन्म मरण आदि और वृद्धावस्था आदि दुःखोंकी शांतिकी अभिलाषासे संसारके विनाशार्थ चक्रवर्ती

स्वयम्भूने हाथ जोड़ भगवान् जिनेन्द्रको महार्घ दिया अर्थात् महार्घसे भगवान जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६७ ॥ बस इस प्रकार आठों द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक भगवान जिनेद्रकी पूजा कर वे दोनों भाई धर्म और स्वयम्भू समवसरणके नरकोठेके अन्दर बेठ गये। भगवान जिनेन्द्र जिस धर्मामृतका उपदेश दे रहे थे उसे भक्ति पूर्वक सुना एवं अन्तमें भगवान जिनेन्द्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बलभद्र धर्मने इस प्रकार भगवान् जिनेन्द्रसे पूछा—भगवन् ! आप तीनों लोकके बन्धु हैं। कर्मरूपी पर्वतको छिन्न भिन्न करनेवाले वज्र हैं। कामदेवको नष्ट करने वाले हैं। समस्त प्रकारके रोगोंके विनाशक हैं कृपाकर बताइये यह जीव कैसे तो अनेक सुखोंको प्रदान करनेवाले स्वर्गके अन्दर जन्म लेता है और कैसे छेदन भेदन आदि अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त नरक रूपी समुद्रमें गिरता है ? प्रभो ! आप मोक्ष लक्ष्मीके स्वामी है इसलिये कृपाकर कहें ॥ १७० ॥ कृपानाथ ! कैसे तो यह जीव तिर्यंच योनिके अन्दर जन्म लेता है ? कैसे यह मनुष्य योनिके अन्दर जन्म लेता है ? मनुष्य योनिके अन्दर भी किन कर्मके उदयसे इसे मनुष्य होना पड़ता है और कैसे स्त्री हो जाती है। बहुत जीव थोड़ी आयुके धारक दीख पड़ते हैं और बहुतसे अधिक आयुवाले दीख पड़ते हैं इसलिये कृपया कहिये कि—कैसे तो थोड़ी आयुवाले जीव होते हैं और कैसे बहुत आयुवाले जीव होते हैं। संसारमें बहुतसे जीव ऐसे हैं जिन्हें कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त नहीं और बहुतसे ऐसे हैं जिन्हें नाना प्रकारके भोग प्राप्त हैं कृपाकर बतलाइये कि कैसे तो मनुष्य भोग रहित उत्पन्न होते हैं और कैसे भोग सहित उत्पन्न होते हैं ? संसारमें किस कारणसे मनुष्योंका सौभाग्य होता है और किस कारणसे दुर्भाग्य होता है ? कैसे मनुष्य बुद्धिमान होते हैं और कैसे निर्बुद्धि होते हैं ? कैसे पंडित और मूर्ख, कैसे धीर वीर और डरपोंक एवं कैसे धनी और निर्धनी होते हैं ? प्रभो ! किस कारणसे तो संसारमें शुभ पुत्रोंकी प्राप्ति होती है किस कारणसे वे मर जाते हैं तथा जो श्रेष्ठ पुत्र जीते हैं वे किस कारणसे जीते हैं ? भगवन् ! आप यह भी कहें कि किस किस कर्मके उदयसे मनुष्य रतोंद्वाले वधिर कंठ और उदर आदिके अनेक रोगोंसे पीड़ित वरोपकारी और दरिद्री, अत्यन्त रोगवाले और निरोग मूक (गूंगे) लंगड़े, अत्यंत रूपवान और कुरूप, वेदनाओंके भोगनेवाले और वेदना रहित पंचेंद्रिय और एकेंद्री कोढ़ी थोड़े दिन संसारमें रहने वाले और बहुत दिन पर्यंत संसारमें रहनेवाले एवं मोक्ष प्राप्त करनेवाले होते हैं ? तथा बगुली, उल्लू, बिल्ली, कुत्ता, काक, गधे चांडाल आदि जीव किस कर्मके उदयसे होते हैं ? हे नाथ ! आप अज्ञानरूप अंधकारके नाश करनेके लिये साक्षात् सूर्य समान हैं। ज्ञानकी मूर्ति स्वरूप हैं। मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। भव्य रूपी रात्रि-

विकासी कमलोंके प्रकाश करनेके लिये चन्द्रमा स्वरूप है। लक्ष्मीके स्वामी हैं। हे दयानिधि! मैं ने जो कुछ पूछा है कृपाकर शीघ्र उसका उत्तर दीजिये उपस्थित ये समस्त भव्य जीव कर्मों के विचित्र विपाक फलके लिये लालायित हो रहे हैं ॥ १८३ ॥ बलभद्र धर्मका ऐसा प्रश्न होनेपर भगवान जिनेंद्र गम्भीर वाणीसे उसका उत्तर देने लगे। भगवान जिनेंद्रकी वाणी उस समय इतनी गंभीर थी कि वह गर्जते हुए मेघकी ध्वनिकी शंका उत्पन्न करती थी और उसके सुनने मात्रसे मयूर गण अतिशय आनन्दका अनुभव करते थे। भगवान जिनेंद्र कहने लगे प्रिय वत्स! तुमने बहुत ठीक पूछा। इस प्रकारके उपदेशको सुनकर भव्य लोग अपना वास्तविक हित संपादन कर सकते हैं, ध्यान लगाकर सुनो किस कर्मका क्या फल है मैं संक्षेपसे कहता हूँ—जो मनुष्य हिंसा करनेवाले हैं। असत्य बोलने वाले हैं। पराई स्त्री और पराये धनके चुराने वाले हैं। छल छिद्र कपट और अहंकारके पुञ्ज हैं। सदा पराये छिद्र प्रकाशने वाले हैं, कृतघ्न और पापी हैं वे दुःखोंके समुद्र स्वरूप नरकमें जाते हैं किन्तु जो मनुष्य दानी हैं। सदा भगवान जिनेंद्रकी पूजा करनेवाले हैं। तपस्वी हैं इंद्रियोंके जीतनेवाले हैं। निर्मल चित्तके धारक हैं। कोमल परिणामी और मधुर बोलनेवाले हैं और निर्ग्रंथ गुरुओंके भक्त हैं वे मनुष्य अनेक कल्याणोंके स्थान स्वर्गमें जाकर जन्म धारण करते हैं ॥१८८॥ जो मिथ्यादृष्टि जीव अपने प्रयोजनके लिये दूसरेके साथ स्नेह जनाते हैं। अंतरंगका अभिप्राय जिनका दुष्ट रहता है। सदा ईर्षा करते रहते हैं। छल छिद्र कपटमें सदा रंगे रहते हैं। बहुत खानेवाले होते हैं तथा बहुत सोनेवाले और आलसी होते हैं वे मूढ़ पुरुष तिर्यंच गतिमें जाकर जन्म धारण करते हैं जहांपर कि उन्हें अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करना पड़ता है ॥ १९० ॥ जो महानुभाव विशेष लोभी नहीं होते विवेकी दयावान और दानी होते हैं तथा किसीकी भी निंदा नहीं करते वे महानुभाव मनुष्य योनिके अन्दर जन्म धारण करते हैं ॥ १९१ ॥ जो स्त्री सत्य बोलनेवाली और शौच धर्मका पालन करने वाली होती है। विशेष कामिनी न होकर संतोष रखनेवाली होती है। शुभ होती है जिसका अन्तःकरण चल विचल न होकर स्थिर रहता है तदा सदा जिसकी बुद्धि धर्ममें दृढ़ रहती है वह स्त्री अपने स्त्रीलिंगको छेदकर पुरुषलिंग धारण करती है ॥ १९२ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंमें विशेष आसक्ति रखता है। चंचल होता है सदा काम चेष्टाओंके करनेमें ही परम आनन्द मानता है। धूर्त होता है और स्त्रियोंकी सूंघ लगानेमें रहता है वह पुरुष नियमसे दूसरे भवमें स्त्री होता है ॥१९३॥ जो नीच पुरुष पशुओंके नाम कान आदि अङ्गोंको छेदना है। सदा मनमें दुष्टभाव रखता है और निरंतर अपने शरीरका संस्कार करता रहता है वह नीच

नहीं भोग पाता ॥ १६४ ॥
पुरुष संसारमें नपुंसक होता है एवं नपुसक होनेसे वह किसी भी प्रकारके भोगोंको नहीं भोग पाता ॥ १६४ ॥
जो मनुष्य जीवोंको अनेक प्रकारके त्रास देता है। पक्षियोंके रहनेके घोसलोंको तोड़ता फोड़ता है एवं विष
खाकर प्राण तजता है वह अत्यन्त पापी मनुष्य थोड़ी आयुका धारक होता है ॥ १६५ ॥ जो महापुरुष सदा
जीवोंकी रक्षामें तत्पर रहता है। दूसरोंका सदा उपकार करता रहता है और दूसरे जीवोंका शुभ ही विचारत
रहता है वह मनुष्य विशेष आयुका धारक होता है ॥१६६॥ धनके विद्यमान रहते भी जो पुरुष कोड़ी बराब
भी किसीको नहीं देता यदि किसीको कुछ देता भी है तो "हाय सब कुछ जानकर मूढ़ बन मैंने क्या कर डाल
जो अपना धन दे दिया" ऐसा पश्चानाप करता है। जो महानुभाव धन देना चाहते हैं उन्हें भी दान देने
रोकता है वह मनुष्य संसारमें भोग रहित दरिद्री एवं हर्षा नामके विशेष रोग (मृगी) से पीड़ित होता
॥१६८॥ जो महानुभाव विनय शील होता है। सदा शान्त रहता है। भगवान जिनेन्द्रकी आज्ञाका पाल
करनेवाला होता है और किसीको भी दुःख देना नहीं चाहता वह संसारमें यशस्वी पुरुष माना जाता है। स
संसार उसके यशका गान करता है ॥ १६६ ॥ जो महानुभाव द्वेष रहित होकर जैन शास्त्रोंको पढ़ाते हैं अ
स्वयं भी पढ़ते हैं तथा पढ़ने पढ़ानेमें किसी प्रकारकी द्रव्यकी अभिलाषा नहीं रखते वे मनुष्य निर्मल बुद्धि
धारक माने जाते हैं ॥२००॥ जो पुरुष क्रोध कषायके आवेशमें आकर गुणी, तपस्वी, विद्यावान और यश
मनुष्योंका अनादर करते हैं वे मनुष्य निर्बुद्धि पागल होते हैं ॥२०१॥ जो महापुरुष देव और गुरुओंके भ
रहते हैं। पाप और पुण्यका स्वरूप जानते हैं एवं भगवान जिनेन्द्रके गुणोंके चिन्तवनमें ही चित्त लगाते है
मनुष्य संसारके अन्दर विद्वान् होते हैं ॥२०२॥ जो मनुष्य नास्तिक होता है जीव धर्म अधर्म आदि किसी
भी नहीं मानता वह पुरुष निन्दित हृदयका धारक मूर्ख माना जाता है ॥२०३॥ जो निर्दयी मनुष्य मृग,
तोता आदि दीन पक्षियोंको पकड़ कर पींजरेमें बन्द रखते हैं उनको पालते पोषते हैं वे पापी भव भवमें डर
होते हैं ॥ २०४ ॥ जो पुण्यात्मा जीवोंकी रक्षा करनेमें दत्त चित्त रहता है। दूसरेका दुःख दूर करना अ
कर्त्तव्य समझता है। जो प्राणी क्षुधासे व्याकुल होते हैं उनकी क्षुधाको दूर करता है वह पुण्यवान पुरुष सं
में वीर होता है ॥ २०५ ॥ धनको अपवित्र पदार्थ मानकर जिस महानुभावका हृदय उसके दान करनेके
लालायित रहता है वह महापुरुष थोड़े दानके प्रभावसे ही पूर्ण लक्ष्मीका पात्र बन जाता है ॥२०६॥ जो म
पहिले तो किसी कारणसे दान दे देता है किन्तु पीछेसे बड़ा दुःखी होता है पछितावा करता है। उस मनुष

वृद्धावस्थामें पासमें रहनेवाली लक्ष्मी चली जाती है। वह निर्धन हो जाता है। और अनेक प्रकारके उसे तिरस्कार सहने पड़ते हैं ॥२०७॥ जो दुष्ट पुरुष पशु और पक्षियोंके बच्चोंको त्रास देते हैं और दूसरेके धनको हरण करते हैं उनके पुत्रोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥२०८॥ अथवा दूसरेका धन अपहरण कर जिन्होंने नहीं दिया वे मनुष्य ऋणी कहे जाते हैं उस ऋणरूपी शत्रुके प्रभावसे कदाचित् पुत्र हों भी तो वे मर जाते हैं किन्तु जो मनुष्य दूसरोंके ऋणी नहीं होते और न पशु पक्षियोंके बच्चोंको त्रास देते हैं उन मनुष्योंके अत्यन्त रूपवान पुत्र होते हैं ॥२०९॥ जो मनुष्य बिना ही सुने कुछका कुछ दूसरेका दोष बोल देता है वह बधिर—बहिरा होता है तथा जो बिना ही देखे यह कहता है कि मैंने अमुकका अमुक दोष देखा है तथा रोकनेपर भी वह उस दोषको प्रगट करता है वह मूढ़ मनुष्य नियमसे जन्मसे ही अन्धा होता है। जो मनुष्य उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर भी शराब मांस आदिका भक्षण करते हैं वे अजीर्ण रोगसे ग्रस्त उत्पन्न होते हैं फिर जो नीच कुलमें उत्पन्न होनेवाले हैं और शराब मांस आदिका भक्षण करते हैं उनकी तो बात ही क्या है उन्हें तो और भी अनेक रोग सताते हैं। जो पुरुष मुनिराजको देखकर मदोन्मत्त हो उनपर थूकते हैं वे उस निन्द्य कर्मकी कृपासे खून फिसाद पीलिया और कोढ़से ग्रस्त होते हैं। जो मनुष्य वृथा अपनी जातिका अहङ्कार करनेवाले हैं कृतघ्नी और स्वामी द्रोही हैं वे दास होते हैं और भव भवमें उन्हें दरिद्रताका दुःख भोगना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासघाती हैं वे मनुष्य अनेक रोगोंसे व्याप्त और निन्दित होते हैं ॥ २१४ ॥ किन्तु जो मनुष्य दयालु होते हैं परस्त्री और परधनके अन्दर चित्त शुद्ध रखते हैं एवं दूसरे रोगी जीवोंको औषध प्रदान करते हैं वे जीव संसारमें नीरोग होते हैं कोई भी रोग उन्हें नहीं सताता ॥ २१५ ॥ जो दुष्ट पुरुष अत्यन्त गहन जैन सिद्धान्तको श्रवण कर उसकी निन्दा करता है वह मूक-गूंगा होता है क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है हर एक मनुष्य कर्मोंकी गतिका ज्ञान नहीं कर सकता ॥ २१६ ॥ (क) जो पुरुष व्रत शील यम आदिका नियम आदि लेकर विषयोंके लोलुपी हो उन्हें छोड़ देते हैं यह निश्चय है उनके शरीरमें कम्प आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥२१६॥ (ख) जो दुष्ट पुरुष पक्षियोंके पंखोंको काटते हैं वे अज्ञानी दुष्ट चित्तके धारक एवं पशुओंके पैरोंको नष्ट करनेवाले संसारमें पंगु होते हैं ॥२१७॥ जो महानुभाव आनन्दित हो घोर तपोंके तपनेवाले हैं और जो तप करनेवाले हैं उनकी प्रशंसा करते हैं वे कामदेवके समान रूपवान उत्पन्न होते हैं ॥ २१८ ॥ जो दुष्ट पुरुष तपोंके आचरण करनेमें असमर्थ हैं और जो तपोंको आचरण करनेवाले हैं उनकी निन्दा करते हैं वे मनुष्य संसारमें महाकुरूप एवं बिकल और कृश

जो जीव अकाम निर्जरा पूर्वक क्रोधसे प्राणोंको छोड़ते हैं वे भव भवमें
अङ्गके धारक उत्पन्न होते हैं ॥ २१६ ॥ जो जीव अकाम निर्जरा पूर्वक क्रोधसे प्राणोंको छोड़ते हैं वे भव भवमें
अनेक प्रकारकी वेदनाओंके धारक उत्पन्न होते हैं ॥२२०॥ जो महानुभाव सदा धर्ममें लीन मुनिराजोंकी सेवा
सुश्रूषा करते हैं वे संसारमें किसी भी वेदनाका सामना नहीं करते तथा वे भगवान वाहुबलीके समान महाबल-
वान और उच्च अवगाहनाके धारक होते हैं ॥२२१॥ जो जीव कन्द मूलके भक्षण करनेवाले हैं। जमीन आदिको
बृथा कुचेरनेवाले है। शून्यवादी हैं वे अपने कर्म्मके अनुसार मरकर एकेन्द्री स्थावर होते हैं ॥ २२२ ॥ पचेन्द्री
जीवोंके बहुतसे भेद हैं बहुतसे उनमें दुःखी और सुखी हैं। भगवान अर्हन्तके गुणोंमें मग्न हैं एवं पुण्य और
पापोंसे युक्त हैं ॥२२३॥ जो महानुभाव समीचीन धर्मके भक्त हैं। उत्तम आचारोंके आचरनेवाले हैं एवं सदा
निर्ग्रन्थ गुरुओंमें विनय भाव रखनेवाले हैं वे महानुभाव अल्प संसारी होते हैं थोड़े ही दिनोंमें उन्हें मोक्ष सुख
को प्राप्ति हो जाती है किन्तु जो इन क्रियाओंसे रहित हैं अर्थात् न तो धर्मके भक्त हैं। न उत्तम आचरणोंके
आचरनेवाले हैं और न गुरुओंमें विनय ही रखते हैं वे दीर्घ संसारी होते हैं बहुत काल तक उन्हें संसारमें रुलना
पड़ता है ॥२२४॥ जो महानुभाव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके धारण करनेवाले हैं। निरन्तर
अनित्य आदि भावनाओंको भाते हैं। और शुक्ल ध्यानमें तत्पर होते हैं वे महानुभाव अनुपम सुख मोक्ष सुख
के भागी होते हैं ॥ २२५ ॥ जो स्त्रियां लज्जाके कारण निन्दित कार्य करनेवाली हैं। भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमा-
ओंकी निन्दा करनेवाली हैं। दूसरोंके गुणोंका लोप करनेवालीं हैं। रात दिन उत्पात लड़ना झगड़ना ही जिनका
काम है तथा जो मनुष्य भोजन कर रहा हो उसकी ओर बिल्लीके समान टकटकी लगाकर देखनेवाली हैं एवं
जिनकी दृष्टि वक्र है वे स्त्रियें मरकर नियमसे शाकिनी भूतिनी होती है किन्तु जिनका मध्यम भाव रहता है,
लज्जाके कारण निन्द्य कार्य आदि नहीं करतीं उन्हें कोई दुःख नहीं उठाना पड़ता क्योंकि मध्यम भाव सदा सुख
देनेवाला होता है ॥२२७॥ जिन मनुष्योंके हृदयोंमें छल छिद्र कपट भरा रहता है। दूसरोंका धन देख कर जो
रोष करते हैं और अपनेको दुःखित बनाते हैं वे पुरुष मरकर उल्लू गधा और कुत्तेका जन्म धारण करते हैं। जो
दुष्ट पुरुष गुरुओंकी निन्दा करनेवाले हैं। व्यर्थ ही धर्मकी निन्दा करते हैं। हरएककी निन्दा करना ही जिनका
मुख्य कर्तव्य रहता है और जो देव द्रव्यसे जीनेवाले हैं अर्थात् निर्माल्य धन हजम कर लेते हैं वे पुरुष मरकर
महानीच काक होते हैं ॥ २२८ ॥ जो मूढ़ पुरुष अपनी जाति और अपने गुणका सदा घमण्ड करता है। सदा
क्रोधसे जलता रहता है। मृत्युसे भयभीत रहता है जो कार्य लज्जाजनक हैं उन्हें करता है। अपनी प्रशंसा

करता है। मीठे वचन बोलनेवाला होकर भी अन्तरङ्गमें दुष्ट रहता है वह मनुष्य बहुत दिनोंमें अनेक प्रकारके रोगोंके दुःख भोगकर मरता है किन्तु जो मनुष्य मध्यम भाव रखते हैं उपर्युक्त कोई भी दुर्गण जिनमें नहीं रहता उनकी मृत्यु बड़े सुखसे बहुत जल्दी हो जाती है ॥ २३० ॥ जो मनुष्य दुष्ट कुलमें तो उत्पन्न हुए हैं परन्तु कोमल परिणामोंके धारक हैं। उत्तम बुद्धिके स्थान हैं और धर्मके उत्तम धर्मके जानकार हैं वे भव्य मनुष्य कुटिलतासे रहित सीधे साधे होते हैं ॥ २३१ ॥ जो मनुष्य उत्तम कुलमें तो उत्पन्न हुये हैं परन्तु परिणामोंमें किसी प्रकारकी सरलता न कर कुटिलता रखनेवाले हैं भ्रांतिसे परिपूरित हैं—जिनेन्द्र भगवानके वचनोंके अन्दर सदा भ्रम करनेवाले हैं और चुगुलखोर हैं वे धर्मसे विपरीत श्रद्धान करनेवाले अभव्य होते हैं ॥२३२॥ इस कलिकालमें तपस्वी बन जो मनुष्य धर्म और दानको विपरीत रूपसे करनेवाले हैं और कुलाचारके विरोधी हैं वे मनुष्य मरकर चुगुल होते हैं (॥२२३॥) धर्म नामके बलभद्र द्वारा जितने भी प्रश्न किये थे उनका इस प्रकार उत्तर देकर भव्यरूपी कमलोंको सूर्यके समान वे भगवान जिनेन्द्र शांत हो गये ॥ २३४ ॥ धर्म और स्वयंभू दोनों भाइयोंने भक्ति पूर्वक भगवान जिनेन्द्रको नमस्कार किया। अपनी राजधानी लौट गये और कवि भी जिस सुखका अपनी वाणीसे वर्णन नहीं कर सकते ऐसा अनुपम सुख भोगने लगे ॥२३७॥ राजा श्रेणिकने भगवान गौतम गणधरसे प्रश्न किया कि भगवन्! धर्म और स्वयंभूने जो नारायण पदको प्राप्त किया वह किस कर्मके उदयसे कृपया कहिये ? उत्तरमें गणधर गौतमने कहा कि राजन्! इस समय तुमने बहुत ही उचित प्रश्न किया है क्योंकि तीर्थंकर चक्रवर्ती बलभद्र आदिकी कथायें पुण्य प्रदान करनेवाली हैं मैं संक्षेपमें कहता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें एक गन्ध समृद्ध नामका नगर है जो कि संपदासे परिपूर्ण है ॥२४०॥ उसका पालन करने वाला एक मित्रनदी नामका राजा था जो कि सूर्यके समान देदीप्यमान था। अपने प्रतापसे समस्त शत्रुओंको वश करनेवाला था। समस्त सामंतोंसे सेवित था। तथा वह राजा दुरक्षरसदादस्य दुरक्ष-अतींद्रिय सिद्धोंके रसमें मग्न जो कोई भी भव्य जीव थे उनका ग्रहण करनेवाला था अर्थात् जो भव्य जीव मोक्ष मार्गपर स्थित थे वह राजा मित्रनंदी उनका पूर्ण आदर करनेवाला था। सदादस्य—समीचीन मार्ग-का ग्रहण करनेवाला था और दुरक्षर—दुष्ट लोग रंचमात्र भी उसका बिगाड़ नहीं कर सकते थे इसलिये "कृतकांक्षाः तीक्ष्ण शस्त्रोंके धारक भी उसके शत्रु पृथ्वीतलपर मारे भयके लड़ते पुड़ते थे—रंचमात्र भी अपना

बल नहीं दिखा सकते थे ॥ २४२ ॥ महानुभाव उस राजा मित्रनन्दीका पर चक्र भी स्वचक्रके समान था अर्थात्
शत्रु और मित्र दोनों ही उससे प्रसन्न थे क्योंकि यह चक्र—राज्य मेरा है और यह चक्र दूसरोंका है जहां पर
यह विभाग रहता है वहांपर तो स्वपरका भेद रहता है परन्तु उस राजाकी वैसी भेद बुद्धि थी नहीं इसलिये
अपना और पराया दोनों प्रकारका राज्य उसका स्वराज्य ही था किन्तु जिस समय भरत चक्रवर्तीके समान
अपने भी राज्यमें भेद बुद्धि हो जाती है—वह भी अपने निज स्वरूपसे भिन्न मान लिया जाता है, उस समय
वह भी भिन्न ही रहता है और उसे छोड़ देना पड़ता है। भरत चक्रवर्तीको जिस समय छह खण्डकी विभूति
से वैराग्य हो गया था उस समय समस्त राज्यका उन्होंने त्याग कर दिया था ॥ २४४ ॥ वह धीर वीर राजा
भोग वस्त्र शरीर और राज्य आदिसे जायमान सुखसे सदा तृप्त रहता था और समस्त शत्रु उसके चरणोंको
नमस्कार करते थे ॥ २४५ ॥ एक दिनकी बात है कि वह राजा मित्रनन्दी सानन्द राज सिंहासनपर विराजमान
था उसी समय एक माली राज सभामें आया नमस्कार कर भगवान मुनिराज सुव्रत पधारे हैं। यह उसने
समाचार कहा। मालीके मुखसे वह उत्तम समाचार सुन राजा मित्रनन्दीको बड़ा आनन्द हुआ और वह भग-
वान मुनिराज सुव्रतकी बंदना करनेको चल दिया ॥२४६॥ समवसरणमें जाकर भगवानकी उसने तीन प्रदक्षिणा
दीं पूजा की एवं भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनके सामने बैठ गया। भगवान जिनेंद्र संसारकी अनित्यता आदि
बतलाते हुये इस प्रकार कहने लगे—हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार वरफका ढेला देखते देखते पिघल कर पानी हो
जाता है उसी प्रकार शरीर द्रव्य सुख धान्य जोवन और जीवन ये सारे क्षण विनाशीक है—नित्य न रहकर
ये नियमसे नष्टहो जाने वाले हैं ॥ २४८ ॥ ये समस्त स्त्रियां जो रात दिन अपने पतियोंको रंजायमान करतीं
रहतीं हैं महामतलबिन हैं क्योंकि कारणके बिना संसारमें नियमसे कार्यका अभाव रहता है। बिना मतलबके
स्त्री आदि कोई भी अपने नहीं होते ॥ २४९ ॥ जो मनुष्य 'यह मेरा है यह मेरा है' ऐसा रात दिन रटते रहते
हैं वे मनुष्य महानीच हैं। संसारमें मेरा मेरा कहनेसे उन्हें नरक आदि गतियोंमें घूमना पड़ता है और पद पदपर
उन्हें अनेक प्रकारकी विपत्तियां उठानी पड़ती हैं। क्योंकि जिन धन स्त्री शरीर और बालकोंके अन्दर "ये मेरे
हैं ये मेरे हैं" ऐसा कहा जाता है वे अस्थिर हैं क्षणविनाशीक हैं इसलिये वे किसीके नहीं हो सकते जहां आंखें
बंद हुई—मृत्यु शय्यापर सोये वहां पर ये कोई भी अपने आगे नहीं दीख पड़ते सब यहांके यहीं रह जाते हैं
॥ २५१ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार काष्ठके अन्दर अग्नि विद्यमान रहती है उसी प्रकार इस अपने शरीरमें ब्रह्म—

अद्वैत है—अखण्ड स्वरूप है एवं परमानन्द
परमात्मा है जो कि सम्यग्दर्शन आदिका स्थान है मोक्षस्वरूप है अद्वैत है—अखण्ड स्वरूप है एवं परमानन्द
मयी हैं। उस ब्रह्मको शाश्वत—नित्य मान कर भी जो निर्वेदी तपस्वी पुरुष कमलके पत्तेपरकी जलकी बूंदके
समान चञ्चल बने रहते हैं। परब्रह्मके स्वरूपके अन्दर मनको स्थिर नहीं करते वे मनुष्य इस संसाररूपी समुद्रमें
गिरते हैं और उसीमें डूबते उछलते रहते हैं॥ २५३ ॥ जो महानुभाव उत्तम ध्यानरूपी महलके अन्दर निवास
करनेवाले हैं 'अलीनोऽघे' पाप वासनाओंसे बहिर्भूत है। "अघारिसस्थितः" पापोंके बैरी—उत्तम, मार्गपर स्थिर
रहनेवाले हैं वे पुरुष जिस प्रकार बिलास रसमें लीन पुरुष कुछ सुखका अनुभव करता है उसी प्रकार वे मोक्ष
स्थानके सुखका आस्वादन करते हैं॥ २५४ ॥ जो मनुष्य धर्म मार्गपर आरूढ़ हैं वास्तवमें तो उनके अन्तरंग
मैलका नाश मन्त्र जाप—आत्मस्वरूपके चिंतवनसे होता है किंतु मन्त्र जापसे भिन्न वाह्य क्रियायें भी उस
मलके नाश करनेमें कारण पड़तीं हैं उनको बिना आचरण किये भी वह अन्तरंग मल नष्ट नहीं हो सकता
अर्थात् आत्मस्वरूपका चिंतवन तो अंतरंग मलके विनाशमें अंतरंग कारण है और मुनिलिंगके योग वाह्य
क्रियामें वाह्य कारण है इसलिये अंतरंग वाह्य दोनों प्रकारके कारणोंसे अंतरंग मलका नाश होता है॥ २५५ ॥
जो महानुभाव अपनेको योगी मानकर भी निंदित वाह्य क्रियाओंके आचरण करनेवाले हैं वे नियमसे अधोगति-
नरक गतिके पात्र हैं किंतु जो शास्त्रानुसार वाह्य क्रियाओंका आचरण करने वाले हैं उन्हें ही उत्तम गतिकी
प्राप्ति होती है इसलिये जो महानुभाव मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उहें किसी प्रकारका घमण्ड आदि न कर
चित्तमें शांति रखकर ही शास्त्रानुसार वाह्य क्रियाओंका आचरण करना चाहिये॥ २५६ ॥ इस प्रकार भगवान
मुनिसुब्रतके मुखसे धर्मका उपदेश सुन राजा मित्रनंदीको संसार शरीर भोगोंसे वेराग्य हो गया एवं संसारको
अत्यन्त दुःखदायी जानकर वह उन्हीं भगवान मुनिसुव्रतके चरण कमलोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित हो गया
॥ २५७ ॥ वे आनन्दस्वरूप मित्रनन्दी नामके मुनीश्वर बहुत प्रकार तप करने लगे। दो दो मास और तीन तीन
मासोंके उपवासोंका नियम ग्रहण करने लगे एवं पर्वतकी गुफा आदि एकांत स्थानपर उन्होंने अपना निवास-
स्थान बनाया॥ २५८ ॥ जिस प्रकार सहस्रधात्मा—सूर्य, तपः प्रतापसत्तेजाः संताप प्रताप और उत्तम तेजका
धारक होता है उसी प्रकार वे मुनिराज मित्रनन्दी भी तपके प्रतापसे प्राप्त जो उत्तम कांति थी उससे शोभाय-
मान थे। जिस प्रकार सूर्य 'स्वरूपाक्रांत भूधरः' अपने तेजसे पर्वतोंकी शिखर जगमगा देता है उसी प्रकार वे
मुनिराज भी अपनी कीर्तिसे समस्त पृथ्वी तलको व्याप्त करने वाले थे। जिस प्रकार सूर्य 'ऋषिकृतसंस्तुति'
भी अनेक ऋषियोंसे

ऋषि नामके नक्षत्रोंसे स्तुति किया गया माना जाता है उसी प्रकार वे मुनिराज मित्रनन्दी भी अनेक ऋषियोंसे स्तुत थे—बड़े २ ऋषिगण उनकी स्तुति करते थे ॥ २५६ ॥ राजा वे मुनिराज मित्रनन्दी "राजेवराजते" राजा लक्ष्मीवान, इव कामदेव और राजतचांदी सोने आदि पदार्थोंके अन्दर राजराजेतराजवत् राजराज कुबेर और उससे भिन्न अज—स्वयम्भूके समान थे अर्थात् जो मनुष्य उनके भक्त थे और जो उनके भक्त नहीं थे उनमें वे समान बुद्धिके धारक थे—कुवेरके समान सबको अच्छा समझते थे अथवा स्वयंभू भगवानके समान किसीमें भी राग द्वेष नहीं रखते थे तथा 'राजाराजनराजवत्' जो मनुष्य राजा थे और जो अराज अर्थात् जिनके राजा की विभूति न थी ऐसे राजासे भिन्न थे उनके आज समूहमें वे मुनिराज अपनी दृष्टि नाराज तिरस्कार रूप रखते थे अर्थात् राजा और रंक दोनों ही को वे समान मानते थे—कर्मजनित होनेसे दोनोंको ही कल्याणकारी नहीं समझते थे ॥ २६० ॥ वे मुनिराज कृश शरीरके धारक थे। आलस्यसे रहित थे। ध्यानी थे और मौनी थे, अन्त समय उन्होंने समाधि पूर्वक सन्यासके द्वारा अपने प्राणोंका त्याग किया और वे सर्वार्थसिद्धि नामके उत्तम विमानमें जाकर उत्पन्न हो गये ॥ २६१ ॥ वह मित्रनन्दी मुनिराजका जीव अहमिन्द्र तेतीस हजार वर्षोंके बीत जानेपर अत्यन्त सुगन्धित बहुत थोड़ा आहार करता था एवं तेतीस हजार पखवाड़ोंके बीत जानेपर उसास लेता था जो उसास कपूरके समान सुगन्धित होता था ॥ २६१ ॥ उस सर्वार्थसिद्धि विमानके अन्दर उस अह-मिन्द्रको मोक्षके निराकुलता और निरहंकाररूप सुखसे कुछ ही कम सुख था क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानसे मोक्षस्थान केवह बारह योजनोंकी ही दूरी पर था।

इसी पृथ्वीपर एक द्वारवती नामकी प्रसिद्ध नगरी है जो कि धन आदिसे अत्यन्त शोभायमान है। उसका पालन करनेवाला भद्रनामका राजा था जो कि शत्रुओंको भय प्रादन करने वाला था उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था जो कि उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी। सोनेके समान लोगोंको वर्णकी धारक थी अत्यन्त रूपवती थी एवं शोभामें कामदेवकी स्त्री रतिकी उपमा धारण करती थी ॥ २६५ ॥ एक दिन वह अपने मनोहर महलमें सानन्द सो रही थी कि रात्रिके पश्चिम प्रहरमें उसे कल्याणकी सूचना देनेवाले कुछ शुभ स्वप्न दीख पड़े ॥२६६॥ सबसे पहिला स्वप्न उसने हाथीका देखा जो कि अत्यन्त उन्नत था। उसके गंडस्थलोंसे मद झरता था और चांदनीकी प्रभाके समान शुभ्र था। दूसरे स्वप्नमें उसने समुद्र देखा जिसकी चञ्चल तरंगे ऊपरको उठ रही थीं। जिसके अन्दर रहनेवाले रत्न स्पष्ट रूपसे दीख पड़ते थे एवं जो मनोहर था। तीसरे स्वप्नमें अपने चिन्हसे

शोभित पूर्ण चन्द्रमा देखा एवं चौथे स्वप्नमें मुखमें प्रवेश करता सिंह देखा। जिस समय रानी सुभद्रा इन चारों स्वप्नोंको देख चुकी प्रातःकालमें बजने वाले बाजोंके मनोहर शब्दोंसे उसकी नींद खुल गई। प्रातःकालकी नित्यक्रियाओंके समाप्त हो जानेके बाद अपने पति राजा भद्रके पास आई और अपने स्वप्न कहकर उनका फल जाननेके लिये अपनी इच्छा प्रकट करने लगी। राजा भद्र निमित्त ज्ञानी थे इसलिये निमित्त ज्ञानके बलसे वह इस प्रकार उन सभी प्रश्नोंका उत्तर देने लगे—तपे सुवर्णके समान कांतिके धारक प्रफुल्लित नेत्रवाली हे प्रिये ! तुम्हें जो स्वप्न दीख पड़े हैं उन स्वप्नोंका फल यह है कि तुम्हारे शत्रुओंके मानका मर्दन करनेवाला और अत्यन्त बुद्धिमान पुत्र पैदा होगा ॥ २७० ॥ तुमने जो स्वप्नमें हाथी देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र वंशका उद्धार करनेवाला होगा। सागरके देखनेसे वह गुणोंका सागर होगा। चन्द्रमाके देखनेसे केवल ज्ञान का धारक और सिंहके देखनेसे वह सिंहके समान अत्यन्त पराक्रमी होगा ॥ २७१ ॥ राजा भद्रके मुखसे इस प्रकार स्वप्नोंका फल सुन रानी सुभद्राको अपार आनन्द हुआ। वह अपने राज महल लौट आई एवं जिस प्रकार निर्धनको चिन्तामणि रत्नकी प्राप्तिसे परमानंद प्राप्त होता है उसी प्रकार भावी पुत्रकी प्राप्तिसे रानी सुभद्रा भी परम आनंदका अनुभव करने लगी ॥ २७२ ॥

मुनिराज मित्र नन्दीका जीव जो सर्वार्थसिद्धि विमानके अंदर जाकर अहमिंद्र हुआ था अपनी आयुके अंतमें वह वहांसे चला एवं तीव्र पुण्यके उदयसे वह चंद्रमाके समान उज्वल रानी सुभद्राके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया ॥ २७३ ॥ क्योंकि रानी सुभद्राका गर्भ एक पुण्य गर्भ था इसलिये उस पवित्र गर्भके द्वारा उसे रंचमात्र भी पीड़ा न थी किंतु कलाकांति और यशसे व्याप्त वह प्रतिबिम्बयुक्त दर्पणके समान शोभायमान थी। अर्थात् वह सुभद्रा दर्पणके समान उज्ज्वल थी और उसका गर्भ दर्पणमें पड़नेवाले प्रतिबिम्बके समान निर्मल था इसलिये उस गर्भसे उसे कुछ भी कष्ट न था ॥ २७४ ॥ जब नौ मास पूरे हो गये उस समय रानी सुभद्राने अत्यन्त सुन्दर बालकको जना और उसका नाम धर्म रक्खा गया जो कि बलभद्र पदका धारक था ॥२७५॥ जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक स्रावस्ती नामकी उत्तम नगरी है जो कि अनेक सुखोंकी स्थान है। स्वर्ग-पुरीके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाली है। उत्तमोत्तम वेषोंकी धारक स्त्रियोंके मुखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान है। उत्तमोत्तम महलोंसे देदीप्यमान है एवं कामदेवके समान उज्ज्वल जलोंसे परिपूर्ण तालावोंसे व्याप्त है ॥२७७॥ स्रावस्ती नगरीका स्वामी राजा सुकेतु था जो कि इच्छानुसार परिपूर्ण भोग भोगने

बाला था। दानी था। पूर्णरूपसे प्रजाकी रक्षा करनेवाला था। बैरियोंका नाश करनेवाला और प्रजाके कष्टोंका
हरनेवाला था ॥ ५७८ ॥ अनेक गुणोंका भण्डार भी वह राजा जुआ खेलनेका अत्यन्त शौकीन था। जुआमें
दत्तचित्त होकर वह सदा जुआ खेलता रहता था ठीक ही है किसी भी संसारी जीवमें सब गुण अनुकूल नहीं
रहते। गुणोंके साथमें कोई न कोई बलवान दोष भी अवश्य रहता है ॥ २७६ ॥ राजा सुकेतुको उसके हितैषी
और विद्वान मंत्रियोंने कई बार जुआ खेलनेसे रोका था परन्तु उसने जुआ खेलना बन्द नहीं किया था ठीक ही
है जिस मनुष्यको जिस बातका स्वाद पड़ जाता है वह जल्दी छूट नहीं सकता ॥ २८० ॥ राजा सुकेतुका एक
बलवान शत्रु अन्य राजा था अशुभ कर्मके उदयसे राजा सुकेतुने उसके साथ जूआ खेलना प्रारम्भ कर दिया।
यद्यपि उसके हितैषी मंत्रियोंने उसे बहुत रोका परन्तु वह मूर्ख न माना ठीक ही है जब विनाश काल आकर
उपस्थित हो जाता है तब अनुकूल बुद्धि भी उसके विपरीत हो जाती है पाप कर्मके प्रबल उदयसे राजा सुकेतुने
क्रम क्रम कर धन देश सेना पटरानी सब हार दिया विशेष क्या जो उसके तनपर वस्त्र था जुआमें वह उसे भी
हार चुका बस उसके पास केवल शरीर रह गया उससे राजा सुकेतुका मुख फीका पड़ गया और वह सर्वथा
पराक्रम रहित हो गया। जिस समय राजा सुकेतुकी यह हीन दशा हो गई उस समय उसके बैरी राजाने
सुकेतुसे इस प्रकार कहा—जो पुरुष अपने मनकी रक्षा करनेवाले होते हैं। गुणीं और उत्तम वंशके होते हैं
तथा आगम और शास्त्रोंके ज्ञाता होते हैं वे अपनी ही भूमिमें निवास करते हैं अन्यकी भूमिमें निवास नहीं
करते। राजा सुकेतु ! तुम मानी धनी छत्रशाली और क्षत्रियोंके भूषण पुरुष रत्न माने जाते हो जब जूआमें
तुम पृथ्वीको हार चुके और वह दूसरेकी हो चुकी तब गूंगेके समान तुम इस पृथ्वीपर क्यों रह रहे हो ? तुम्हें
अब इस पृथ्वी पर कदापि नहीं रहना चाहिये ॥ २८५ ॥ अपने शत्रु राजाके ऐसे बचन राजा सुकेतुको वाणके
समान चुभ गये। हाथसे सब चीजोंके चले जानेसे वह विक्षिप्त चित्त हो गया और शीघ्र ही बनकी ओर चल
दिया ॥२८६॥ बनके अन्दर उस समय सुदर्शन नामके मुनिराज विराजमान थे। पुण्यके उदयसे राजा सुकेतु
को उनका दर्शन हो गया। उसके मुखसे उसने शास्त्रका रहस्य समझा। उसके चित्तमें एकदम संसार शरीर
भोगोंसे वैराग्य हो गया। शीघ्र ही उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। अनेक प्रकारके घोर तपोंके तपनेके
कारण उसका सारा शरीर कृश हो गया। देश और द्रव्य आदिके चले जानेसे उस समय यद्यपि उसका चित्त
सर्वथा मलिन न था बहुतसी मलिनता मिट चुकी थी तथापि विद्वान भी वह पापके तीव्र उदयसे आयुके अन्त

समयमें नितान्त मूर्ख हो गया और बहुत काल पर्यंत तपके तपे जानेपर भी उसने यह निन्दित निदान बांधा—
मैं जो यह तप कर रहा हूँ उसका फल मुझे यह मिलना चाहिये कि मैं पर जन्ममें अनेक कला और गुणों-
का भण्डार हों। मेरे बहुतसे सैन्यकी प्राप्ति हो और शत्रुओंका समुदाय मुझे जीत न सके। बस अंत समयमें
उस सुकेतु नामके मुनिने सन्यास पूर्वक अपने शरीरका त्याग किया लांतव नामके स्वर्गमें जाकर देव हो गया।
चौदह सागर प्रमाण उसने आयु पाई और नाना प्रकारके सुख वहां पर भोगने लगा। द्वाराबतीके स्वामी राजा
भद्रकी एक दूसरी रानो पृथ्वीमती थी वह अपने गर्भ गृहमें सो रही थी कि एक दिन रात्रिके पिछले प्रहरमें उसे
स्वप्न दीख पड़े। पहिले स्वप्नमें उसे सूर्य दीख पड़ा। दूसरेमें चंद्रमा, तीसरेमें लक्ष्मी, चौथेमें विमान, पांचवेंमें
समुद्र, छठेमें इंद्रधनु और सातवेंमें सिंह दीख पड़ा। सातो स्वप्नोंके देखनेके बाद उसकी नींद खुल गई। प्रातः
कालकी नित्य क्रियाओंको समाप्त कर वह अपने स्वामी राजा भद्रके पास आई और सारे स्वप्नोंको निवेदन कर
उनके फल जाननेकी अभिलाषा प्रगट करने लगी ॥२९२॥ उत्तरमें राजा भद्रने कहा—हे कमलोंके समान नेत्रों-
से शोभायमान प्रिये! तुमने जो स्वप्नमें सूर्य आदि देखे हैं उनका फल यह है कि तुम्हारे एक अद्वितीय पुत्र
होगा जो कि संसारमें अत्यंत प्रतापी होगा। समस्त लोगोंके चित्तोंको आनंदित करेगा। तीन खण्डकी विभू-
तिका धारक अर्धचक्री होगा। स्वर्गसे चयकर वह तुम्हारे गर्भमें अवतरेगा। अत्यंत धीर गम्भीर होगा एवं
अत्यंत पराक्रमी होगा। बस राजा भद्रके मुखसे ये आनंद प्रदान करनेवाले बचन सुन रानी पृथिवीमतीको बड़ा
आनंद हुआ और संतुष्ट हो वह अपने महलको लौट गई ॥२९४॥ कुछ दिन वाद राजा सुकेतुका जीव वह देव
भी रानी पृथिवीमतीके चंद्रमाके समान निर्मल गर्भमें अवतीर्ण हो गया। संसारमें स्वयंभू नामसे उसकी प्रसिद्धि
हुई और अनेक पुत्रोंके रहते भी वही सबोंको प्रिय लगने लगा ॥ २९५ ॥ वह कुमार स्वयंभू कामदेवके समान
रूपवान था। जीव नामक विद्वानके समान बुद्धिमान था। दिनों दिन बाल चंद्रमाके समान बढ़ता था। अनेक गुणों
का भंडार था एवं उत्तमोत्तम लक्षणोंसे विभूषित शरीरका धारक था ॥२९६॥ वह धर्म नामका बलभद्र और स्वयंभू
नामका नारायणदोनों ही आपसमें अत्यंत प्रेम रखनेवाले थे इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानों विधाताने इनकी
रचना प्रेम स्वरूप ही की है ॥२९७॥ अनेक प्रकारकी लीलाओंसे शोभायमान शरीरोंके धारक वे बलभद्र और
नारायण सानंद राज्यका भोग भोगने लगे। वे अनेक सभ्य पुरुषोंसे सदा वेष्टित रहते थे इसलिये ऐसे जान पड़ते
थे मानों अनेक ताराओंसे व्याप्त ये साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा ही हैं ॥२९८॥ सुकेतुकी पर्यायमें जिस बली शत्रु

राजाने जूआमें राजा सुकेतुका जबरन राज्य छीन लिया था वह रत्नपुरमें मधु नामका राजा हुआ था ॥ २९९ ॥ वह राजा मधु प्रतिनारायण था इसलिये तीन खण्डको सम्पदा पाकर वह सुख पूर्वक रहता था और शत्रुओंका अगम्य था कोई भी शत्रु उसे जीत नहीं सकता था। वह राजा मधु रणमें पर्वत सरीखे उन्नत शत्रु राजाओंको लीलामात्रमें नष्ट भ्रष्ट करनेवाला था एवं अग्नि जिस प्रकार बड़े बड़े पर्वतोंको ढाह देती है उसी प्रकार वह राजा मधु भी समस्त संसारके राजाओंके हृदयोंमें जाज्वल्यमान अग्निके समान विद्यमान था अर्थात् समस्त राजा सदा उससे भयभीन रहते थे ॥ ३०१ ॥

एक दिनकी बात है कि किसी मधुके आज्ञाकारी राजाने मधुके लिये घोड़ा रत्न आदि अनेक पदार्थोंकी भेंट भेजी थी। जो लोग भेंट ले जानेवाले थे दैवयोगसे नारायण स्वयंभूकी उनसे भेंट हो गई। तेजस्वी और अभिमानी राजा स्वयंभूने शीघ्र ही उन भेंट ले जाने वालोंसे प्रश्न किया कहो भाई! तुम जो भेंट ले जा रहे हो वह किसकी है! एवं किसके लिये और कहां ले जा रहे हो? उत्तरमें उन भेंटकी रक्षा करनेवालोंने कहा—कृपा नाथ! सुनिये हम बतलाते हैं। हमारे स्वामी राजा देवसेन हैं। शत्रुओंको बिदारद करनेवाले महाराज मधुके वे सेवक हैं उन्होंने राजा मधुके लिये यह उत्तम भेंट भेजो है। इसे हम राजा मधुको सेवामें ले जा रहे हैं बस, राजा मधुका नाम सुनते ही पूर्व बैरके सम्बंधसे राजा स्वयम्भूकी आत्मा क्रोधसे व्याकुल हो गई। बैरियोंके मानको मर्दन करनेवाले नारायण स्वयम्भूने उन सबके हरण करनेके लिये पक्का विचार कर लिया। शीघ्र ही उसे उसने बाण तूणीरसे बाहिर निकाल लिया और इस रूपसे चलाया कि हाथीको छेद्कर सात ताल उसने भेद डाले। जिस समय धनुषसे बाण जुदा हुआ था उस समय उसका इतना घोर शब्द हुआ था कि समस्त लोग कंपित हो गये थे एवं ऐसा भयंकर कोलाहल हुआ था कि मनुष्योंको यह जान पड़ने लगा था कि प्रलय कालका समुद्र आकर प्राप्त हो गया है उसीका यह कोलाहल है ॥ ३०८ ॥ नारायण स्वयम्भूकी यह क्रोध परिपूर्ण चेष्टा देख यद्यपि बलभद्र धर्मने वैसा न करनेके लिये बहुत प्रकारसे रोका था परन्तु जिस प्रकार सर्पको छेड़नेसे वह और भी भयंकर हो जाता है उसी प्रकार महा भयंकर सर्पके समान नारायण स्वयम्भूका क्रोध और भी उबल गया और उस भेंटकी रक्षा करनेवाले मनुष्योंको मारनेके लिये वह उद्यत हो गया अपने छोटे भाई स्वयंभूको इस प्रकार चंचल और निन्दित कार्य करते देख बलभद्र धर्मने कहा—कामदेवके समान रूपवान् भाई? तुम मेरी बात सुनो—संसारमें यह सब सर्व जन प्रसिद्ध है कि जो पुरुष दुष्ट होता है क्रूर अज्ञानी हीनजाति

और नीच होता है वह भी दूतको मारकर लक्ष्मीका हरण नहीं करता। तुम निश्चय समझो जिस प्रकार भूखसे अत्यन्त व्याकुल भी हंस कुक्कुट-मुर्गेके समान कीड़ोंको नहीं खाता किन्तु मोतियोंको ही खाता है उसी प्रकार जो पुरुष सज्जन हैं उनपर कितनी भी विपत्ति क्यों न आकर पड़ जाय वे कभी भी पापजनक कार्य नहीं कर सकते ॥ ३१२ ॥ लक्ष्मीकी तुम्हारे ऊपर इतनी भारी कृपा है कि वह अकेले तुम्हींको अपना स्वामी मान कर प्रेमपूर्वक तुम्हारी सेवा करती है तथा तुम्हारे गुणोंमें वह इतनी अनुरक्त है कि तुम्हें छोड़कर वह दूसरी जगह नहीं जाना चाहती। भाई ! संसारमें वे ही तो शूर वीर और वे ही विचार शील दानी धनी मानी रूपवान और धीर वीर हैं जो कि किसी भी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते ॥ ३१४ ॥ जो सिंह अंजन पर्वतके समान हाथियोंके मांसको प्रेमपूर्वक खानेवाला है अर्थात् मत्त हाथियोंका विदारण करनेवाला है क्या वह मत्त भी शृगालको मारनेका प्रयत्न करता है ? कभी नहीं ॥ ३१५ ॥ भाई जो राजा उत्कट मानी है उत्तम मर्यादाके पक्षपाती हैं उनके द्वारा आजतक कभी भी दूतको मारा हुआ नहीं सुना। तुम भी उत्तम मर्यादाके पक्षपाती पुरुष हो तुम इस भेंटके रक्षक दूतके मारनेके इच्छुक क्यों हो ! तुम्हें भी कभी भी इस दूतको नहीं मारना चाहिये। विशेष क्या जातुधाक—राक्षस जो कि सदा मांसको खानेवाला है वह भी कभी दूतको नहीं मारता। मैं इसके संबंध की तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—भांति भांतिके रत्नोंकी खानियोंसे शोभायमान इसी जंबू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक चम्पा नामकी विख्यात पुरी है जो कि दानियोंसे शोभायमान है। किसी समय उसका रक्षण करनेवाला राजा महासेन था जो कि सुन्दरतामें कामदेवकी तुलना करता था। कमलके समान विशाल नेत्रोंका धारक था उसकी पटरानीका नाम मदनवेगा था जो कि एक अद्वितीय सुन्दरी थी और उसके सम्बन्धसे राजा महासेनकी भी अत्यंत शोभा थी ॥ ३१६ ॥ उसी समय विशाला पुरीमें एक चित्रकर्मा नामका नट रहता था उसने सुन रक्खा था कि राजा महासेन बड़ा दानी है इसलिये एक दिन चम्पापुरीमें वह राजा महासेनके पास आया और नाट्य कलाके अत्यन्त विद्वान उस चित्रकर्मा नामके नटने भांति भांतिके नाट्य रसोंसे उत्तमोत्तम भाव लय और तानोंसे राजा महासेनको प्रसन्न कर दिया ॥ ३२१ ॥ राजा महासेन अत्यंत कृपण और निर्दयी था। वह चित्रकर्मा नामका नट बराबर छह मास तक चम्पापुरीमें ठहरा रहा और अपनी ही ओरसे भोजन आदिका खर्च उठाता रहा। राजाने कंजूसीके कारण एक पाई भर भी धन नहीं दिया ॥ ३२२ ॥ जब उस चित्रकर्मा नटके पास खाने पीनेको कुछ भी न बचा तब उसने राजा महासेनको दानकी शिक्षा देनी प्रारम्भ कर

और कुछ धन प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना भी की। नटकी बात राजाको अच्छी नहीं लगी इसलिये वह एकदम उसपर कुपति हो गया। बस रोषमें आकर शीघ्र ही उसने अपने सेवकोंको यह आज्ञा देदी इस नटके पास जों इसीका कुछ माल मसाला हो सब जबरन छीन लो और दुष्टको मार भगाओ॥ ३२४॥ राजाकी यह कठोर आज्ञा सुन यद्यपि सारी प्रजाको बहुत मानसिक दुःख हुआ था तथापि उस शांत परिणामी नटको शीघ्र ही नगरसे बाहिर निकाल दिया॥३२५॥ संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि जो पुरुष मानी हैं उनकी लक्ष्मी कुटुम्ब धन स्त्री शरीर और पृथिवी सब कुछ चला जाय—उनके चले जानेसे मानियोंको विशेष कष्ट नहीं होता परन्तु उनका अपमान नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार प्राणोंके बिना शरीर किसी कामका नहीं और भूषणोंके बिना बहुमूल्य वस्त्रोंकी शोभा नहीं उसी प्रकार चाहे पुरुष कितना भी भूषण वस्त्रोंका धारक हो एक मान बिना उस की शोभा नहीं—मानी पुरुषका मान ही भूषण है॥३२७॥ बस मान भंगसे जायमान दुःखसे व्याकुल चित्तका धारक वह नट चम्पापुरीसे निकलकर रैवतिक पर्वतपर पहुंच गया। किसी मुनिराजसे भेंट हो गई। नटने उपदेश प्राप्त किया और वहीं अपने प्राणोंका विसर्जन कर दिया॥३२८॥

चम्पापुरीमें ही एक धनेश नामका व्यापारी रहता था उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि रतिके समान परम सुन्दरी थी। सुगठित शरीरके अवयवोंकी धारक थी और कमलके समान विशाल नेत्रोंसे शोभायमान थी। वह नट मरकर इन्हींके मृगकेतु नामका पुत्र हुआ जो कि पूर्व पुण्यके उदयसे मनोहर अङ्गका धारक था। बड़ा अभिमानी अत्यन्त रूपवान और परम विद्वान था॥ ३३०॥ उसी नगरीमें एक मेघ नामका भी अत्यन्त धनवान पुत्र रहता था उसकी स्त्रीका नाम कायांकी था जो कि अपनी अनुपम सुन्दरतासे ऐसी जान पड़ती थी मानो यह किन्नरी है, वा नागकुमारी है। वह सेठानी कायांकी विशाल वक्षस्थलसे शोभायमान थी। महा मनोज्ञ स्तनोंकी धारक थी। सुन्दरता पूर्वक गमन करनेवाली थी। चकोरके समान नेत्रोंकी धारक थी और पूर्ण युवावस्थासे शोभायमान थी॥३३२॥ व्यापारी पुत्र मृगकेतुकी एक दिन कायांकी पर दृष्टि पड़ गई उसे देखते ही मृगकेतुका चित्त कामसे पीड़ित हो गया। निर्बुद्धिके चित्तमें सदा दुष्ट ही विचार हुआ करते हैं इसलिये वह अपने मनमें यह विचार करने लगा कि—यदि इस सुन्दरीके साथ संयोग नहीं हुआ तो मेरा जीवन धन महल मकान और सुख सारे व्यर्थ हैं ठीक ही दुष्ट चित्तमें प्रशंसाजनक विचार हो ही क्या सकते हैं! बस एक दिन वह सेठानी कायांकीके पास पहुंचा और उससे इस प्रकार कहने लगा—सुन्दरी! तुम विशाल स्तनोंसे

शोभायमान परम सुन्दरी हो मेरा हृदय कामाग्निसे प्रज्वलित हो रहा है तुम्हें मेरे ऊपर प्रसन्न होना चाहिये ॥३३५॥ सेठानी कायांकीकी मृगकेतुके साथ बिलकुल रमण करनेकी इच्चा न थी इसलिये मृगकेतुके बचन उसे कड़वे जान पड़े वह चुपचाप अपने घरमें घुस गई—मृगकेतुकी बातका उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। यद्यपि मृगकेतुने उसके राजी करनेके लिये बहुतसे उपाय किये परन्तु वे सब निष्फल ही हुए ॥३३६॥ ठीक ही है जो मूर्ख मनुष्य पूर्व भवके सम्बन्धके बिना ही जबरन किसीसे प्रेम करते हैं उन्हें उस प्रेमका फल मृत्यु ही मिलता है ऐसा बड़े बड़े विद्वानोंका मत है ॥ ३३७॥ जब मृगकेतुकी कुछ भी तीन पांच न चली तो वह सीधा राजाके पास गया और उससे इस प्रकार प्रिय बचनोंमें कहने लगा—महाराज ! सिंहल द्वीपमें एक महामनोज्ञ गंधिल नामका पक्षी रहता है वह यदि इस देशमें आ जाय तो बहुत हो अच्छा हो। उत्तरमें राजाने कहा वह पक्षी यदि यहां आ जाय तो उससे क्या प्रयोजन सटेगा? इसके उत्तरमें मदांध मृगकेतुने कहा—प्रभो ! जिस राष्ट्र घर और राज्यमें वह उत्तम पक्षी रहता है वहां कभी भी दुर्भिक्ष न होकर सदा सुभिक्ष रहता है और अहितका नाश होता है। मृगकेतुकी यह कौतुक भरी बात सुन राजाने कहा—भाई मृगकेतु ! उस पक्षीकी प्राप्ति होगी कैसे ? बस कामा और काम पीड़ित मृगकेतुने जब राजाकी यह लालसा देखी तो उसे बड़ा आनन्द हुआ और वह इस प्रकार कहने लगा—राजन् ! आपकी राजधानीमें एक मेघ नामका सेठ रहता है जो कि एक उत्तम वंशका है। समस्त पृथिवीके मनुष्योंमें वही सिंहलद्वीप जानेकी सामर्थ्य रखता है अन्य कोई नहीं आप उसे अवश्य भेज दीजिये ॥३४२॥ राजाकी आज्ञा अनिवार्य होती है। मृगकेतुकी बात पर विश्वास कर राजाने शीघ्रही मेघको राजसभामें बुलाया और आग्रह कर सिंहलद्वीप भेज दिया। जब श्रेष्ठी मेघ नगरसे प्रयाण कर गया तब काम पीड़ित मृगकेतु शीघ्र ही उसके घरकी ओर चल दिया और निर्भय हो घरमें प्रवेश कर गया ॥३४३॥ सेठानी कायांकी पूर्ण प्रतिव्रता था इसलिये मृग केतुको देखकर अन्तरङ्ग तो उसका क्रोधसे भवक गया परन्तु उस समय क्रोध करनेमें चतुरता न समझ ढंग बदल कर मृगकेतुका उसने स्वागत किया और ठंडे बचनों-में इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! आइये आपने बड़ी कृपा की जो मुझ अभागिनीके घर आप पधारे तथा ऐसा कहकर उसने शीघ्रही एक घड़ा विष्टासे भरवा दिया। रस्सीसे बिना वुना एक पलङ्ग उसपर बिछवा दिया मनो-हर वस्त्रसे उसे ढकवा दिया और बड़े आदरसे सेठानी कायांकीने उसपर बैठनेके लिये मृगकेतुसे कहा। कामांध मृगकेतुको इस रहस्यके समझनेकी बुद्धि कहां थी वह शीघ्रही उस पलंगपर जा बैठा और नरकके समान दुःख-

दायी उस विष्टासे परिपूर्ण गढेमें जाकर पड़ गया ॥३४६॥ ठीक ही है चतुर लोग जिस चतुरताको करते हैं उस
चतुरताका हर एकको जल्दी पता नहीं लग सकता विशेष क्या जिनके अन्तरंग गम्भीर हैं वे जिस बातको करना
चाहते हैं उसे और की तो क्या बात, महान भी विद्वान बृहस्पति सूर्यदेव और इन्द्र भी नहीं जान सकते। ठीक
ही है जलमें रहनेवाली मछली कब और कैसे जल पीती हैं यह हर एक नहीं जान सकता। चञ्चल चमकीली
और देखनेमें सुन्दर भी विजली जिस प्रकार घोर अनर्थ कर डालती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी भड़कीली हँसी
हँसनेवाली चञ्चल और परम सुन्दरी दीख पड़ती हैं परन्तु चञ्चल चित्त पुरुषोंका ये घोर अनर्थ कर डालती
हैं। इन स्त्रियोंके चित्तोंमें क्या क्या चरित्र विद्यमान रहते हैं उन्हें औरकी तो क्या बात विद्वान देव और वनमें
रहनेवाले ऋषि मुनि भी नहीं जान सकते। कामी मृगकेतु जिस दिनसे उस गढ़ेमें पड़ा अनेक प्रकारके दुःखोंको
भोगता हुआ वह वहो पर पड़ा रहा एवं जिस प्रकार काकको टुकड़ा डाल देते हैं उसी प्रकार कायांकी जो उस
मूर्खको खानेको देती थी उसे ही वह खाता रहा और अपनी मृत्युके दिन व्यतीत करने लगा ॥३५१॥

राजाकी आज्ञासे श्रेष्ठी मेघको सिंहलद्वीप तो जाना पड़ा था परन्तु जब उसे वहांपर वह गंधिल 'पक्षी नहीं
मिला तो वह छठे महिने शीघ्र ही वहांसे वापिस आ गया। जिस समय वह अपने घर आया तो सेठानी
कायांकीने मृगकेतुका सारा बृत्तान्त अपने पति मेघसे कह सुनाया। वह सेठ एक विद्वान और विचारशील
व्यक्ति था इसलिये उसने मृगकेतुको अपने कियेका फल चखानेके लिये यह आश्चर्यकारी उपाय रचा—गढ़ेमें
पड़ा पड़ा पापी मृगकेतु चिन्ता और दुःखसे एकदम कृश और काला पड़ गया था। मेघने उसे बाहिर निकाला।
हरे वर्णके पंखोंसे और सिन्दूरसे उसके शरीरको सजाकर उसे चितकबरा बना दिया। नगरके ईशान कोनमें
उसे छोड़ दिया एवं राजाके समीप जाकर यह कहा—हे राजन्! मुझे जो गन्धिल पक्षीके लानेके लिये आज्ञा
दी गई थी वह गंधिल नामका विचित्र पक्षी मैंने ला दिया है और वह यह है ॥३५५॥ श्रेष्ठी मेघकी बात सुन
कर और मृगकेतुको देखकर नगरवासी समस्त सभ्य लोग स्त्रियां राजा और मन्त्री आदि समस्त जन ताली
पीट पीट कर हँसने लगे और खिल्ली उड़ाने लगे। व्यापारी धनेशके पुत्र मृगकेतुको कुपुत्र समझकर राजाने उसे
बहुत दण्डित किया और राजधानी एवं देशसे बाहिर निकाल दिया। ठीक ही है जिसका भाग्य अच्छा नहीं
होता वह निन्दित तप और निन्दित ही आचरण करता है। पूर्व बैरके सम्बन्धसे मृगकेतुने नगरके बिनाश-
का निदान बांध लिया जिससे मरकर वह राक्षस हो गया जो कि तीव्र डाढोंका धारक था। हड्डियोंका हार

धारण करता था। सदा उसका मुख क्रोधसे लाल रहता था। जीवोंको भयभीत करनेवाला था और निर्दयी
था। वह दुष्ट राक्षस चम्पापुरीके बाह्य बनमें रहने लगा और नगरके समस्त लोगोंको खाने लगा। राक्षसकी
यह निर्दयता परिपूर्ण चेष्टा देखकर नगरनिवासी लोगोंको बड़ी आकुलता हो गई। राक्षसके भयसे न वे खाही
सके न पीही सके और न कहीं बाहिर जाही सके। ठीक है मृत्युका भय सहा नहीं जाता। मृत्युका नाम सुनते
ही हृदय थरथरा निकलता है ॥३६०॥ राक्षसके द्वारा जब नगर निवासियोंका क्षय होने लगा तब राजाको बड़ी
चिन्ता हुई और अनेक तर्कवितर्कोंके साथ उसने यह निश्चित कर दिया कि यदि वह राक्षस यह बात स्वीकार
कर ले कि अपनी इच्छानुसार वह किसी भी मनुष्यको न मारे और नगरमें आकर श्मशान भूमिमें ही पड़ा रहे
तो हम उसको प्रति दिन एक एक मनुष्य भेज सकते हैं। बस ऐसा विचार कर राजाने शीघ्रही दूत बुलाया
और उस राक्षसके पास भेज दिया ॥ ३६२ ॥ दूतको अपने पास आता देख राक्षस मारे क्रोधके भवल गया
उसके दोनों नेत्र लाल हो गये। अनेक प्रकारके दुर्वाक्य कहने लगा और उठकर दूतको खानेके लिये तैयार हो
गया। राक्षसकी यह क्रूर चेष्टा देखकर दूतने कहा—दैत्यराज ! मैं महा दुःखी हूँ मुझे मत खाइये मेरी बात सुन
लीजिये। मैं चम्पापुरीके राजाका दूत हूँ। राजाकी बात निवेदन करनेके लिये आपके पास आया हूँ। दूतकी
यह बात सुन जिस प्रकार सभ्य किसी बातका सरलतासे विचार करता है उसी प्रकार वह राक्षस अपने मनमें
यह बिचार करने लगा। दूतको मारना न्याय विरुद्ध है यदि मैं इस दूतको मार डालूंगा तो मुझे गुरु हत्याका
दोष लगेगा ॥३६५॥ बस ऐसा पूर्ण विचार कर राक्षसने दूतसे कहा—भाई दूत ! तुम मेरे सामनेसे जा सकते
हो मैं तुम्हें नहीं मार सकता। इस प्रकार बलभद्र धर्मने दृष्टांत देकर स्वयंभूको समझाया और यह कहा भाई !
पूर्व बैरके सम्बन्धसे राक्षसने उस पुरको जनशून्य बना दिया था इसलिये तुम्हारे प्रति मेरा यही कहना है कि
तुम संसारमें एक यशस्वी मानी पराक्रमी गुणी और गंभीर माने जाते हो तुम सरीखे महा पुरुषको राजा मधुके
दूतोंको न मारना चाहिये। भाई ! विचारा दीन श्रृगाल जो कि अपने मार्ग पर चल रहा है उसे बड़े बड़े
हाथियोंके मदको चूर करनेवाले केहरीने मारा हो यह बात आजतक कहीं भी देखी सुनी नहीं गई है। तुम बड़े
बड़े राजाओंके मानको मर्दन करनेवाले हो तुम्हें इन दीन दूतोंको कभी नहीं मारना चाहिये। क्रोधी स्वयंभू कब
किसीकी बात सुननेवाला था। अपने बड़े भाई धर्मको बातका स्वयंभूने कुछ भी आदर नहीं किया। देखते
देखते दोनों दूतोंको मार डाला और दोनोंसे जो कुछ भी उनके पास मधुके लिये भेंट थी सब छीन ली। ठीक

ही है मदोन्मत्त क्या क्या अनर्थ नहीं कर डालते ॥३६९॥ संसारमें जो मनुष्य शास्त्रज्ञ हैं। बलशाली हैं। सज्जन हैं। विचार पूर्वक कार्य करनेवाले हैं और धीर वीर हैं वे समस्त लोकके आदरके पात्र होते हैं ॥३७०॥ दूतों के मारे जानेके बाद नारायण स्वयम्भूका क्रोध शांत हो गया। वे दोनों भाई बलभद्र और नारायण अपने राज महलों में रहने लगे। प्रीतिपूर्वक राज्य सुख भोगने लगे एवं भोग बिलास रूपी समुद्रमें एकदम मग्न हो गये ॥ ३७१ ॥

एक दिनकी बात है कि अर्धचक्री राजा मधु अनेक राजाओंसे परिपूर्ण राजसभामें बैठे थे उस समयकी उनकी लोकोत्तर शोभा थी। उन्हें देख लोगोंको यह जान पड़ता था कि यह साक्षात् सूर्य हैं वा चन्द्रमा हैं ॥ ३७२ ॥ राजा मधुको उस समय एक विमान दीख पड़ा जो कि बिजलीके समान सुन्दर प्रभाका धारक था। मनोज्ञ आकारसे शोभायमान और नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त था। इस प्रकार अद्वितीय शोभासे शोभित विमानको देखकर राजा मधुके चित्तमें सहसा यह विचार उदित हो गया कि यह बिजलीका प्रतिबिंब है वा चन्द्रमा वा सूर्य है अथवा वैडूर्य मणिसे शोभायमान यह मेरु पर्वतका पाषाण है। उस विमानके मध्य भागमें नारद ऋषि दीख पड़े जो कि विशाल शरीरके धारक थे। देवताओंके ऋषि थे श्याम सुन्दर थे और सुवर्णमयी जटाओंसे शोभायमान थे नारद मुनिको देखकर राजा मधु शीघ्र ही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ। भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। बड़े आनन्दसे उनका स्वागत किया और भक्तिपूर्वक सिंहासनपर बिठाया ठीक ही है जो सज्जन पुरुष हैं उनके कुलक्रमकी यही रीति है ॥ ३७६ ॥ उचित शुश्रूषा जब समाप्त हो गई उस समय ऋषि नारदने राजा मधुके राज्यकी और शरीरकी कुशल पूछी। कुछ देरतक शांत होकर वे बैठे रहे पीछे कौतु-हलसे इस प्रकार कहने लगे—प्रिय मधु! अति दुष्टतासे स्वयम्भूने, सुनते ही दुःख उत्पन्न करनेवाला जो तुम्हारे साथ घमंडपूर्वक कौतिक किया है उसे मैं सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो। तुम्हारे लिये भेंट लेकर दो दूत आ रहे थे। दैवयोगसे स्वयम्भूसे उनकी भेंट हो गई। उन्हें तुम्हारे दूत जान स्वयम्भूके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। बलभद्र धर्मने उसे बहुत रोका परन्तु उसने एक न सुनी तुम्हारे दोनों दूतोंको मार डाला एवं सर्पके समान महा भयंकर स्वयम्भूने उनका सारा धन छीन लिया। वह राजा स्वयम्भू इन्द्रके समान क्रीड़ा प्रेमी है। बृहस्पतिके समान विद्वान है। मेरु पर्वतके समान अचल है। समस्त पृथ्वीको अपने प्रतापसे उसने दबाकर रक्खा है तुम्हें तो वह तृणकी बराबर भी नहीं मानता ॥ ३८० ॥ क्रियाहीन भी नहीं मानता है अक्रियाहीन भी नहीं मानता है। अप्राग्धन भी नहीं मानता है प्राग्धन भी नहीं मानता है ऐसा कहनेसे विरोध सरीखा जान

पड़ता है इसलिये इसका तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रिया हीन है अर्थात् निष्क्रिय है—कृत कृत्य है उसे किसी
के माननेकी आवश्यकता न होनेसे वह भी किसीको नहीं मानत। तथा जो अक्रियाहीन है अर्थात् निन्दित क्रिया-
ओंको प्राप्त है वह उद्दण्ड है वह भी किसीको नहीं मानता है। जो महानुभाव अप्राग्धन है अपूर्व सम्पत्तिका
स्वामी है वह भी किसीको नहीं मानता क्योंकि कृतकृत्य होनेसे उसे किसीके आदरकी आवश्यकता नहीं रहती
तथा जो प्राग्धन है जिसको कुछ धन प्राप्त हो चुका है वह भी घमंडमें आकर किसीको कुछ नहीं पूछता इसलिये
वह भी किसीको मानना नहीं चाहता। यह तुम निश्चय समझो वह तुम्हारे सामने टिक नहीं सकता क्योंकि
तुम संसारमें एक प्रबल पराक्रमी हो जिस समय वह तुम्हारा सामना करेगा उस समय वह दुःखदायी अवस्था
को ही प्राप्त होगा ॥ ३८२ ॥ नारद मुनिसे ये अपने अपमान सूचक वचन सुनकर राजा मधुका हृदय क्रोधसे
प्रजल गया एवं जिस प्रकार आकाशकी गर्जना सुन केहरी गर्ज निकलता है उसी प्रकार राजा मधु भी बेहद
गर्जने लगा इस प्रकार जिसको कलह ही प्यारी है और आपसमें द्वेष कराकर जो मनुष्योंका संहार करानेवाले
हैं ऐसे नारद मुनि स्वयम्भू और मधु दोनोंमें द्वेषका अंकूर बोकर आकाशमार्गसे प्रयाणकर गये। अपने दूतोंका
इस प्रकार आश्चर्यकारी मरण सुन पहिले तो राजा मधुका शरीर कम्पायमान हो निकला पीछे हृदयको दृढ़कर वह
मन ही मन यह कहने लगा कि वह स्वयंभू दुष्ट है मैं उसे अवश्य मारूंगा इसलिये शीघ्रही उसके मारनेके लिये
सिंहासनसे उठ बैठा। राजा स्वयंभूको दुःखित बनानेके लिये उसने विशाल सेना तैयार करा ली एवं नगरमें भेरी
दिवाकर राजा स्वयम्भूके ऊपर चढ़ाई कर दी ॥३८६॥ राजा मधुकी यह चेष्टा देख अनेक मन्त्री उसके सामने
आये और कपाटके समान विशाल वक्षस्थलके धारक विशाल भुजाओंसे शोभायमान एवं खलबलाते हुए समुद्र
समान भयंकर राजा मधुसे विनय पूर्वक यह कहने लगे—महाराज ! जो महानुभाव दुर्जय मनुष्योंके जयकी
आकांक्षा रखनेवाले हैं उनका कोई भी जल्दी किया हुआ कार्य अच्छा नहीं होता क्योंकि जल्दी किये हुए कार्य
से संसारमें निन्दा ही होती है। प्रभो ! जो महानुभाव समुद्रसे गंभीर हैं। नीति और पराक्रमसे शोभायमान है
एवं हरएक कार्यको विचार पूर्वक करनेवाले हैं वे क्षुद्र पुरुषोंपर कमर नहीं कसते और दुर्जनोंको क्षमा भी नहीं
करते ॥ ३८६ ॥ स्वामिन् ! शृगाल चाहे कितना भी मदोन्मत्त चंचल और बड़बड़ करनेवाला हो परन्तु जो
केहरी मदोन्मत्त हाथियोंका घमंड चूरनेवाला है वह दीन शृगालपर प्रहार नहीं करता। जिस प्रकार शरद ऋतुमें
होनेवाली फल प्राप्ति शरद ऋतुके शुभ कालकी आकांक्षा रखनेवालोंके हो होती है यदि बीचमें ही जल्दी कर दी

जाय तो वह फल प्राप्ति नहीं हो सकती उसी प्रकार समय देखकर धीरे धीरे ही पुरुषोंकी कार्य सिद्धि होती
है जल्दी करनेसे कोई भी कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। राजन्! आप जो शत्रुके साथ युद्ध करनेका प्रयत्न कर
रहे हैं वह विचार कर ही आपको करना चाहिये ॥ ३६१ ॥ राजा मधु तो उस समय अहंकार रूपी उत्तुङ्ग पर्वत
की चोटीपर चढ़ा हुआ था वह मंत्रियोंकी उचित भी बात कब माननेवाला था उसके चित्तपर मंत्रियोंके बचनोंका
रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा प्रत्युत पर्वतको टूक टूक करनेवाले वज्रके समान इस प्रकार वह वचन कहने लगा—
जो व्याधियां दुष्ट और दुर्जय हैं जल्दी जीती नहीं जा सकतीं उन्हें जहां तक बने बहुत शीघ्र नष्ट कर देना
चाहिये यदि इनके नाशका शीघ्र उपाय नहीं किया जायगा तो आगामी कालमें ये अनेक प्रकारकी हानियां करने
वाली होंगी और प्राणोंकी नाशक बनेंगी। जिसका प्रकाश चारों ओर फैल रहा है ऐसा सूर्य जिस समय उदित
हो जाता है उस समय जिस प्रकार उलूक पक्षी छिप जाते हैं—सूर्यका सामना नहीं करते उसी प्रकार संग्रामके
अन्दर रणकला वेत्ता जिस समय मैं चक्र लेकर खड़ा हो जाता हूँ उस समय शत्रुओंका पता तक नहीं चलता।
जो पुरुष बलवान हैं वे शत्रुओंके लिये साम दण्ड और भेद इन तीन प्रकारकी नीतियोंका उल्लंघन कर केवल
दाम नीतिका आश्रय करते हैं—शत्रुओंके निग्रहका ही उपाय सोचते हैं क्योंकि बिना निग्रहके उपायके और
शत्रुओंके लिये कोई प्रतीकार नहीं ॥ ३६५ ॥ जिस समय राजा मधु स्वयम्भूसे युद्ध करनेके लिये गया था उस
समय उसे बहुतसे अपशकुन हुए थे उन अपशकुनोंसे उसे रुक जाना था परन्तु वह बिलकुल नहीं रुका किन्तु
सर्पके समान उसका और भी रोष बढ़ता ही चला गया एवं जिस प्रकार सूर्य आकाशमें चलता है उसी प्रकार
राजा मधु भी बैरी स्वयम्भूकी ओर पृथ्वीको छोड़कर आकाश मार्गसे चल दिया ॥ ३६६ ॥ उस समय जिनके
गण्डस्थलोंसे मद चूता था ऐसे हाथियोंके समूहके समूह चीत्कार करते थे और सिंदूरके आभरणोंसे शोभाय-
मान थे सो ऐसे जान पड़ते थे मानों विजली युक्त मेघ ही गरज रहे हैं ॥३६७॥ घोड़ोंका समूह चलने लगा जो
कि पद पदपर हींसता जाता था। चित्र विचित्र अङ्गका धारक था। अपनी टापोंसे पर्वतोंको चूरनेवाला था और
अपने खुरोंके न्याससे समुद्र सरीखे गढ़े करनेवाला था। बहुतसे पैदल योधा चलने लगे जो कि अनेक प्रकारके
आयुधोंके धारक थे। अत्यन्त पराक्रमी थे। विक्रमक्रमा-पक्षियोंके गमनके समान शीघ्र गमन करनेवाले थे। चलते
समय वे नीची ऊंची जमीनका कुछ भी विचार नहीं करते थे इसलिये वे साक्षात् यमराजके घोड़ोंके सरीखे जान
पड़ते थे। जिसकी कीर्तिका गान बड़े बड़े किन्नर करते थे एवं जो प्रलय कालके समुद्रके समान अत्यन्त भयंकर

सांकलोंसे जिसकी भुजायें
था ऐसा वह राजा मधु राक्षस मधुके समान सेनाके मध्यभागमें स्थित हो गया तथा सांकलोंसे जिसकी भुजायें
शोभायमान हैं एवं विद्याधर भूमिगोचरी और राक्षस सभी जिसके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे राजा
मधुने नारायण स्वयम्भूका सारा नगर घेर लिया ॥ ४०१ ॥ जिस समय राजा स्वयम्भूने अपने ऊपर चढ़कर मधु
को आता सुना वह शीघ्र ही नगरसे बाहिर निकल पड़ा एवं अपने भाई बलभद्रके साथ शीघ्र ही मधुका सामना
कर डाला ॥ ४०२ ॥ संग्रामके बाजोंको बजाता हुआ शत्रुओंको भयभीत करता हुआ और गन्धर्वों को अनेक
प्रकारके तर्क वितर्कों में उलझाता हुआ नारायण स्वयम्भू जिस समय प्रति नारायण मधुके सामने आकर खड़ा
हुआ उस समय उसने मधुसे इस प्रकार कठिन बचन कहे—जो पुरुष यहांपर युद्धके लिये आये हैं वे पृथ्वीतल
पर विद्यमान है वा नहीं हैं ? रे अधम मधु ! यदि तू यहां युद्ध करनेके लिये आया है तो तू युद्ध कर । बिना
युद्धके वृथा तू क्यों यहांपर पड़ा हुआ है ! राजा मधु तो पहिलेसे ही आग कबूला था जिस समय उसने स्वय-
म्भूके इस प्रकार कठिन वचन सुनें वह और भी क्रोधसे पजल गया वह अग्निके समान जाज्वल्यमान होकर
शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ एवं बाणोंसे आच्छादित कर समस्त जगतको अन्धकार मय बना दिया ॥ ४०५ ॥ उस
समय तोपोंके शब्दोंसे समस्त पर्वत शब्दायमान हो गये थे एवं उस शब्दको वर्षनेवाले मेघोंके शब्द
समझकर मयूरगण शोर मचाते थे ॥४०६॥ उस समय संग्राम भूमिमें हाथी हाथियोंसे भिड़ गये थे, रथ रथोंसे
घोड़े घोड़ोंसे घुड़सवार घुड़सवारोंसे भालेवाले भालेवालोंसे खड्गवाले खड्गवालोंसे गदावाले गदावालोंसे कोड़ा
वाले कोड़ावालोंसे बाणवाले बाणवालोंसे लड़ने लगे । बहुतसे सुभट हाथों हाथ युद्ध करने लगे तथा सड़ासी-
वाले सडासीवालोंसे और हलमूसल वाले हलमूसलवालोंसे युद्ध करने लगे इस प्रकार डरपोकोंको प्राणोंका
नाश करनेवाला घोर संग्राम होने लगा ॥४०९॥ राजा मधुके तीक्ष्ण अस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो नारायण स्वयम्भु
की सेना मारे भयके जहां तहां चारों दिशाओंमें भाग गई ठीक ही है मरणसे अधिक संसारमें कोई भय नहीं ।४१०।
जिस समय नारायण स्वयम्भूने अपनी सेनाको हतप्रभ और जहां तहां भागता देखा वह भी बलभद्रके साथ
शीघ्र ही युद्धके लिये उठकर तैयार हो गया ॥ ४११ ॥ जिस प्रकार इन्द्र बड़े बड़े पर्वतोंको ढाह देता है और
सूर्य कज्जलके समान काले अन्धकारको धराशायी बना दिया ॥४१२॥ सेनाके मुख्य अङ्ग हाथियोंको इस प्रकार
भग्न होता देख राजा मधुका चित्त हिलने लगा एवं वह मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगा कि यह स्वयंभू
बड़ा दुर्धर शत्रु है सामान्य नहीं । किस कारणसे इसे जीतना चाहिये ? इस प्रकार बहुत समय तक मन ही मन

विचार कर राजा मधुने नारायण स्वयंभूकी सेनामें शल्यबाण छोड़ा जिससे उसकी सेनाके समस्त सुभट कीलित हो ज्योंके त्यों रह गये ॥४१५॥ मधुने दूसरा संमोहन नामका बाण छोड़ा जिससे समस्त सुभट मूर्छित हो गये। तीसरा तामसशस्त्र छोड़ा जिससे सर्वत्र अन्धकार हो गया इस प्रकार राजा मधुके द्वारा एक साथ छोड़े हुये इन तीन बाणोंसे नारायण स्वयंभूका सेना क्षेत्र एक साथ व्याप्त हो गया। उस समय नारायण स्वयंभूके सुभट हा हा शब्द करते हुये पृथ्वीपर गिर गये उसका समस्त अङ्ग लोहू लुहान था और काले हाथियोंके समीप वे पड़े थे इसलिये वे अन्धकारसे परिपूर्ण सायंकालकी लालीमाके समान जान पड़ते थे ॥ ४१६ ॥ अन्धकारसे व्याप्त समस्त सैन्यदल ऐसा जान पड़ता था मानों यह नष्ट ही हो गया है अपने सैन्य मण्डलकी यह शोचनीय दशा देख कर पराक्रमशाली स्वयंभूने अपने भाई बलभद्रसे कहा—प्रिय भाई ! शीघ्र कहो अब हम दोनोंको क्या कार्य करना चाहिये क्योंकि यह राजा मधु दुर्जय और बलवान शत्रु है एवं मेरु पर्वतके समान निश्चल है यह नियम-से हमे जीत लेगा। देखो तो इस दुष्ट शत्रुने हमारा समस्त सैन्य व्यामुग्ध कर दिया है और जबरन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। नीति यह सूचित करती है कि जिस प्रकार विष वृक्षकी लता प्राणोंको हरण करनेवाली होती है इसलिये लोग उसे शीघ्र ही छेद डालते हैं उसी प्रकार व्याधि वा शत्रु भी प्राणोंका नाशक होता है इसलिये जहां तक बने उसे बहुत जल्दी नष्ट कर डालना चाहिये। भाई ! तुम शीघ्र इस शत्रु के नाशका कोई पुष्ट उपाय बताओ जिससे यह शत्रु शीघ्र शान्त हो जाय ॥ ४२० ॥ नारायण स्वयम्भूकी यह पीड़ा-जनक बात सुनकर उत्तरमें बलभद्रने कहा—रण विजयी भाई स्वयम्भू ! मैं तुम्हें एक उपाय बतलाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

विद्याधर पर्वत विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें एक अलक पत्तन नामका नगर है उसका स्वामी विद्याधर राजा महाचूल हैं जोकि हम दोनोंका परम मित्र है। वह मधुकी समस्त विद्याओंके नाश करनेमें समर्थ है इसलिये उसे किसी उपायसे यहां बुलाना चाहिये। बलभद्र धर्मके इस प्रकारके बचन सुनकर नारायण स्वयम्भूको कुछ सन्तोष हुआ और यह कहा भाई ! आप शीघ्र वहांपर चले जाइये अब इस विषयमें विशेष विचार करनेके लिये समय नहीं है। बस बलभद्र धर्म किसी विद्याधरके साथ शीघ्र ही विमान पर सवार हो लिये। इस प्रकार बलभद्र धर्म तो आकाश मार्गसे विद्याधर लोककी ओर जा रहे थे इधर राजा मधुने क्या काम किया कि नारद-से यह सुनकर कि बलभद्र, विद्याधर लोकको जा रहा है शीघ्र ही विद्याबलसे समस्त आकाश सुरक्षित कर

पीछेसे भ्रामरी नामकी बलभद्रके नाशके लिये गरुड़ स्वरूप उस मधुने
दिया एवं विशाल शत्रु रूपी नागके लिये समुद्रके अन्दर धर फेंका ॥४२८॥ बल-
विद्या छुटका दी। उसने बलभद्रको जकड़कर पकड़ लिया और विशाल दो अक्षरस्वरूप
भद्र धर्म जिस समय समुद्रमें पड़ गये वहांपर वे निस्सहाय हो गये एवं अनादि सिद्ध और मन्त्रके प्रभावसे
'अर्हं' इस मन्त्रको वे जपने लगे। उस समुद्रका स्वामी एक मणिचूल नामका देव था। महापुरुष जान प्रेम पूर्वक बलभद्र-
उसका आसन कपा और उसकी अम्बा नामकी देवीने ऊपर निकाल लिया। उसे तटपर आकर छोड़ दिया ॥४२९॥
की पूजा की। भेंटमें मणि प्रदान की। एवं अनेक गुणोंके भण्डार स्वरूप वह विद्याधर जहां तहां आकाशमें
बलभद्र धर्म तटपर आकर देखते क्या हैं कि जिसके विमानमें चढ़कर आये थे विमानमें चढ़ा लिया और
घूमता हुआ वहां पर आ गया है उसे देख बलभद्रको बड़ा हर्ष हुआ विद्याधरने उन्हें भ्रमारी विद्याने फिर भी
जहां उन्हें पहुंचना था वहां वे दोनोंके दोनों चल दिये ॥४३०॥ मधु द्वारा छुटकाई हुई निगल गई। बलशाली
बलभद्रका पीछा न छोड़ा। उसने भेरुण्ड पक्षीका रूप धारण कर लिया और बलभद्रको बाहर निकल गये
बलभद्रने नख और दांतोंसे उसे विदार डाला। मुष्टियोंके तीव्र घातोंसे उसका पेट फाड़कर बलभद्रको डाट लिया।
और पर्वतके ऊपर गिरने लगे. इतनेहीमें लाघवी नामकी महा विद्यासे उस विद्याधरने गंगा सरोवर पर
विमानमें सवार कर लिया और दोनोंके दोनों गङ्गा सरोवर पर जाकर पहुंच गये ॥ ४३३ ॥ जिस समय आगेको चल-
पहुंचकर उसका जलपान किया। अनेक प्रकारकी चेष्टा की एवं कुछ देर विश्राम कर ले गई एवं सिंहका
नेके लिये उद्यत हुए कि इतनेहीमें वह भ्रामरी विद्या बलभद्रको विजयार्ध पर्वत पर उठाकर बना। णमोकार मंत्र
रूप रखकर उसे खानेके लिये तैयार हो गई। बलभद्रसे उस समय और कोई उपाय नहीं बलभद्र जिस समय उसे रमा
का स्मरण कर वे वज्रके समान कठोर होकर कठोर मुष्टियोंसे उसे मारने लगे। यह सोचा कि यह
रहे थे पैरोंके जहां तहां पड़नेसे उसका शरीर चल विचल होता था। जब भ्रामरी विद्याने मजबूतीसे पकड़
जल्दी जीता नहीं जाता और सर्पके समान महाभयङ्कर है तो प्रबल पराक्रमी उस बलभद्रको हो गई इतने
लिया और एक विशाल शिलाके नीचे जाकर दबा दिया बस देवी तो बलभद्रको दबाकर किनारे जिस शिलाके नीचे
हीमें अपनी स्त्रीके साथ उस पर्वत पर क्रीड़ा करनेके लिये विद्याधर महाचूल भी आ गया। वह शिला हलती
बलभद्र धर्म देव पड़े थे उस शिला पर महा चूलकी दृष्टि पड़ गई। बलभद्रके हलन चलनसे और यह मंत्रसे
चकती थी शिलाको देखते ही विद्याधर महा चूलने समझ लिया कि इसके नीचे कोई व्यक्ति है

कीली हुई है बस चकोर पक्षीके समान चञ्चल नेत्रोंसे शोभायमान और विशाल भुजाओंके धारक विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही शिलाको उखाड़ डाला। शिलाके नीचेसे बलभद्र धर्म बाहिर निकल आये। अनेक गुणोंके भण्डार विद्याधर महाचूलको देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। एकदम मिलनेके लिये उससे लिपट गये और बार बार बात चीत करने लगे ॥ ४४० ॥ संग्राममें जो कुछ भी बात हुई थी सारी बलभद्रने कह सुनाई। विद्याधर महाकूलको अपने साथ ले लिया एवं वे दोनों आपसमें मैत्रीभाव रख लीला पूर्वक द्वारावतीकी ओर चले ही आ रहे थे कि यह घटना उपस्थित हो गई—

राजा मधु द्वारा भेजी हुई भ्रामरी विद्याने जिस समय विद्याधरोंमें श्रेष्ठ राजा महाचूलको देखा शीघ्र ही उसने मारनेके लिये उसपर गोवर्धन नामका पर्वत गिरा दिया ॥४४२॥ भ्रामरी विद्याकी यह क्रूर चेष्टा देखकर विद्याधर महाचूलने समझ लिया कि मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाली यह भ्रामरी नामकी विद्याकी करतूत है। मारे क्रोधसे उसका हृदय प्रज्वलित हो गया। हाथमें वज्र शृंखला लेली और उसे जकड़ कर बांध कर इस प्रकार कहने लगी—अरी दुष्ट कार्यको करनेवाली राड़ तू कौन है? जल्दी बता नहीं तो अभी मैं तेरा नाश किये देता हूं। विद्याधर महाचूलकी यह बात सुनकर भ्रामरी विद्या एकदम कंप गई एवं भयभीत हो वह इस प्रकार कहने लगी—राजा मधुने बलभद्र धर्मके मारनेके लिये मुझे यहां भेजा था परन्तु इसकी अलौकिक शक्ति देखकर मुझे यह विश्वास हो गया है कि मुझमें इसके मारनेकी सामर्थ्य नहीं। प्रिय विद्याधरोंके इन्द्र! कृपाकर तुम मुझे छोड़ दो मैं चली जाती हूँ। यद्यपि मैं सूर्य चन्द्रमाके गिरानेकी सामर्थ्य रखती हूँ परन्तु मैं तुम्हारा किसी प्रकारका अपकार नहीं कर सकती ॥४४८॥ भ्रामरी विद्याकी यह प्रार्थना सुनकर विद्याधर महाचूलने उसे छोड़ दिया एवं जहांपर संग्राम भूमिके अन्दर राजा मधुकी सेना पड़ी थी वहां शीघ्र ही बलभद्र धर्मके साथ जाकर पहुंच गया ॥४४६॥ विद्याधर महा चूलने बलभद्रके छोटे भाई नारायण स्वयम्भूको प्रणाम किया। नारायणसे मिलकर उसे बड़ा आनन्द हुआ एवं नीति परिपूर्ण स्पष्ट रूपसे उसने यह कहा—राजा मधुने जो शल्यवाण आदि तीनों महा विद्याओंका प्रयोग किया है। उन तीनोंका हटाना महाकठिन है इसलिये मैं इन तीनों विद्याओंको नाश करनेवाली विद्या सिद्ध करने जा रहा हूँ। आप लोग धैर्य रक्खें। विद्याधर महाचूलकी यह बात सुन नारायण स्वयम्भूने कहा—मित्र! तुम्हें बहुत जल्दी लौट आना चाहिये ऐसा न हो कि तुम वहां किसी प्रकारसे विलंब कर लो। उत्तरमें विद्याधर महाचूल यह कहकर कि मैं शीघ्र आऊंगा तत्काल हीमन्त

पर्वत पर चला गया। वहां उसने समस्त वस्त्र छोड़कर नग्न अवस्था धारण कर ली। गलेमें लाल २ नेत्रोंका
धारक सर्प डाल लिया ; मस्तकपर हड्डियोंका मुकुट बांध लिया और रात्रिके समय उस पर्वतके भूतारण्य नामक
वनमें स्थिर होकर बैठ गया। विद्याधरोंके स्वामी राजा महाचूलने हाथमें रुण्डोंकी माला लेकर छत्तीस भुजाओं-
की धारक मानसी नामकी विद्याको साधा ॥४५३॥ जिसके स्तन पर्वतके समान विशाल हैं और जिसका साधना
हर एकके लिये दुःसाध्य हैं ऐसी उस महाविद्याको विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही साध लिया। ठीक ही है
पुण्यके बलसे क्या बात दुर्लभ रह जाती है ॥४५४॥ उस महा विद्याको सिद्धकर विद्याधर महाचूल शीघ्र ही
लौट आया जिस प्रकार सूर्यकी प्रभासे रात्रिका अन्धकार नष्ट हो जाता है। केहरी हाथियोंके झुण्डके झुण्डको
अस्त व्यस्त कर डालता है उसी प्रकार उस विद्याके द्वारा विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही राजा मधुकी तीनों
विद्याओंको नष्ट कर डाला। शेष नागके समान पराक्रमी नारायण स्वयम्भूने जिस समय अपनी सेनाको मूर्छा
रहित देखा तो उसे बड़ा आनन्द हुआ एवं अनेक प्रकारके तीव्र घातोंसे उसने राजा मधुके सारे सैन्यको अस्त
व्यस्त कर डाला ॥४५५॥ स्वयम्भूकी यह लोकोत्तर वीरता जिस समय राजा मधुने देखी तो मारे क्रोधसे उस
का हृदय प्रज्वलित हो गया एवं अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे सुसज्जित हो वह शीघ्र ही नारायण स्वयम्भूके सामने
आकर डट गया। नारायण स्वयम्भूके ऊपर उसने अग्नि वाण, जल वाण, पर्वत वाण और नाग वाण आदि
बहुतसे वाण छोड़े परन्तु नारायण स्वयम्भू भी कम न था। उसने अग्नि वाणको जल वाणसे नष्ट किया।
जल वाणको पवन वाणसे हटाया। पर्वत वाणको वज्र वाणसे छेदा एवं नाग वाणका नाश गरुड़ वाणसे किया।
नारायण स्वयम्भूका यह विचित्र रण कौशल देख एवं अपने वाणोंको छिन्न भिन्न देख महा अभिमानी राजा
मधु लज्जित हो गया और तो उससे कुछ न बन सका क्रोधसे अन्धा हो शीघ्रही उसने नारायण स्वयम्भूके ऊपर
चक्र चला दिया। राजा मधु द्वारा छोड़ा हुआ वह चक्र पहिले तो आकाशमें गया पीछे नारायण स्वयम्भूके पास
आकर उसकी तीन प्रदक्षिणा दी और दाहिने हाथपर आकर बिराज गया ठीक ही है पुण्यके बलसे ऐसी कोनसी
दुर्लभ चीजें हैं जिनकी प्राप्ति जीवोंको नहीं हो जाती ॥४५६॥ चक्र जाकर जब स्वयंभूके दाहिने हाथपर जा धरा तो
प्रतिनारायण राजा मधुको नितांत दुःख हुआ एवं वह इस प्रकार अत्यंत कठिनवाणी बोलने लगा। राजा मधुकी
उस समयकी ध्वनि इतने जोरसे थी कि लोगोंको यह मालूम पड़ा था कि यह मेरु पर्वतके गिरानेका वा पृथ्वीके
फटनेका वा आकाशकी गर्जनाका शब्द है अथवा प्रलयकालमें समस्त जगतको भंग करनेवाले मेघकी गर्जना है

॥४५६॥ रे अधम क्षत्री स्वयंभू ! चक्रको पाकर शांत क्यों खड़ा है? यदि तेरे अंदर अद्भुत शक्ति है तो तू चक्र को भ्रमर कर मेरी ओर छोड़। तू निश्चय समझ यह चक्र नियमसे तेरे प्राणोंका नाशक होगा। उत्तरमें स्वयंभूने कहा—जो बड़े हैं, वृद्ध हैं। बालक और भयभीत हैं। स्त्रियां हैं और निरपराध हैं उनपर वीर लोग अपनी तलवार नहीं छोड़ते। मधुने उत्तर दिया—

जो महानुभाव शत्रु रूपी अन्धकारके लिये सूर्य समान हैं वे ही खंगको धारण कर सकते हैं डरपोक नहीं। लोकमें यह किंवदन्ती है कि पृथ्वीके भारको शेष नाग ही धारण कर सकता है कूपमें रहकर टर टर करनेवाला मैंढक नहीं। उत्तरमें नारायण स्वयम्भूने कहा—जो सूर्य समस्त जगतके अन्धकारका नाश करनेवाला है वह बिलमें रहनेवाले अन्धकारके नाश करनेके लिये किसी प्रकारका उद्योग नहीं करता क्योंकि उस अन्धकारके नाश न करनेसे उसकी महत्तामें किसी प्रकारकी कमी नहीं मानी जाती। नारायण स्वयम्भूकी यह बात सुनकर मधुने कहा—पंगु पुरुष यदि यह चाहैं कि मैं मेरु पर्वतपर चढ़ जाऊं तो वह चढ़ नहीं सकता तथा क्षुद्र पुरुष यदि यह चाहें कि मैं छोटीसी नावसे विशाल समुद्रको तर जाऊं तो वह तर नहीं सकता। रे स्वयम्भू ! तुझ सरीखा क्षुद्र पुरुष मेरा क्या कर सकता है। उत्तरमें स्वयम्भूने कहा—केहरी अंजन पर्वतके समान विशाल हाथियोंका ही मांस खाता है यदि वह उसे न मिले और उसके प्राण भी चले जांय तो वह शृगालका मांस नहीं खा सकता और न तृण ही भक्षण कर सकता है। मधुने उत्तर दिया—जो पुरुष अपने दिव्य बलसे समस्त पृथ्वी-तलको व्याप्त करनेवाले हैं और भूतलातला :—समस्त पृथ्वीतलको पीड़ित करनेकी सामर्थ्य रखते हैं वे भी यमराजके मुखमें हाथ नहीं डालना चाहते—यमराजसे वे भी डरते हैं। रे दासी पुत्र ! यदि तेरे अन्दर किसी प्रकारका सामर्थ्य नहीं है तो तू चक्रको पाकर अब क्या विचार कर रहा है। यदि कुछ भी सामर्थ्य रखता है तो शीघ्र उसे मेरे ऊपर चला ॥ ४६७ ॥ प्रति नारायण मधुकी इतनी कड़ी बात नारायण स्वयम्भूको कब सहन होने वाली थी बस उसने शीघ्र ही राजा मधुके ऊपर चक्र चला दिया जिससे तत्काल उसके शरीरके दो खण्ड हो गये, ठीक ही है जिस मनुष्यका जिस रूपसे मरण होना होता है नियमसे उसका उसी रूपसे होता है—कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। महा अभिमानी राजा मधुके परिणाम मरते समय रौद्र ध्यान रूप थे ...ये वह मरकर सातवें नरक गया बैरसे जो पाप किया जाता है वह नियमसे भोगना होता है ॥४६६॥ प्रति मधुके मर जानेपर अनेक गुणोंके समुद्र नारायण स्वयम्भूकी आज्ञा सर्वत्र फैल गई। भरत क्षेत्रके तीन

खण्डोंको उसने सिद्ध कर लिया और बलभद्र धर्मके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। वह पुण्यात्मा स्वयम्भू केइन्द्र
समान निर्विघ्न रूपसे नाना प्रकारके भोग भोगने लगा अपने तीव्र प्रतापसे उसने समस्त शत्रुओंको जीतकर
उनकी स्त्रियोंको दुःखी बना डाला। वह राजा स्वयम्भू शिष्ट पुरुषोंका अच्छी तरह पालन करता था और दुष्टों
का निग्रह करता था एवं देवांगनाओंके समान महा मनोहरांगी स्त्रियोंके साथ भोग विलास करनेवाला था
॥ ४७२ ॥ राजा स्वयम्भूके आठ हजार तो आर्य्य राजा सेवक थे और आठ ही हजार म्लेच्छ राजा उसकी सेवा
करते थे। इस प्रकार बहुत काल राज्य सुख भोगते भोगते राजा स्वयम्भूका अन्तकाल हो गया एवं तीव्र बैरके
कारण वे भी सातवें नरकमें जाकर उत्पन्न हो गये। नरककी बन्दना इतनी भयङ्कर है कि विद्वान भी कवि उसका
वर्णन नहीं कर सकते। नारायण स्वयम्भूके मर जानेपर बलभद्र धर्मको सीमान्त दुःख हुआ था। शोक संतप्त
बलभद्र छह महीना तक स्वयम्भूका शरीर धारण करते फिरे अन्नमें काल लब्धिकी कृपासे उन्हें यथार्थ मार्गका
ज्ञान हुआ इसलिये तत्काल उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया। वे बलभद्र धर्म शीघ्र ही भगवान
विमलनाथके समवसरणमें गये। नमस्कार कर भगवान विमलनाथकी स्तुति की एवं भावपूर्वक दिगम्बरी दीक्षा
धारण कर ली। ठीक ही है सब कार्योंमें भावोंकी ही प्रधानता मानी जाती है ॥४७७॥ बलभद्र धर्मने तीव्र तप
तपा। शुभ ध्यानका आचरण किया जिससे उन्हें केवल ज्ञानकी प्राप्ति हो गई और वे मोक्ष मंदिरमें जाकर
विराज गये। ग्रन्थकार तपकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि घरके आंगनमें ही स्वर्ग, राज्य धन सुन्दर
रूप यशस्वीपना चक्रवर्ती और इन्द्रपना ये सारी बातें तपके द्वारा प्राप्त हो जाती हैं ऐसी तीन लोककी कोई चीज
नहीं जो तपसे, न प्राप्त हो जाती हों। जिसकी कृपासे कर्मों की निर्जरा होती है। भव भवमें निरोगताका लाभ
होता है और देवगण आज्ञाकारी सेवक बन जाते हैं वही तप संसारमें प्रशंसनीय माना जाता है। इस तपकी
कृपासे संसारमें शौभाग्य आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है। उसीसे कामदेवके समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं।
तथा रतिके समान परम सुन्दरी स्त्रियोंकी भी प्राप्ति होती है विशेष क्या सगर चक्रवर्ती आदिकी विभूतिके
समान विभूतियां इस तपके द्वारा प्राप्त होती हैं इसलिये जो महानुभाव मोक्ष आदि विभूतियोंके इच्छुक हैं उन्हें
चाहिये कि जूआ आदि निन्दित, परिणाममें दुःखदायी समस्त कार्यों का सर्वथा परित्याग कर धर्म और पुण्य
आदिके साधन करनेवाले ही कार्योंको करें निन्दित कार्यों की ओर रंचमात्र भी दृष्टि न डालें ॥४८३॥
अन्तमें आचार्य धर्मकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि धर्मके द्वारा ही पवित्र पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। उत्तम

प्राप्त होता है। महा मनोज्ञ रूप सौभाग्य तीर्थंकरपना हाथी घोड़ाओंसे शोभायमान पृथ्वीका निधिका स्वामीपना प्राप्त होता है। प्रबल शक्ति जिससे कि शत्रुओंका विध्वन्स किया जाता है ईश्वरपना अप्सराओंके समान स्त्रियोंका मिलना। इसलिये हे विद्वान पुरुषो यदि तुम्हें पुत्र प्राप्त होते हैं विशेष क्या स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति भी धर्मसे होती है आदि विभूतियोंकी अभिलाषा है तो तुम्हें पवित्र धर्मका अवश्य आराधन करना चाहिये—क्षण भरके लिये भी धर्मसे मुख मोड़ना न चाहिये ॥ ४८४ ॥ हे सज्जनो ! तुम भगवान ऋषभ देवका ध्यान करो जो ऋषभदेव भगवान, ग्रन्थकर्त्ता कृष्णदासके सुखके देनेवाले हैं। जिनके चरण कमलोंकी बड़े बड़े देवेन्द्र और नरेन्द्र सेवा करते हैं और जिन्होंने कैलास पर्वतसे मोक्षको पाया है ॥ ४८५ ॥

इति श्रीब्रह्मकृष्णदास विरचित वृहद् विमलनाथ पुराणमें भगवान् विमलनाथका दीक्षा विधान वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

पांचवां सर्ग।

जो भगवान जिनेन्द्र प्रजापति आदि ब्रह्मा हैं। कर्मोंके नाश करनेवाले हैं। स्याद्वाद विद्याके नायक हैं एवं देवांगना अपने कण्ठसे जिनके यशका गान करतीं हैं उन भगवान जिनेन्द्रको अपने कल्याणकी सिद्धिके लिये मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१॥ समस्त प्रकारकी भ्रांतिसे रहित वे भगवान विमलनाथ समस्त पृथ्वी पर विहार करते २ एक दिन जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें मथुरा पुरीमें जा पहुंचे। कुवेरने अत्यन्त शोभायमान समवसरण रच दिया जो कि बारह योजन प्रमाण था विशाल था और महा कांतिसे देदीप्यमान था ॥ ३ ॥ समवसरणके अन्दर चार मानस्तम्भ विद्यमान थे जो कि नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त थे। उनसे आगे तलाब शोभायमान थे जो कि हंस और चकवा पक्षियोंकी क्रीड़ाओंसे व्याप्त थे ॥ ४ ॥ धूलीशाल नामका शाल वहांपर अत्यन्त शोभायमान था जो कि पांच वर्णके रत्नोंके चूर्णसे व्याप्त था और मनुष्योंको यह जान पड़ता था मानो यह लवणोदधि समुद्र है ॥ ५ ॥ धूलीशालके चारों ओर विशाल खाइयां शोभायमान थीं जो कि जलसे परिपूर्ण थीं। उनका जल सुगंधित और उत्तम था। कमलोंसे व्याप्त था और सरोवरोंके सम्बन्धसे उनका जल हिलता डोलता था इसलिये वे ऐसी जान पड़ती थी मानो ये अपनी चञ्चल क्रीड़ाओंमें मस्त हैं। खिले हुए भांति भांतिके वहांपर पुष्पोंसे व्याप्त वाटिकायें अत्यन्त शोभायमान थीं जो कि भांति भांतिके पुष्पोंके शृंगारसे

शोभायमान और हंसती हुई स्त्रियां सरीखी जान पड़ती थी ॥ ७ ॥ भीतर एक सुवर्णमयी प्राकार शोभायमान था जो कि अत्यन्त सुन्दर था और ऊंचाईसे ऐसा जान पड़ता था मानों यह आकाशके दो खण्ड कर रहा है। उसके ऊपर नाट्यशाला विराजमान थीं जो कि किन्नरी जातिकी देवियोंके नृत्योंसे अत्यन्त शोभायमान थीं वहांपर लताओंकी क्यारियां अत्यन्त शोभायमान थी तथा बगीचे और विशाल वन भी अत्यन्त शोभा बढ़ा रहे थे जो कि भांति भांतिके वृक्षोंसे व्याप्त थे और चलते फिरते भ्रमरोंसे शोभायमान थे ॥ ६ ॥ जिनके अन्दर अनेक प्रकारके रत्नोंकी रचना थी और जो अपनी शोभासे देवोंके भी चित्त चुरानेवाली थीं ऐसी वहांपर विशाल वेदियां शोभायमान थीं । तीस हजार संख्या प्रमाण ध्वजाओंके दण्ड सोभायमान थे ॥१०॥ दूसरी प्रकार चांदी का शोभायमान था जिनकी कांति नारागणोंसे और भी अधिक शोभायमान थी तथा उसके चारों ओर कल्प-वृक्षोंका वन था जो कि लोगोंकी इच्छाओंका बहुत प्रकारसे पूरण करनेवाला था। जिनकी भीतें नाना प्रकारकी मणियोंसे रची थीं ऐसे उत्तमोत्तम महल वहांपर शोभायमान थे। एक स्फटिक पाषाणका बना हुआ किला शोभायमान था और उसके सामने सुन्दर सभायें विद्यमान थीं ॥ ११ ॥ पहिली सभामें निर्ग्रन्थ विद्यमान थे! दूसरी सभामें कल्पवासी देवोंकी स्त्रियां थीं। तीसरी सभामें आर्यिकायें थीं चौथी सभामें ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियां थीं। पांचवीं सभामें व्यन्तरोंकी स्त्रियां थीं। छठी सभामें भवनवासी देवोंके स्त्रियां थी। सातवीं सभामें भवनवासी देव थे। आठवीं सभामें व्यन्तर देव थे। नवमी सभामें ज्योतिषी देव थे। दशवीं सभामें कल्प-वासी देव थे। ग्यारहवीं सभामें मनुष्य थे और बारहवीं सभामें पशु विद्यमान थे इस प्रकार ये बारह सभायें थीं। सभाओंके मध्यभागमें एक सिंहकूर्म नामका सिंहासन था और उसके मध्यभागमें सुवर्णमयी कमल था जो कि एक हजार आठ पत्तोंसे शोभायमान था उसके ऊपर भगवान विमलनाथ विराजमान थे। वह समवसरण बीस हजार सीढ़ियोंसे शोभायमान था। उसमें चार प्राकार थे और महा मनोज्ञ पांच भीतियें थीं। उनके भीतर छत्तीस गलियां थीं जिनमें कि देवगण जय जय शब्द करते थे। अप्सराओंके सुरीले कंठोंसे रागोंकी छटा छटक रही थी जिससे वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। भगवान जिनेन्द्रके शरीरकी अवगाहनासे प्राकार और भित्तिओंकी उंचाई बारह गुणी अधिक थी इसी तरह भांति भांतिकी कांतियोंसे व्याप्त मानस्तम्भ भी विद्यमान थे वेदियां (मंडपशालायें) भगवान जिनेन्द्रकी अवगाहनासे चौगुनी और विशाल थीं तथा पद्मराग आदि नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त थीं ॥२०॥ पृथ्वीसे पांच हजार धनुष आकाशमें जानेपर समवसरणकी शोभा

देखी जा सकती थी ॥ वहांपर साढ़े बारह करोड़ बाजोंके घोर शब्द होते थे इस प्रकार वहांपर समवसरणकी शोभा लोकोत्तर थी। तथा भगवान जिनेंद्रके माहात्म्यसे छहों ऋतुओंके फल फूलोंसे बृक्ष लद बदा गये थे। इस प्रकार समवसरणकी शोभा और छहों ऋतुओंके फल फूलोंकी अपूर्व शोभा देखकर और कुछ फल एवं फूलोंको राजाकी भेंटके लिये लेकर मालकार शीघ्र ही मथुरा नगरीकी ओर चल दिया उस समय मथुरापुरीके स्वामी राजा मेरु और मन्दिर दोनों भाई थे। मालीने राज सभामें पहुंच कर उनके सामने फल फूलोंकी भेंट रख दी और इस प्रकार आनन्दमयी बात सुनाने लगा—स्वामिन्! किन्नर नामके उद्यानमें भगवान विमलनाथका समवसरण आया है। भगवान विमलनाथके माहात्म्यसे जो बृक्ष बांझ थे—कभी भी जिनपर फल फूल नहीं लगते थे वे इस समय फल और फूलोंसे व्याप्त हो गये हैं ॥२४॥ समस्त ऋतुओंमें होनेवाले फल और फूलोंसे बृक्षोंके लदबदा जानेसे यह जान पड़ता है कि नाना प्रकारके पुष्पोंकी लालसासे परिपूर्ण और ताराओंके समान पुष्परूपी नेत्रोंकी धारक समस्त ऋतुओंमें होनेवाली शोभा ही मिलकर भगवान जिनेन्द्रको देखनेके लिये आकर प्राप्त हो गई ॥ २५ ॥ मालीके मुखसे इस प्रकारके हर्ष समाचार सुन राजपुत्र मेरु और मन्दिरको बड़ा आनन्द हुआ। भगवान जिनेन्द्रके अन्दर अपनी भक्ति प्रगट करनेके लिये उन्होंने विशाल धन वस्त्र और अलंकार माली को प्रदान दिये। कामदेवके समान सुन्दर राजपुत्र मेरु और मन्दिरने यह समझकर कि भगवान जिनेन्द्रका पधारना बड़े पुण्यसे हुआ है शीघ्र ही उनकी बंदनाके लिये वे नगरसे चल दिये। उस समय वे दोनों राजपुत्र विशाल सेनाके भारसे विशाल समुद्रको तरनेकी सामर्थ्य रखते थे। बैरियोंका ध्वंस करनेवाले थे एवं समस्त सामन्तोंसे शोभायमान थे ॥२८॥ समवसरणमें प्रवेशकर मेरु और मन्दिरने बड़े ठाट बाटसे भगवान जिनेन्द्रकी जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्योंसे पूजा की। मनोहर पद्योंमें स्तुति की एवं भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बड़े आदरसे मनुष्य कोठेमें जाकर बैठ गये ॥ २९ ॥ समुद्रके समान गम्भीर ध्वनिके धारक भगवान जिनेन्द्र अपनी दिव्य ध्वनिसे धर्मका स्वरूप वर्णन करने लगे। बोलते समय अन्य मनुष्योंके तो होठ चलते हैं परन्तु भगवान जिनेन्द्र के अन्दर महान् अतिशय था कि उनके होठ किसी प्रकार हिलते डुलते न थे ॥ ३० ॥ भगवान जिनेन्द्रने सबसे पहिले गृहस्थ और मुनियोंके धर्मका वर्णन किया पीछे सात तत्व पांच द्रव्य और नव पदार्थोंका स्वरूप निरूपण किया ॥ ३१ ॥ वह इस प्रकार है—इस जीवकी न तो आदि है और न अन्त है। यह अनादि निधन है और कर्मरूपी यन्त्रके वशमें पड़कर यह बराबर संसारमें घूमता रहता है। यह किसीका बनाया हुआ नहीं है और

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रयका स्वामी है ॥ ३२ ॥ यह जीव अपने जीवत्व रूपसे सदा काम जीता है कभी भी इसका प्रलय नहीं होता इसलिये जो अपने जीवत्वरूपसे सदा काल जीवे और जिसका कभी भी प्रलय न हो वह भगवान जिनेन्द्रने जीव द्रव्य कहा है ॥ ३३ ॥ यह जीव आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन इस प्रकार बारह प्रकारके उपयोग स्वरूप है । व्यवहार नयसे अपने कर्मोंका कर्ता है । अमूर्तिक है । जबतक इसका शरीरके साथ सम्बन्ध है तबतक संसारमें रहनेवाला है ॥ ३४ ॥ तीनों काल इसके चार प्राण सदा देदीप्यमान रहते हैं और वे चार प्राण सत्ता सौख्य ज्ञान और चेतना ये हैं ॥ ३५ ॥ व्यवहार नयकी अपेक्षा जीवके मन वचन काय श्वासोच्छ्वास आयु और स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियां ये दश प्राण हैं ॥ ३६ ॥ दर्शन और ज्ञानके भेदसे उपयोग दो प्रकारका माना है । चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन और केवल दर्शनके भेदसे दर्शन चार प्रकारका है । मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान कुमति कुश्रुत और कुअवधि, मनःपर्यय और केवल इस प्रकार ज्ञान आठ प्रकारका माना है । ये जो मतिज्ञान आदि आठ भेद माने हैं वे प्रमाणके भेद प्रत्यक्ष और परोक्षसे युक्त हैं अर्थात् अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन ज्ञान तो प्रत्यक्ष हैं और बाकीके परोक्ष हैं । जीवका यह उपयोग ही सामान्य लक्षण है ॥ ३९ ॥ ज्ञान और दर्शन यह दोनों प्रकारका उपयोग नित्य हैं कभी भी इसका विनाश नहीं होता और शुद्ध है । जिसके द्वारा तीन लोक सम्बन्धी चराचर पदार्थ जाने जावें वह ज्ञान कहा जाता है । तथा तीन लोक सम्बन्धी और भूत भविष्य वर्तमान तीन काल सम्बन्धी पदार्थ यथावस्थित रूपसे जिसके द्वारा दीखें वह दर्शन नामका उपयोग है ॥ ४१ ॥ निश्चय नयसे न मानकर सामान्य रूपसे इस जीवका लाल काला सफेद पीला और हरा यह पांच प्रकारका वर्ण माना है । व्यवहार नयकी अपेक्षा यह जीवात्मा पुद्गलीक कर्मकी कृपासे सुखी दुःखी होता है किन्तु निश्चय नयकी अपेक्षा यह समस्त प्रकारके कर्मोंसे रहित है और कर्म कालिमासे रहित होनेके कारण निरंजन है ॥४३॥ मीठा तीखा कषैला कड़वा नुनखरा और खट्टा विशेष रूपसे ये छह रस माने है किन्तु सामान्यसे तीखापन खारापनको एक मानकर पांच ही रस माने गये हैं । सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे गंध दो प्रकारका माना है । चिकना रूखा हलका भारी गरम ठण्डा और कठोर कोमल, सामान्य रूपसे यह आठ प्रकारका स्पर्श माना है । यह जीव इन वर्ण रस गंध और स्पर्शोंसे रहित है । बन्धहीन है । ज्ञानवान शुद्ध ज्योतिरूप सुख स्वरूप और अविनाशी है ॥ ४६ ॥ जबतक यह जीव देहके अन्दर विद्यमान रहता है तबतक देही कहा जाता है एवं संकोच

और विकास शक्तिका धारक होनेसे यह अपने शरीरके प्रमाण कभी लघु गुरु भी है। वेदना समुद्घात १ कषाय समुद्घात २ विक्रिया समुद्घात ३ मारणांति समुद्घात ४ तैजस समुद्घात ५ आहारक समुद्घात ६ और केवल समुद्घात ७ ये सात प्रकारके समुद्घात माने हैं। निश्चय नयसे यह आत्मा सातो प्रकारके समुद्घातोंसे रहित है और लोक जिस प्रकार असंख्यात प्रदेशी माना है उसी प्रकार यह असंख्यात प्रदेशी है ॥४९॥ स्थावरोंके ब्यालीस भेद माने हैं। तथा देव और नारिकियोंके दो दो भेद हैं तिर्यंचोंके चौंतीस मनुष्योंके नौ और विकलेन्द्रिय दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इस प्रकार विकलेन्द्रियोंके नौ मिलकर जीवोंके सब भेद ९८ हैं खुलासा इस प्रकार है—पृथ्वी जल तेज वायु नित्य निगोद और इतर निगोद और इन सातोंको सूक्ष्म और वादरसे गुणा करनेपर चौदह भेद हो जाते हैं तथा उन चौदह भेदोंको पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणा करने पर ब्यालीस भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्थावरोंके ब्यालीस भेद हैं। पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे मनुष्य भी दो प्रकारके हैं और नारकी भी दो प्रकारके हैं। जलचर थलचर और नभचर इन तीनोंको संज्ञी और असंज्ञीसे गुणने पर छः भेद हो जाते हैं। भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले गर्भज जीव थलचर और नभचरके भेदसे दो प्रकारके हैं। इन दोको पहिले छहोंके साथ जोड़ने पर आठ भेद हो जाते हैं। इन आठोंको पर्याप्त और अपर्याप्तसे गुणने पर सोलह भेद होते हैं। जिन जलचर थलचर और नभचर जीवोंको संज्ञी असंज्ञीके भेदसे दो प्रकार कह आये हैं उन्हें सम्मूर्छन मानकर पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणा करने पर अठारह भेद हो जाते हैं। अठारह और सोलहको आपसमें जोड़ने पर चौंतीस भेद हो जाते हैं इस प्रकार तिर्यंचोंके चौंतीस भेद हैं। आर्य मनुष्य म्लेच्छ मनुष्य भोग भूमिज मनुष्य और कुभोग भूमिज मनुष्य इन चारोंको पर्याप्त अपर्याप्तसे गुणने पर आठ भेद हो जाते हैं। इन आठोंमें संमूर्छन मनुष्य नामका भेद जोड़ देने पर नौ भेद हो जाते हैं ये नौ भेद मनुष्योंके हैं। दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इन तीनोंको पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणनेपर नौ भेद हो जाते हैं इस प्रकार कुल जीवोंके मिलाकर अठानवे भेद हैं ॥ ५१ ॥ गति इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणा और मिथ्यात्व सासादन आदि चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीव चौदह प्रकार माने हैं। व्यवहार नयसे आत्मा संसारी और निश्चय नयसे सिद्ध माना जाता है। सामान्यसे संसारी और मुक्तके भेदसे जीव दो प्रकारके हैं। भव्य और अभव्यके भेदसे संसारी जीव दो प्रकारके हैं। समनस्क और अमनस्कके भेदसे भी संसारी जीव दो प्रकारके हैं। जो मनसहित हों वे समनस्क और जो मन रहित हों वे अमनस्क कहे

जाते हैं। इस प्रकार स्थावर और त्रसके भेदसे संसारी जीवोंका यह संक्षेप स्वरूप हैं ॥ ५४ ॥ साकार और निराकारके भेदसे सिद्ध दो प्रकारके हैं। ये दो भेद व्यवहार नयसे हैं निश्चय नयसे तो सिद्धोंका एक ही भेद है। दूसरा कोई भेद नहीं। ये सिद्ध परमेष्ठी आठ कर्मोंसे रहित हैं। सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंके स्वामी है। चरम शरीरके आकारसे कुछ ऊन आकारके धारक हैं और लोकके अग्रभागमें विराजमान हैं ॥५६॥ प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध अनुभाग बंन्ध और प्रदेशबन्ध इन चारों प्रकारके बन्धोंसे रहित महापुरुषोंकी केवल ऊर्ध्व गति ही होती है। निश्चय रूपसे विदिशा आदिमें गमन नहीं होता। अभव्य भी जीव तपश्चरण कर ग्रैवेयक पर्यन्त चले जाते हैं। निगोद जीव पांच प्रकारके हैं और भेद उनके अनन्तानन्त माने हैं। जैन सिद्धान्तके अन्दर यह बात बतलाई गई हैं अनन्तानन्त कालोंमें निगोदराशि सिद्धराशिसे अनन्तानन्त गुणी अधिक है ॥ ५८ ॥ सीप मकोड़े शंख आदि जोंक ये जीव तथा बालक जातिके और कपर्दी जातीके जीव दो इन्द्रिय माने हैं। खटमल कुन्थु नामके जीव यूक और गोह आदिक जीव तेइन्द्रिय हैं। मच्छर डांस माखी शलभ और पतंग आदि जीव चौइन्द्रिय है। तिर्यंच मनुष्य देव नारकी नभचर जलचर और थलचर जीव पंचेन्द्रिय हैं। एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदि जीवोंकी उत्पत्ति करनेवाला मन ही है क्योंकि मनरूपी बीज ही बंधरूपी वृक्षका उत्पन्न करनेवाला है और बन्धका कारण होनेसे मोक्षकी प्राप्तिका बाधक है ॥ ६३ ॥ यदि मनको वश कर लिया जाय तो सिद्धपनेकी प्राप्ति दूर नहीं है और यदि मन चचंल बना रहे तो संसार दूर नहीं है अर्थात् मनको वश करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और मनके वश न करनेसे संसारमें रुलया पड़ता है। ज्ञानावरण आदि मुख्य कर्मोंके जीतनेमें उपवास आदि तप बाह्य कारण हैं वास्तवमें महा बलवान मनका जीतना ही मुख्य कर्मका जीतना है। जो महानुभाव परमात्मपदकी अभिलाषा रखनेवाले हैं वे करोड़ों प्रकारके बाह्य तप तपें तो वो क्षण भरके लिये मन वश करें तो दोनोंका फल उनके लिये समान ही हैं। अर्थात् वे करोड़ों प्रकारके बाह्य तपोंके आचरणसे जितने कर्मोंको खिपा सकते हैं उतने ही क्षण भरके लिये मनको रोकनेसे भी खिपा सकते हैं ॥६६॥ जिन महानुभावोंने आत्माको पहिचान लिया है उन्होंने ही संसारमें सर्वोच्च तेजकी प्राप्ति कर ली है ऐसा समझ लेना चाहिये तथा उन्हींने उत्तम तप तपा है। उन्हींने उत्तम दान दिया है और उन्हींने सिद्धान्तको पढ़ा है ऐसा भी समझ लेना चाहिये ॥६७॥ जो पुरुष आत्माके स्वरूपको न समझ कर बाहिर बाहिर घूमनेवाले हैं वे संसारके सुखको ही परम सुख मानकर उसकी प्राप्तिके लिये पूर्ण प्रयत्न करत रहते हैं और वे जो भी तप तपते हैं वे

केवल शरीरको ही उससे जलाते हैं। इस प्रकार जीवतत्त्वका वर्णन कर दिया गया अजीवतत्त्वका वर्णन इस प्रकार है—पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और कालके भेदसे अजीव तत्त्व पांच प्रकारका माना है। उसमें पुद्गल द्रव्य मूर्तिमान है क्योंकि वह रूप आदि मूर्तिके गुण स्वरूप है। जो पूरा जा सके और जो गल सके वह पुद्गल द्रव्य है ऐसा भगवान जिनेन्द्रने पुद्गल द्रव्यका स्वरूप बतलाया है। शब्द बन्ध सूक्ष्मता स्थूलता आकार अन्धकार छाया आतप—सूर्यका प्रकाश, उद्योत-चंद्रमाका प्रकाश ये सब पुद्गल द्रव्यकी ही पर्यायें हैं ॥७०॥

जिस प्रकार मछलियोंके गमनमें सहायता पहुंचानेवाला जल माना गया है—बिना जलके मछलियां नहीं चल सकतीं उसी प्रकार जीव और पुद्गलोंके गमनमें सहकारी कारण धर्म द्रव्य है। जहां तक धर्म द्रव्यका सम्बन्ध रहता है वहीं तक जीव और पुद्गलोंकी गति होती है आगे नहीं होती जिस प्रकार छाया पथिक जनों को ठहरानेवाली होती है—धूपके तापसे संतप्त पथिक जिस समय किसी वृक्षकी शीतल छाया देख लेता है तो कुछ विश्रामकी अभिलाषासे उसके नीचे ठहर जाता है। यदि वृक्षकी छाया न हो तो वह ठहर नहीं सकता उसी प्रकार जीव पुद्गलोंकी स्थितिमें कारण अधर्म द्रव्य है। अधर्म द्रव्यकी सहायतासे ही जीव और पुद्गलोंकी स्थिति होती है ॥ ७२ ॥ आकाशके लोकाकाश और अलोकाकाशके भेदसे दो भेद माने हैं जीव आदि द्रव्यों को जो विशेष रूपसे अवकाश दान दे वह लोकाकाश है और उसके आगे अलोकाकाश है। व्यवहार और निश्चयके भेदसे काल द्रव्यके भी दो भेद माने हैं। द्रव्योंकी जो नई पुरानी आदि पर्यायोंके करानेमें कारण है वह व्यवहार काल है और जो असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक एक रूपसे स्थित है। रत्नों की राशिके समान जिसके अणू जुदे जुदे हैं वह निश्चय काल द्रव्य है ॥७४॥ जिसके प्रदेश आपसमें मिल सकें वह काय कहलाता है काल द्रव्यके प्रदेशोंका मिलना नहीं होता और न उनमें मिलनेकी शक्ति ही है इसलिये काल द्रव्यको अकाय माना है। जीव काल धर्म और अधर्म द्रव्य इनमें प्रत्येकके असंख्याते असंख्याते प्रदेश हैं। आकाशके प्रदेश अनन्त हैं तथा पुद्गलके संख्यात भी प्रदेश हैं असंख्यात भी प्रदेश हैं और और अनन्त भी प्रदेश हैं ॥ ७६ ॥ जीव पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश इन पांच द्रव्योंको अस्तिकाय कहते हैं काल द्रव्यकी अस्तिकाय संज्ञा नहीं। जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इन्हींमें पुण्य पाप जोड़ देनेपर नव पदार्थ हो जाते हैं। जीव और अजीव तत्वका वर्णन किया जाता है—भावास्रव और द्रव्यास्रवके भेदसे आस्रवके दो भेद हैं। तन्दुल मत्स्यके समान आत्माके क्रोध आदि भावोंसे जो कर्म आवें उन

भावोंका नाम ही भावास्रव है। अर्थात् स्वयम्भूमरण नामके अन्तिम समुद्रमें एक महामत्स्य नामका मत्स्य रहता है। जिस समय वह अपने विशाल मुखको फाड़ कर सोता है उस समय उसके मुखमें अगणित जलचर जीव आते जाते रहते हैं। उस महामत्स्यके कानमें एक तंदुल नामका मत्स्य रहता है। महामत्स्यके मुखमें इस प्रकार जीवोंको आता जाता देख वह सदा यह विचार करता रहता है कि देखो यह महामत्स्य बड़ा मूर्ख है। इसके मुखमें इतने जीव अपने आप आते जाते हैं तब भी यह निकल जाने देता है यदि यह मुंह बन्द कर लेवे तो सबके सब इसके पेटमें जा सकते हैं परन्तु यह ऐसा नहीं करता यदि मैं ऐसा होता तो सबोंको पेटमें रख लेता। यद्यपि वह तंदुल मत्स्य किसी जीवको सताता नहीं तथापि वह इस प्रकारके निन्दित विचार करता रहता है इसलिये उन निन्दित विचारोंसे सदा उसके कर्मोंका आस्रव होता रहता है उसी प्रकार चाहें हिंसादि पांच पाप किये जांय आत्माके अन्दर जो क्रोध आदि भावोंकी उत्पत्ति होती है उन क्रोध आदि भावोंका ही नाम भावास्रव है ठीक ही है जो कार्य भावोंसे किया जाता है वह दृढ़ होता ही है यहाँ पर मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योगोंके द्वारा कर्मोंका आना होता है इसलिये मिथ्यात्व आदि भावोंका ही नाम भावास्रव है तथा मिथ्यात्व अविरति योग कषाय और प्रमादके द्वारा जो द्रव्य कर्म आते हैं उन द्रव्य कर्मोंका नाम द्रव्यास्रव है। द्रव्यकर्म जिस समय आता है वह ज्ञानावरण आदि समूह स्वरूप आता है इसलिये ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और अन्तराय ये आठ द्रव्य कर्मके भेद हैं। ये आठ प्रकारके द्रव्य कर्म ही द्रव्यास्रवके आठ भेद माने हैं॥ ८१॥ द्रव्य बंध और भाव बंधके भेदसे बंध भी दो प्रकारका माना है। जिन मिथ्यात्व अविरति आदि दुर्भावोंके द्वारा कर्म बंधते हैं उन दुर्भावोंका नाम तो भावबंध है एवं कर्म और आत्माके प्रदेशोंका जो एक क्षेत्रावगाहरूप आपसमें मिलना है वह द्रव्य बंध कहा गया है! वह बंध तत्त्व चार प्रकारका माना है प्रकृतिबंध अनुभागबंध स्थितिबंध और प्रदेशबंध। इस बंधका छूटना बड़ी कठिनतासे होता है। इन चारों प्रकारके बंधोंमें प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध तो योगोंके द्वारा होते हैं और अनुभाग एवं स्थितिबन्ध कषायोंके द्वारा होते हैं ऐसा भगवान जिनेन्द्रने कहा है॥ ८५॥ द्रव्य संवर और भावसंवरके भेदसे संवर तत्त्व भी दो प्रकारका माना है। व्रत गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा चारित्र और परीषह-जय रूप आत्माके भावोंसे जो आस्रवके द्वारा आये हुए कर्मोंका रुकना है उन व्रत गुप्ति आदि भावोंका नाम भावसंवर है। यह भाव संवर संवर स्वरूप है अर्थात् किवाड़ लगा देनेपर जिस प्रकार भीतर महलमें प्रवेश

नहीं किया जाता उसी प्रकार जिस समय यह आत्मा संवर स्वरूप परिणत हो जाता है उस समय आत्मारूपी महलके अन्दर कर्मोंका भी प्रवेश नहीं होता तथा द्रव्यास्त्रवसे जो द्रव्यरूप कर्म आते हैं उन द्रव्य कर्मोंका व्रत गुप्ति समिति आदिके द्वारा जो रुक जाना है वह द्रव्य संबर है अर्थात् व्रत गुप्ति आदिके द्वारा मिथ्यात्व अविरति आदि भावोंका रुकना तो भाव संबर है और द्रव्यरूप कर्मोंका रुकना द्रव्य संबर है ॥ ८८ ॥ सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जरा भी दो प्रकारकी मानी है। अपने आप फल देकर कर्मोंका खिर जाना सविपाक निर्जरा कहलाती है प्रत्येक संसारी जीवके कर्म प्रतिक्षण फल दे देकर खिरते रहते हैं इसलिये सविपाक निर्जरा तो संसारी जीवोंके प्रतिक्षण होती रहती है। तथा तप आदिके द्वारा जबरन कर्मोंका झड़ाना अविपाक निर्जरा हैं। यह तप आदिके आचरण करनेपर होती है द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्षके भेदसे मोक्ष तत्त्व भी दो प्रकारका माना है। गुप्ति आदि आत्माके भावोंके द्वारा समस्त कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाना भाव मोक्ष है तथा ध्यान जप मनका वश करना, और उग्र तपोंके द्वारा जो द्रव्य कर्मोंकी आत्मासे जुदाई कर देना है वह द्रव्य मोक्ष है ऐसा केवल ज्ञानी भगवान जिनेन्द्रका सिद्धांत है ॥ ९१ ॥ जिन महानुभावोंके परिणाम पवित्र रहते हैं उनके तो उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होती है और जिनके निंदित परिणाम रहते हैं उनके पापोंकी उत्पत्ति होती है। साता रूप सुख उत्तम नाम उत्तम गोत्र और उत्तम आयु इनकी, पुण्यसे प्राप्ति होती है और पापसे असाता रूप दुःख निन्दित नाम गोत्र और आयुकी प्राप्ति होती है एवं पापके उदयसे नरकगतिमें जाना पड़ता है इस प्रकार भगवान बिमलनाथने द्रव्य तत्त्व और पदार्थोंका बिस्तारसे उपदेश दिया ॥ ९३ ॥

इसके बाद भगवान बिमलनाथने मोक्ष मार्गका वर्णन किया जिसकी कि सिद्धि ध्यानसे है और उस ध्यानके बिना मोक्षकी प्राप्ति ही नहीं हो सकती। भगवान बिमलनाथने कहा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्षके कारण हैं जो आत्मा निश्चयनयसे सम्यग्दर्शन आदि स्वरूप हो जाता है वह ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंसे रहित हो जाता है जिस प्रकार डाढोंसे रहित सिंह हाथियोंके विध्वंस करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता उसी प्रकार ध्यानके बिना योगी भी कर्मोंके नाशकी सामर्थ्य नहीं रखता। कर्मोंका नाश ध्यानके द्वारा ही हो सकता है ॥९६॥ आर्तध्यान रौद्र ध्यान धर्म्मध्यान और शुक्ल ध्यानके भेदके ध्यानके चार भेद माने हैं। इनमें आर्त और रौद्र ये दो ध्यान अप्रशस्त हैं इसलिये ये छोड़ने योग्य है। धर्म्म और शुक्ल ये दो ध्या प्रशस्त ध्यानन हैं एवं ये दोनों मुक्तिरूपी कल्याणके प्रदान करनेवाले और परम हितकारी हैं ॥ ९७ ॥

पुत्र स्त्री और भोजन आदिका चिन्तवन करना अर्थात् ये मुझे कब मिलेंगे और कैसे मिलेंगे इस प्रकारका बिचार करना आर्तध्यान कहा जाता है। दूसरे जीवोंके बांधने मारने आदिका विचार करना रौद्र ध्यान कहा जाता है। सूत्रके अर्थका श्रवण करना, व्रतोंके ग्रहण करनेकी भावना भाना एवं दान तथा तपके आचरणकी भावना भाना धर्म्यध्यान कहा जाता है। तथा जिस ध्यानमें समस्त संकल्प विकल्पोंसे रहित और निर्मल आत्माके स्वरूपका चिन्तवन किया जाता है वह शुक्ल ध्यान है। समस्त परिग्रहोंसे रहित मुनिगण इस ध्यानका आचरण करते हैं ॥ ९९ ॥ पर्वत गुफा मरघट खालार मठ मन्दिर और शून्य स्थानोंमें शिलाओंपर बैठनेसे ध्यानकी सिद्धि होती है। पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ और रूपातीतके भेदसे भा ध्यानके चार भेद माने हैं। ध्यानी पुरुषको चाहिये कि वह समस्त आरंभोंसे रहित होकर और मनको स्थिर कर ध्यानकी आराधना करै ॥ १०१ ॥ जिसकी कांतिकी छटा चारों ओर छटक रही है और जो सर्यके तेजके समान देदीप्यमान है ऐसे अपने आत्मस्वरूपका जो नाभि कमलके मध्यभागमें चिन्तवन करना है वह पिण्डस्थ नामका ध्यान है। तथा मालके मध्यभागमें वा करोंके मध्यभागमें हृदयमें वा गलेके मध्यभागमें जो अपने आत्मस्वरूपका चिन्तवन करना है वह भी पिण्डस्थ नामका ध्यान कहा जाता है ॥ १०३ ॥ जो योगी 'अर्हं' ऐसे पदका सदा ध्यान करते हैं उनका वह ध्यान पदस्थ ध्यान माना जाता है। अथवा 'ओं' इत्यादि एक अक्षर स्वरूप ध्यानका नाम भी पदस्थ ध्यान है ॥ १०४ ॥ जिस ध्यानमें आठ प्रातिहार्य आदि महिमासे विराजमान शुक्ल वर्णके धारक और कर्म रहित भगवान अर्हंतके स्वरूपका चिन्तवन किया जाता है वह रूपस्थ ध्यान कहा जाता है ॥ १०५ ॥ काम बिकार राग द्वेष मन बचन कायकी कुटिलता मत्सरता ममता शरीरका संस्कार धन धान्य और कषाय आदिके व्यापारसे रहित होकर एवं समस्त परिग्रहसे बिमुख न मैं किसीका हूं और न कोई मेरा है' ऐसा पूर्ण विचार कर जिस ध्यानके अन्दर 'सोऽहं, वह मैं हूं' ऐसा ध्यान किया जाता है वह रूपातीत नामका ध्यान है ॥ १०६ ॥ यह रूपातीत ध्यान अत्यन्त कल्याणकारी है। शांतिमय है। वास्तविक है। समस्त प्रकारकी भ्रांतिओंसे रहित है। अमृतपानके समान आनन्ददायी है और शरद कालकी चांदनीके समान शांति प्रदान करनेवाला है। जिसका चित्त अर्हं शब्दसे व्याप्त है ऐसा जो योगी इस निश्चय ध्यानका आराधन करता है उसे संसारमें नहीं रुलना पड़ता वह मोक्ष सुख प्राप्त कर लेता है ॥ १०८ ॥ इन चारों प्रकारके ध्यानोंमें आर्तध्यानसे तिर्यञ्च गति मिलती है। रौद्र ध्यानसे नरक गतिमें जाना पड़ता है। धर्म्यध्यानसे स्वर्ग और शुक्ल ध्यानसे मोक्ष धाम प्राप्त होता है ॥ १०९ ॥ इस प्रकार धर्मोपदेशके

बाद भगवान विमलनाथने कहा--इस प्रकारके तत्त्वोंके स्वरूप पर श्रद्धान करनेसे सम्यक्त्व निर्मल होता है। सम्यक्त्वकी निर्मलतासे समस्त कर्मोंका क्षय होता है एवं जिस समय समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं उस समय यह आत्मा निरंजन-परमात्मा बन जाता है। जो पुरुष मनीषी-विद्वान हैं उन्हें अपने आत्मकल्याणकी अभिलाषासे सदा तत्त्व आदिकी कथा करते रहना चाहिये क्योंकि यदि अन्तमुहूर्त पर्यंत भी उत्तम ध्यान आचरण कर लिया जाता है तो उस ध्यानसे देखते देखते करोड़ों कर्मोंका क्षय हो जाता है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार मेरु और मंदिर नामके राज पुत्रोंने उत्तम भावोंसे भगवान विमलनाथके समवसरणमें तत्त्वामृत रसको आस्वादन किया जिसकी कि लालसा बड़े बड़े देवोंके इन्द्र रखते हैं। जो भगवान जिनेन्द्रके मुखरूपी समुद्रसे उत्पन्न है। जो प्रशस्त है। भव्य जीवोंके स्वादने योग्य है। समस्त मनुष्योंको आनन्द प्रदान करनेवाला है और दुर्गतियोंका नाशक है तथा कामदेवके समान सुन्दर और कोमल परिणामी वे दोनों राजपुत्र उस तत्वामृतरसके आस्वादनसे बड़े ही आनंदित हुए। तथा कमलके समान विशाल नेत्रोंके धारक अनेक गुणोंके भंडार एवं धीर वीर चित्तके धारक वे मेरु और मंदिर नामके राजकुमार भगवान विमलनाथके मुखसे जायमान धर्मका स्वरूप अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण कर अपने अपने राजमहल लौट आये ॥ ११४ ॥

वृहद्विमलनाथ पुराणमें समवसरणकी रचना मेरु और मन्दिर नामके राजकुमारोंका आगमन वर्णन करनेवाला पांचवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा सर्ग।

जो भगवान आदिनाथ वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं। भरत क्षेत्रके आदि तिर्थंकर है। कैलाश पर्वतसे जिन्होंने मोक्षको पाया है। करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाके धारक हैं एवं चकोर पक्षी जिस प्रकार चन्द्रमाकी ओर टकटकी लगाये रहता है उसी प्रकार भव्य जीव जिनकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं ऐसे श्रीआदिनाथ भगवानको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ दूसरे दिन पुनः वे दोनों भाई मेरु और मंदिर प्रातःकाल बहुत जल्दी सोकर उठ गये एवं बड़े ठाट बाट और विभूतिके साथ भगवान जिनेंद्रकी बंदनाके लिये चल दिये। भगवान विमलनाथ उस समय रत्नमयी सिंहासनपर विराजमान थे। दोनों भाइयोंने अनेक प्रकारके मनोहर गद्य पद्योंमें भगवान विमलनाथके चरण कमलोंकी स्तुति की एवं सुख पूर्वक मनुष्य कोठेमें जाकर बैठ गये ॥ ३ ॥ वे भगवान विमलनाथ उस समय महा कांतिसे शोभायमान थे और समस्त प्रकारके द्वंदोंसे रहित

थे। कमलकी प्रभाके समान शोभायमान राजा मेरुने अवसर पाकर भगवान जिनेंद्रसे इस प्रकार बड़े आदरसे
पूछा—भगवन् ! आप समस्त प्रकारके कर्मों के नाश करनेवाले हो। सबोंके स्वामी हो। बड़े बड़े इन्द्र भी आपके
चरण कमलों को पूजते हैं स्वामिन् ! मैं अपने भाई मन्दिरका पूर्वभवका वृत्तांत सुनना चाहता हूँ कृपाकर
कहिये। वे भगवान जिनेंद्र चन्द्रमाके सम्बन्धसे लहलहाते हुए विशाल समुद्रके गंभीर शब्दके समान दिव्य
ध्वनिके धारक थे और भव्यरूपी कमलों के प्रकाशनेके लिये सूर्यस्वरूप थे। राजा मेरुका इस प्रकारका प्रश्न सुन
उन्होंने उत्तरमें कहा—राजन् ! इस समयका तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उत्तम है। असंख्या जीवोंको सुख प्रदान
करनेवाला है। तुम निश्चय समझो तुम और मंदिर दोनों इस भवसे मोक्ष पाओगे। मंदिरके पूर्वभवके वृत्तांत
को तुम आदर पूर्वक सुनो क्योंकि तुम एक मनीषी पुरुष हो किन्तु जो पुरुष अन्तरंगमें सार रहित मनीषी नहीं
होते उन्हें कितना भी उत्तम उपदेश क्यों न दिया जाय वह उनको बड़ा दुःखदायी जान पड़ता है क्योंकि
मलयागिरि चन्दनके सम्बंधसे जिस प्रकार अन्य वृक्ष तो चन्दन स्वरूप हो जाते हैं परंतु बांसका वृक्ष चन्दन
स्वरूप परिणत नहीं होता उसी प्रकार जो पुरुष अंतःसार विहीन है कुछ भी मनीषिता नहीं रखते उनकी बुद्धि
पर भी धर्मोपदेशका असर नहीं पड़ता ॥ ६ ॥ असंख्याते द्वीपों के मध्यभागमें एक जम्बूद्वीप नामका विशाल
द्वीप है जो कि समस्त द्वीपों का राजा सरीखा जान पड़ता है तथा जम्बूवृक्षसे ही उसका जम्बूद्वीप यह प्रसिद्ध
नाम है। जम्बूद्वीपके ठीक मध्य भागमें मेरु नामका पर्वत है जो कि चित्र विचित्र रत्नों की प्रभासे देदीप्यमान
है एवं उसका तट बड़े बड़े विशाल मंदिरों से व्याप्त हैं। मेरु पर्वतकी पृथ्वीपर देवांगनाओंके स्तन संघट्टनों की
सदा प्रतिबिम्ब पड़ती रहती हैं इसलिये देवगण वा जो पुरुष स्वस्थ है—विषय भोगों से रहित हैं वे भी उस
पृथ्वीसे विरक्त नहीं होते उस पृथिवीपर विहार करना आनंदप्रद समझते हैं यह बात लोक प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥
मेरु पर्वतकी पश्चिम श्रेणिमें विदेह नामका एक विशाल क्षेत्र है और उसका नाम विदेह सार्थक है क्योंकि वहां
तपों के द्वारा मनुष्य विदेह-देहरहित सिद्ध परमात्मा बन जाते हैं। वहां पर शीतोदा नामकी विशाल नदी बहती
है जिसका कि तलभाग अगाध है और जिसके दोनों पसवाड़े विशाल सौ मंदिरों से शोभायमान है। शीतोदा
नदीके उत्तर तटपर गंध मालिनी नामका एक विशाल देश है। वहां पर अपनी अपनी देवांगनाओं के साथ सदा
देवों का आना जाना बना रहता है इसलिये सदा उसकी पृथ्वी रमणीक बनी रहती है। गंधमालिनी देशके वृक्ष
सदा अनेक प्रकारके पुष्प और फलों से व्याप्त रहते हैं सदा उनपर कोयल भ्रमर और मयूरों के महा मनोहर

शब्द हुआ करते हैं और मदोन्मत्त हाथी सदा उन्हें कंपित करते रहते हैं। गंधमालिनी देशके गांव करोड़ों धान्य और ईखोंके खेतोंसे व्याप्त रहते हैं तथा पदपद पर वहां पर विद्यमान हैं जो कि भ्रमरोंसे युक्त कमलोंसे व्याप्त रहते हैं ॥ १७ ॥ वहांके पर्वत ध्यानारूढ़ मुनियोंके चरणोंसे सदा पवित्र बने रहते हैं और लवली नामकी लताओंके पुष्पोंकी सुगंधिसे सदा वहांकी पवन सुगंधित बहती रहती है। वहां पर बसंत ऋतुकी शोभा मनोहर स्त्रीके समान अत्यंत शोभायमान थी क्योंकि स्त्री जिस प्रकार वस्त्र पहिनती है उसी प्रकार बसंत ऋतुको शोभा भी फूले हुए कमलरूपी वस्त्र पहिने थी। स्त्रीका मुख होता है उसी प्रकार बसंत ऋतुकी शोभा भी कमलरूपी मुखोंसे शोभायमान थी। स्त्रीके नेत्र होते हैं उसी प्रकार चलते फिरते भौंरे ही उस बसंतकी शोभाके नेत्र थे। स्त्री जिस प्रकार सुन्दर वेशसे शोभायमान रहती है उसी प्रकार बसंत ऋतुकी शोभा भी जल वा तरङ्ग रूपी सुन्दर वेशसे शोभायमान थी ॥ १९ ॥

गन्धमालिनी देशके अंदर एक बीतशोक नामका नगर है जो कि अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त है। जिनके अन्दर बड़े बड़े गोपुर खास दरवाजे शोभायमान हैं ऐसे बिस्तीर्ण परकोटोंसे व्याप्त है अतएव वह स्वर्ग-पुरीके समान जान पड़ता है। बीत शोक नगरके विशाल जिनमंदिर जो कि अपनी ऊंचाईसे आकाश मंडलको स्पर्शते थे अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे तथा उनके ऊपर पताकायें फरहराती रहतीं थीं इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों भव्य जीवोंको ये बुला रहे हैं। उस नगरके निवासी सज्जन धर्म कार्यों में पूर्ण धैर्य रखनेवाले थे। तपके आचरणमें बड़े धीर वीर थे अत्यंत दानी कृपालु विद्वान सुन्दर और शूर वीर थे ॥२२॥ अनेक धनि-कोंसे व्याप्त उस बीत शोक नगरका स्वामी राजा वैजयंत था जो कि अत्यंत दानी था। प्रजाका न्याय पूर्वक पालन करनेवाला था। शास्त्रके मर्मका पूर्णज्ञाता था एवं शत्रुओंकी लक्ष्मीका हरण करनेवाला था। अपने प्रताप से उसने समस्त राजा लोग वश कर रक्खे थे। अनेक कलाओंका वह भंडार था एवं जिस प्रकार समुद्र मीन और रत्नोंका स्थान होता है उसी प्रकार वह राजा भी क्रूरता और सोमता रूपी गुणोंका स्थान था ॥२४॥ राजा वैजयंतकी बहुत सी रानियां थीं जो कि परम सुन्दरी थीं। अमृतकी साक्षात् समुद्र थीं। गजगामिनी पवित्र बुद्धिकी धारक और विमल थीं। राजा वैजयंतकी पटरानीका नाम सर्वश्री था जो कि साक्षात् लक्ष्मी वा सूर्यकी स्त्री प्रभा वा रम्भा सरीखी जान पड़ती थी। एवं वह चतुरता रूप और लावण्यकी समुद्रस्वरूप थी वह स्थूल स्तनोंके भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थी, कृशोदरी थी। स्थूल और भारी नितम्बोंके कारण धीरे धीरे चलने वाली थी

एवं हरिणीके समान चंचल नेत्रोंसे शोभायमान थी। इन्द्र और इन्द्राणीके समान इच्छानुसार सुख भोगनेवाले राजा वैजयंत और रानी सर्वश्रीके दो पुत्र हुए जो कि अत्यन्त मनोहर थे कामदेवके समान सुंदर थे। कमलके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे ॥ २८ ॥ प्रथम पुत्रका नाम संजयंत था जो कि समस्त उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक था तथा दूसरा पुत्र जयंत था जो कि अपने गुणोंसे समस्त पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध था। दोनों ही पुत्र विद्वत्तामें शुक्र और बृहस्पतिकी शोभा धारण करते थे। वे दोनों कुमार बाल चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ते रहते थे। बाल अवस्थामें ही उन्होंने समस्त विद्याओंका अभ्यास कर लिया था एवं वे शास्त्र विद्यारूपी स्त्रीके पति थे—पूर्ण शास्त्र कलाके जानकार थे ॥ ३० ॥ प्रतापी दोनों पुत्रोंके साथ राजा वैजयंत दुर्जय शत्रुओंका अगम्य था। एवं प्रतापी सूर्यके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक वह अपने राज्यका पूर्णरूपसे भोग करता था ॥ ३१ ॥ वीतशोक नगरके समीपमें एक अशोक नामका विशाल उद्यान था जो कि भांति भांतिके वृक्षोंसे व्याप्त था। अनेक देवोंके साथ तहां विहार कर भगवान् विमलनाथ उस उद्यानमें आकर विराज गये। कुमार संजयत और जयंतको भगवान जिनेंद्रके आनेका समाचार मिल गया। शीघ्र ही लक्ष्मीके समुद्र स्वरूप वे दोनों भाई हाथियोंपर सवार हो गये और बड़े ठाट बाटके साथ भगवान जिनेंद्रको बन्दनाके लिये चल दिये। दोनों कुमारोंके ऊपर छत्र ढुलते जाते थे जो कि अपनी उग्र दीप्तिसे सूर्यकी दीप्तिको दबानेवाले थे ॥ ३३ ॥ भगवान स्वयम्भूको दूरसे ही देखकर वे दोनों राजकुमार हाथीसे उतर गये। पासमें जाकर भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दीं। नमस्कार किया। मनोहर गद्य पद्योंमें स्तुति की और अपने योग्य स्थानपर जाकर बैठ गये।३४। भगवान जिनेंद्र उस समय उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंका स्वरूप निरूपण कर रहे थे और संसारकी अनित्यताका उपदेश दे रहे थे जिसे सुनकर संजयंत और जयंत दोनों ही संसारसे विरक्त हो गये ठीक ही है सज्जनोंकी कुशलता यही कहलाती है। राजा वैजयंतने जब अपने पुत्रोंकी संसारसे विरक्त देखा तो उसका भी मोह संसारमें शिथल पड़ गया और वह अपने मनमें इस प्रकार बिचार करने लगा—

युवा होकर भी जो विषय भोगोंसे विरक्त हो तप आचरण करते हैं संसारमें वे ही धन्य है। मुझ सरीखे पापियोंके लिये धिक्कार है जो कि अपनी वृद्धा अवस्थाको युवावस्था मान रहे हैं अर्थात् यह अवस्था धर्म साधनकी है उसे भोगविलासोंमें बिता रहे हैं। इन्द्रके पुत्रके समान और कामके समान सुन्दर ये दोनों कुमार तो दिगम्बरी दीक्षा धारण करें और मैं वृद्धावस्थामें भी राज्यके फांसेमें फँसा रहूँ मुझसे बढ़कर संसारमें कोई मूर्ख

नहीं। बस इस प्रकार बहुत देरतक अपने मनमें विचार कर राजा वैजयन्तका चित्त संसारसे विरक्त हो गया। कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको राजा वैजयन्तने अपने पोते कुमार संजयन्तके पुत्र वैजयन्तको प्रदान कर दिया और वह समस्त परिग्रहका सर्वथा त्याग कर दोनों पुत्रके साथ शीघ्र ही दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥४०॥ मुनिराज वैजयन्तने अप्रमत्त नामक सातवें गुण स्थानमें प्राप्त होकर समस्त प्रमादोंका सर्वथा नाश कर दिया एवं अपने चारित्रकी शुद्धिका वे विशेष रूपसे प्रयत्न करने लगे। क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थानमें उन्होंने समस्त कषायोंका सर्वथा नाश कर दिया। विशिष्ट तपके बलसे उन्होंने तर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया और उन्हें अन्तरमुहूर्तमें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। मुनिराज वैजयन्तको केवल ज्ञानकी प्राप्तिका ज्ञान होते ही उनके केवल ज्ञानका उत्सव मनानेके लिये शीघ्रही इन्द्र आ गये। उस समय समस्त इन्द्रोंके मुखोंसे जय जय-कार शब्द निकलता था और सबके सब प्रबल भक्तिके स्रोतमें मग्न थे ॥४३॥ गुणोंके समुद्र परम तपस्वी प्रबल कांतिके धारक वस्तु स्वरूपके जानकार क्षमारूपी भूषणसे शोभायमान एवं शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी उन संजयन्त और जयन्त नामके मुनियोंने भी अपने पिताको केवल ज्ञान हुआ सुना इसलिये वे भी तत्काल मुनि-राज वैजयन्तकी बन्दनाके लिये आ गये। चौदह करोड़ देवोंसे व्याप्त अतिशय मनोहर शरीरका धारक धरणेंद्र भी जिनराज वैजयन्तके केवल ज्ञान उत्सवमें शामिल हुआ था। धरणेन्द्रके मनोहर रूपको देखकर मुनिराज जयन्त एकदम निर्बुद्धि हो गये। मोहनीय कर्मके तीव्र उदयसे उनकी स्त्री आदिमें लालसा फटकने लगी इस-लिये तीव्र तपके तपनेके बाद यह उन्होंने निदान नामकी शल्य बान्ध ली—'चिरकाल पर्यन्त तपे गये तपका यदि आदरपूर्वक मुझे फल प्राप्त हो तो मैं महान अभ्युदयका स्वामी धरणेन्द्र बनूं' बस आयुके अन्तमें मरकर वे महान ऋद्धिके स्वामी और शुभ चित्तके धारक धरणेन्द्र हुए। उनका मुकुट नागके भारसे शोभायमान था और सूर्य चन्द्रमाके समान उनकी अद्वितीय प्रभा थी ॥५०॥ ग्रन्थकार निदान शल्यकी निन्दा करते हुए कहते हैं कि जब उग्र तपके प्रभावसे मोक्ष तक प्राप्त हो जाती है तब उससे धरणेन्द्र पदका मिलना कठिन नहीं क्योंकि यह संसार प्रसिद्ध बात है कि बहुमूल्यकी वस्तुसे थोड़े मूल्यकी वस्तुका मिलना कठिन नहीं है। उग्र तपका तपना बहुमूल्य वस्तु है और धरणेन्द्र पदकी प्राप्ति थोड़े मूल्यकी वस्तु है। इसलिये मुनिराज जयन्तका उस प्रकारका निदान एक निन्दित निदान था।

मुनिराज जयन्तके धरणेन्द्र हो जानेके बाद वे योगिराज संजयन्त पृथ्वीमण्डल पर विहार करने लगे। सूर्य

की ओर मुखकर परमात्माके स्वरूपका ध्यान करते हुए पर्वतोंकी शिलाओंपर स्थिर होकर घोर तप तपने लगे ॥५२॥ वे मुनिराज संजयन्त चेतन अचेतन एवं चेतनाचेतन तीनों प्रकारकी परिग्रहसे रहित थे जिस समय वे ध्यानरूढ़ निश्चल होते थे उस समय वे निश्चल मेरु पर्वतके समान जान पड़ते थे। समस्त प्रकारकी वाह्य क्रियाओंसे रहित थे। वे सदा परमात्माका ध्यान करते रहते थे इसलिये उनके चित्तकी वृत्ति रुकी रहती थी और वे पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपके पूर्ण जानकार थे। यह निश्चय है कि जहांपर वस्तुके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो जाता है वहांपर विशेष संसारमें नहीं रुलना पड़ता किन्तु जिस प्रकार बज्रसे विशाल भी पर्वत चूर चूर हो जाता है उसी प्रकार शुक्ल ध्यानके द्वारा बलवान भी कर्मरूपी पर्वत खण्ड खण्ड हो जाता है ॥ ५४ ॥

एक दिनकी बात है कि वे मुनिराज संजयन्त पर्वतके अग्र भागपर विराजमान थे। ध्यानकी कृपासे उनके दोनों नेत्र निश्चल थे, चित्तमें परमात्माका चिन्तवन कर रहे थे। मनोहरपुरके उद्यानमें एक भीमारण्य नामका बन था उसमें प्रतिमा योगसे वे ध्यानारूढ़ थे उसी समय एक विद्युइंष्ट्र नामका विद्याधर विमानमें बैठकर उनके ऊपरसे निकला। मुनिराज संजयन्तके साथ उसका पूर्व भवका बैर था इसलिये पूर्व भवके बैरके सम्बन्धसे उसे शीघ्र ही जाति स्मरण हो गया। पूर्व भवके बैरसे मारे क्रोधके वह भवल गया एवं परम ध्यानी उन मुनिराज को वह पत्थर मुक्का लाठी और धक्कोंसे मारने लगा। मेरु पर्वतके समान निश्चल उन मुनिराजको मारनेकी इच्छासे दुष्ट विद्याधरने अपने विद्याबलसे आकाशमें उठा लिया और शीघ्र ही लेकर चल दिया।

इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक विजयार्ध नामका विद्याधर पर्वत है जो कि चाँदीके समान सफेद वर्णका है। विजयार्ध पर्वतकी पूर्व दिशामें कुसुमवती, हरिवती, सुवर्णवती, गजवती और चन्द्रवेगा नामकी पांच नदियोंका समागम है। दुष्ट विद्याधरने उन्हीं पांचों नदियोंके समागमके आगाध जलमें परम पवित्र मुनिराज संजयन्तको ले जाकर पटक दिया। वह निर्दयी मुनिराजको पटक कर अपने नगरमें आ गया। भेरी बजाकर समस्त विद्याधरोंको इकट्ठा कर लिया और उनसे इस प्रकार कहने लगा—विशाल शरीरका धारक मनुष्योंका खानेवाला राक्षस यह महापापी है। हम सब विद्याधरोंको एक एक कर खानेके लिये यहांपर स्थित है। निर्दयी सर्व भक्षी और हम सबोंको खानेकी अभिलाषा रखनेवाले इस दुष्टको वाण खड्ग आदि शस्त्रोंसे हम सबोंको मिलकर मार डालना चाहिये। इसका तुम रञ्चमात्र भी विश्वास मत करो मैं जो कहूं उसे ठीक समझो तुम निश्चय समझो रात्रिमें यह स्त्री बालक और पशुओंको नियमसे खा लेगा। मेरे हितकारी बचनों पर तुम सब

लोगोंको पूर्ण विश्वास करना चाहिये मैं मिथ्या नहीं बोल सकता क्योंकि इसके साथ मेरा कोई खास बैर नहीं
है ॥ ६७ ॥ दुष्ट विद्युदंष्ट्रके बचनोंका मूर्ख विद्याधरों पर प्रभाव पड़ गया मृत्युके भयसे जिनका चित्त चल
विचल है ऐसे वे समस्त विद्याधर अपने अपने शस्त्रोंको लेकर शीघ्र ही नगरसे निकल पड़े। वे दुष्ट पास जाकर
मुनिराज संजयन्तको एक साथ बड़े उत्साहसे नीचेसे ऊपर तक पत्थर लाठी मुक्के और अनेक शस्त्रोंसे एक
साथ मारने लगे ॥६८॥ रोहिणी (भाद्रपद मासकी ?) कृष्ण चतुर्दशी जो कि अनेक गुणोंके विकाशका स्थान
है और तीनों लोकके इन्द्र जिसकी पूजा करते हैं उस दिन मुनिराज संजयन्तने अपने परिणामोंमें उत्कृष्ट सीमाकी
समता धारण कर ली एवं अनेक प्रकारके कष्टोंको अनेक प्रकारका आनंद मान वे आनंदमय होगये,ठीकही है जिन पुरुषोंका
चित्त धीर वीर है उनके लिये घोर आपत्ति भी उत्सव स्वरूप हो जाती है। परम पवित्र मुनिराज संजयंतने जिस
प्रकार काष्ठसे अग्नि जुदी कर दी जाती है कोषखोलसे तलवार और दूधसे घी पृथक् कर दिया जाता है उस
प्रकार अपनी आत्माको देहसे सर्वथा जुदा समझ लिया। दुष्ट विद्युदन्ष्ट्र द्वारा किये गये सारे उपसर्गको उन्हों
ने सह लिया। उपसर्गोंके समय उन्होंने अपना शरीर वज्रके समान कठोर बना लिया। पर्वतके समान वे
निश्चल बने रहे जिससे विशुद्ध बुद्धिके धारक वे मुनिराज शुक्लध्यानके बलसे मोक्ष सुखके पात्र बन गये। उन
पूज्य मुनिराजने ममता और शरीरसे रहित अतीन्द्रिय मोक्ष—पद प्राप्त कर लिया। पवित्र धर्मकी कृपासे वे
जन्म जरा मरण रहित हो गये एवं कर्मोंके सर्वथा नष्ट हो जानेसे वे तत्क्षण सिद्धालयमें जाकर विराज गये
इसलिये सब लोगोंके नेत्रोंके अगोचर हो गये ॥७४॥ सिद्धगण सूक्ष्म अव्याबाध जो निज गुण हैं उनके स्थान
एवं सूक्ष्म सूक्ष्म जो पुद्गलोंका भेद होता है उससे भी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं इसलिये जहांपर एक सिद्ध
आत्मा रहता है वहीं पर अनन्तानन्त सिद्ध रहते हैं। सुईकी अणीके समाय कन्दमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं
ऐसा शास्त्रका उपदेश है। यदि वे अनन्तानन्त जीव स्थूल शरीर धारण करलें तो असंख्या प्रदेशी लोकाकाश
में भी न समाकर वे अलोकाकाश तक चले जा सकते हैं इसलिये जीव तत्त्वको सूक्ष्मातिसूक्ष्म बतलाया गया
है। यदि जीव तत्त्वको सूक्ष्मातिसूक्ष्म न माना जायगा तब सिद्ध जीवोंको भी संख्यात मानना होगा। उससे
मोक्ष स्थानके भर जानेसे मोक्षकी हो समाप्ति हो जायगी—किसीको भी मोक्ष न होगी एवं मोक्षकी कारण
स्वरूप धार्मिक क्रियाओंका सर्वथा नाश हो जायगा इसलिये कर्मोंके सर्वथा नष्ट हो जानेसे स्वभावसे ही जीव-
तत्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म है परन्तु मोक्ष स्थान छोटा नहीं हो सकता किन्तु कितने भी मुक्त जीव क्यों न जांय उन

सर्वोंका उसमें समावेश हो जाता है ॥ ७६ ॥

मुनिराज संजयन्तने घोर उपसर्ग सहकर जब मोक्ष प्राप्त कर ली उस समय अपने अपने वाहनों पर चढ़कर शीघ्र ही समस्त देव उनके निर्वाण कल्याणकी पूजाके लिये आ गये। मुनिराज संजयन्तके निर्वाण कल्याणकी खुशीमें चारों निकायोंके देव आनन्द नृत्य करने लगे। मुनिराज संजयन्तके गुणोंका गान करने लगे। मुनिराज संजयन्तके निर्वाण उत्सवमें उनके छोटे भाई मुनिराज जयन्तका जीव नाग कुमारोंका इन्द्र भी आया था वह वार बार अपने बड़े भाईकी मूर्तिका स्मरण करने लगा। अवधि ज्ञानके बलसे उसे इस बातका भी पता लग गया कि विद्युदंष्ट्र आदि दुष्ट विद्याधरोंने मुनिराज संजयन्तको विशेष त्रास दिया है जिससे उसका हृदय मारे क्रोधके भवल गया। शीघ्र ही उसने नाग पाशसे समस्त विद्याधरोंको बांध लिया। प्रबल क्रोधसे उसके दोनों नेत्र लाल हो गये एवं महा भयप्रद बाण स्वरूप वचनोंसे समस्त विद्याधरोंको नाड़ता हुआ वह इस प्रकार कहने लगा—रे दुष्ट विद्याधरो ! मेरे बड़े भाई संजयन्त मुनि अहङ्कार रहित निर्मल शांत और दृढ़ ध्यानी थे तुम सबोंने मिलकर उन्हें क्यों मारा ? तुम लोग शीघ्र कहो तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया था। दुष्टो ! तुम लोगोंने मेरे भाईको मारकर मेरा घोर अपराध किया है। तुम समस्त विद्याधर मेरे पूज्य भाईके मारनेवाले दुष्ट हो। तुम्हें नागपाशके वज्र प्रहारसे शीघ्र ही मारूंगा इसमें कोई संशय नहीं ॥ ८६ ॥ एक काकका यदि कोई पुरुष मार देता है तो उस मारनेवालेको अन्य काक पूर्ण कोलाहल मचाकर अपनी चोचोंके घातोंसे जब मार डालते हैं। तब जो पुरुष मेरे समान समर्थ हैं वे कैसे बैरियोंको सह सकते हैं ? वे तो कभी बैरियोंसे बदला चुकाये बिना मान नहीं सकते। बस इस प्रकार उन दुष्ट कार्यके करनेवाले समस्त विद्याधरोंको नाग कुमारोंके इन्द्रने बेहद डांटा एवं उन दुष्टोंके विषयमें वह इस प्रकार विचार करने लगा—इन दुष्टोंने अकारण मुनिराज संजयन्तको दुखाकर तीव्र अपराध किया है ऐसे दुष्टोंको क्षमा कर देना महापाप है इसलिये उस अपराधके बदलेमें इन्हें क्या मैं किसी खारे समुद्रमें जाकर फेंक दूं। वा वज्र शस्त्रसे चारों दिशाओंमें इनकी बलि प्रदान कर दूं। अथवा इन दुष्टोंने जिस प्रकार मेरे भाईका शस्त्रोंसे मारा है मैं भी उसी प्रकार शस्त्रोंसे इनके खण्ड २ कर दूं नागेंद्र कुमारका यह प्रबल क्रोध देखकर समस्त अपराधी विद्याधर थर थर कांपने लगे एवं चाटुमय बचनोंमें इस प्रकार उन्होंने नागेंद्र कुमारसे कहा—कृपानाथ ! आप शांत हुजिये और आदिसे अन्त तक सारा यथार्थ वृत्तांत सुन लीजिये ॥ ९१ ॥ हम लोग धर्म मार्गके अनुयायी और कोमल परिणामी हैं। यह जो बलवान

अनथ बन पड़ा है इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है। हम लोगोंमेंसे एक विद्युद्दंष्ट्र नामका महापापी विद्याधर
है उसीकी यह करतूत है—उसीके बचनों पर विश्वास कर हमसे यह निन्दित कार्य बन गया है। स्वामिन् !
जिस प्रकार विशाल मेरु पर्वतके सामने गण्डशैल—स्थूल पत्थरोंके धारक पर्वत कोई चीज नहीं। तथा सूर्य
और चन्द्रमाके सामने नक्षत्र कोई चीज नहीं उसी प्रकार हम क्षुद्र विद्याधर आपके सामने क्या चीज हैं ?
प्रभो ! जिस प्रकार शिखरके बिना मन्दिर शोभा नहीं पाता कदली (केला) के वृक्षोंसे रहित बगीचा जिस
प्रकार कदली वृक्षोंके बिना शोभा नहीं धारण करता उसी प्रकार जो मनुष्य न्यायहीन है—न्याय पूर्वक कार्य
नहीं करता वह भी शोभित नहीं होता ॥६४॥ अतएव हे देव ! आप धर्म मार्गके अनुयायी हैं आपको चाहिये
कि आप न्याय पूर्वक विचार कर जो दोषी हो उसे ही मारें और दण्ड दें क्योंकि आप पूर्ण विज्ञ हैं और विज्ञ
पुरुष जितना भी कार्य करते हैं न्याय पूर्वक कार्थ ही करते हैं। जो मनुष्य मदोन्मत्त हो अपनी इच्छानुसार
न्याय मार्गके प्रतिकूल कार्य करते हैं संसारमें उनके विशिष्ट बलकी प्रशंसा नहीं होती ठीक ही है देव गण निरं-
कुश होते हैं अर्थात् उत्तम बल प्राप्त कर जो न्याय पूर्वक कार्य करते हैं उन्हींको बलवान माना जाता है किन्तु
बलवान होकर भी अन्याय पूर्वक कार्य करनेवालोंको बलवान नहीं माना जाता ॥ ६६ ॥ विद्याधरोंके इस प्रकार
शांतिमय दीन बचन सुन नागेन्द्र कुमार क्रोधि रहित सन्तुष्ट हो गया। जितने भी निरपराध आये विद्याधर थे
नागेन्द्र कुमारने उन्हें क्षमा कर छोड़ दिया। अपराधी विद्युद्दन्ष्ट्रको कसकर बांध लिया एवं पुत्र स्त्री भाई और
कुटुम्बियोंके साथ उसे समुद्रमें डालनेके लिये उद्यत हो गया। नागेन्द्र कुमार जिस समय यह कार्य करनेकी
चेष्टा कर रहा था उस समय आदित्याभ नामक नागकुमारको दया आ गई और वह शांत बचनोंमें इस प्रकार
कहने लगा—यद्यपि इस विद्युद्दन्ष्ट्र विद्याधरने आपका घोर अपराध किया है तथापि मेरे आग्रहसे तुम्हें इसे
माफ कर देना चाहिये। प्रिय नागेन्द्र ! आप एक महान पुरुष हो आप सरीखे महान पुरुषोंको क्षुद्र पुरुषों पर
कोप करना शोभा नहीं देता यह तुम अच्छी तरह जानते हो कि क्षुद्र शृगाल क्रूर केसरीसे कितनी भी ईर्षा
क्यों न करे तो भी वह क्रूर सिंह उसे कभी नहीं मारता। भाई ! भगवान ऋषभ देवके समयमें तुम्हारे वंश-
जोंने विद्याधर राजाओंको अनेक प्रकारकी विद्यायें दीं थीं उसी समय विद्याधर वंशका संसारमें उदय हुआ
था। प्रिय नागेन्द्र ! यह संसार प्रसिद्ध बात है कि जिस मनुष्यने विष वृक्षका भी अच्छी तरह दूधसे सींचकर
बढ़ाया है वह चाहें वज्र मूढ़ भी हो तो भी उसे स्वयं नहीं छेद सकता तुम तो एक महान और विद्वान पुरुष हो

सबोंका उसमें समावेश हो जाता है ॥ ७६ ॥

मुनिराज संजयन्तने घोर उपसर्ग सहकर जब मोक्ष प्राप्त कर ली उस समय अपने अपने वाहनों पर चढ़कर शीघ्र ही समस्त देव उनके निर्वाण कल्याणकी पूजाके लिये आ गये। मुनिराज संजयन्तके निर्वाण कल्याणकी खुशीमें चारों निकायोंके देव आनन्द नृत्य करने लगे। मुनिराज संजयन्तके गुणोंका गान करने लगे। मुनिराज संजयन्तके निर्वाण उत्सवमें उनके छोटे भाई मुनिराज जयन्तका जीव नाग कुमारोंका इन्द्र भी आया था वह वार बार अपने बड़े भाईकी मूर्तिका स्मरण करने लगा। अवधि ज्ञानके बलसे उसे इस बातका भी पता लग गया कि विद्युदंष्ट्र आदि दुष्ट विद्याधरोंने मुनिराज संजयन्तको विशेष त्रास दिया है जिससे उसका हृदय मारे क्रोधके भवल गया। शीघ्र ही उसने नाग पाशसे समस्त विद्याधरोंको बांध लिया। प्रवल क्रोधसे उसके दोनों नेत्र लाल हो गये एवं महा भयप्रद वाण स्वरूप वचनोंसे समस्त विद्याधरोंको नाड़ता हुआ वह इस प्रकार कहने लगा—रे दुष्ट विद्याधरो ! मेरे बड़े भाई संजयन्त मुनि अहङ्कार रहित निर्मल शांत और दृढ़ ध्यानी थे तुम सबोंने मिलकर उन्हें क्यों मारा ? तुम लोग शीघ्र कहो तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया था। दुष्टो ! तुम लोगोंने मेरे भाईको मारकर मेरा घोर अपराध किया है। तुम समस्त विद्याधर मेरे पूज्य भाईके मारनेवाले दुष्ट हो। तुम्हें नागपाशके वज्र प्रहारसे शीघ्र ही मारूंगा इसमें कोई संशय नहीं ॥ ८६ ॥ एक काकका यदि कोई पुरुष मार देता है तो उस मारनेवालेको अन्य काक पूर्ण कोलाहल मचाकर अपनी चोचोंके घातोंसे जब मार डालते हैं। तब जो पुरुष मेरे समान समर्थ हैं वे कैसे बैरियोंको सह सकते हैं ? वे तो कभी बैरियोंसे बदला चुकाये बिना मान नहीं सकते। बस इस प्रकार उन दुष्ट कार्यके करनेवाले समस्त विद्याधरोंको नाग कुमारोंके इन्द्रने बेहद डांटा एवं उन दुष्टोंके विषयमें वह इस प्रकार विचार करने लगा—इन दुष्टोंने अकारण मुनिराज संजयन्तको दुखाकर तीव्र अपराध किया है ऐसे दुष्टोंको क्षमा कर देना महापाप है इसलिये उस अपराधके बदलेमें इन्हें क्या मैं किसी खारे समुद्रमें जाकर फेंक दूं। वा वज्र शस्त्रसे चारों दिशाओंमें इनकी बलि प्रदान कर दूं। अथवा इन दुष्टोंने जिस प्रकार मेरे भाईका शस्त्रोंसे मारा है मैं भी उसी प्रकार शस्त्रोंसे इनके खण्ड २ कर दूं नागेंद्र कुमारका यह प्रबल क्रोध देखकर समस्त अपराधी विद्याधर थर थर कांपने लगे एवं चाटुमय वचनोंमें इस प्रकार उन्होंने नागेंद्र कुमारसे कहा—कृपानाथ ! आप शांत हुजिये और आदिसे अन्त तक सारा यथार्थ वृत्तांत सुन लीजिये ॥ ९१ ॥ हम लोग धर्म मार्गके अनुयायी और कोमल परिणामी हैं। यह जो बलवान

हम लोगोंमेंसे एक विद्युद्दंष्ट्र नामका महापापी विद्याधर
अनर्थ बन पड़ा है इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है। हम लोगोंमेंसे एक विद्युद्दंष्ट्र नामका महापापी विद्याधर
है उसीकी यह करतूत है—उसीके वचनों पर विश्वास कर हमसे यह निन्दित कार्य बन गया है। स्वामिन् !
जिस प्रकार विशाल मेरु पर्वतके सामने गण्डशैल—स्थूल पत्थरोंके धारक पर्वत कोई चीज नहीं। तथा सूर्य
और चन्द्रमाके सामने नक्षत्र कोई चीज नहीं उसी प्रकार हम क्षुद्र विद्याधर आपके सामने क्या चीज हैं ?
प्रभो ! जिस प्रकार शिखरके बिना मन्दिर शोभा नहीं पाता कदली (केला) के वृक्षोंसे रहित बगीचा जिस
प्रकार कदली वृक्षोंके बिना शोभा नहीं धारण करता उसी प्रकार जो मनुष्य न्यायहीन है—न्याय पूर्वक कार्य
नहीं करता वह भी शोभित नहीं होता ॥९४॥ अतएव हे देव ! आप धर्म मार्गके अनुयायी हैं आपको चाहिये
कि आप न्याय पूर्वक विचार कर जो दोषी हो उसे ही मारें और दण्ड दें क्योंकि आप पूर्ण विज्ञ हैं और विज्ञ
पुरुष जितना भी कार्य करते हैं न्याय पूर्वक कार्थ ही करते हैं। जो मनुष्य मदोन्मत्त हो अपनी इच्छानुसार
न्याय मार्गके प्रतिकूल कार्य करते हैं संसारमें उनके विशिष्ट बलकी प्रशंसा नहीं होती ठीक ही है देव गण निरं-
कुश होते हैं अर्थात् उत्तम बल प्राप्त कर जो न्याय पूर्वक कार्य करते हैं उन्हींको बलवान माना जाता है किन्तु
बलवान होकर भी अन्याय पूर्वक कार्य करनेवालोंको बलवान नहीं माना जाता ॥ ९६ ॥ विद्याधरोंके इस प्रकार
शांतिमय दीन बचन सुन नागेन्द्र कुमार क्रोधि रहित सन्तुष्ट हो गया। जितने भी निरपराध आये विद्याधर थे
नागेन्द्र कुमारने उन्हें क्षमा कर छोड़ दिया। अपराधी विद्युद्दन्ष्ट्रको कसकर बांध लिया एवं पुत्र स्त्री भाई और
कुटुम्बियोंके साथ उसे समुद्रमें डालनेके लिये उद्यत हो गया। नागेन्द्र कुमार जिस समय यह कार्य करनेकी
चेष्टा कर रहा था उस समय आदित्याभ नामक नागकुमारको दया आ गई और वह शांत बचनोंमें इस प्रकार
कहने लगा—यद्यपि इस विद्युद्दन्ष्ट्र विद्याधरने आपका घोर अपराध किया है तथापि मेरे आग्रहसे तुम्हें इसे
माफ कर देना चाहिये। प्रिय नागेन्द्र ! आप एक महान पुरुष हो आप सरीखे महान पुरुषोंको क्षुद्र पुरुषों पर
कोप करना शोभा नहीं देता यह तुम अच्छी तरह जानते हो कि क्षुद्र शृगाल क्रूर केसरीसे कितनी भी ईर्षा
क्यों न करे तो भी वह क्रूर सिंह उसे कभी नहीं मारता। भाई ! भगवान ऋषभ देवके समयमें तुम्हारे वंश-
जोंने विद्याधर राजाओंको अनेक प्रकारकी विद्यायें दीं थीं उसी समय विद्याधर वंशका संसारमें उदय हुआ
था। प्रिय नागेन्द्र ! यह संसार प्रसिद्ध बात है कि जिस मनुष्यने विष वृक्षका भी अच्छी तरह दूधसे सींचकर
बढ़ाया है वह चाहें वज्र मूढ़ भी हो तो भी उसे स्वयं नहीं छेद सकता तुम तो एक महान और विद्वान पुरुष हो

तुम अपने वंशजों द्वारा निर्मापित वंशका कैसे संहार कर सकोगे ? सूर्यके समान देदीप्यमान आदित्याभ नामका नागकुमारकी यह बात सुनकर मुनिराज जयन्तके जीव नागेन्द्रने कहा—भाई ! तुम इस अतिशय पापी विद्युद्दंष्ट्रका क्रूर कर्म जानते नहीं हो इसलिये इसे दयाका पात्र समझ रहे हो मेरे बड़े भाई संजयन्त परम तपस्वी थे और दयाके सागर निरपराध थे इस दुष्टने बिना अपराध उन्हें मार डाला है इसलिये अपना भाईका बदला चुकानेके लिये मुझे इसे मार डालना ही ठीक होगा तुम्हें इस बातमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डालना चाहिये क्योंकि यह नीति है कि जो अपने भाईके मारने वालेको क्षमा कर देता है—उससे बदला नहीं लेता वह संसारमें पापी माना जाता है ॥१०५॥ जयन्तके जीव नागेन्द्रकी यह बात सुन आदित्याभ नामका नागकुमार अपने मनमें विचार करने लगा—मैंने जो विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरकी रक्षाके लिये याचना की वह ठीक नहीं हुआ क्योंकि मुनिराज जयंतके जीव नागेन्द्रने वह मेरी याचना स्वीकार नहीं की। यह नियम है जहांपर याचनाका भंग है वहांपर सन्मानका भी भंग है और जिस मनुष्यका सन्मान नहीं वह मनुष्य तृणके बराबर है। संसारमें यह बात स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है कि जिन पुरुषोंका सन्मान नहीं होता वे पद पद पर निंदा जन्य दुःख भोगते रहते हैं। वे संसारमें कुछ महत्त्व पूर्ण कार्य भी नहीं कर सकते इसलिये वे मिट्टी आदिके बने पुरुषके समान गिने जाते हैं। जिस प्रकार लो रहित दीपकको प्रकाश छोड़ देता है उसी प्रकार जो पुरुष सन्मान रहित हैं लक्ष्मी उन्हें छोड़ देती है मानहीन पुरुषोंपर उसका प्रेम नहीं होता ॥१०८॥ जिस प्रकार निर्बुद्धि पुरुषोंको प्रतिभा—उत्तम बुद्धि छोड़ देती है और भाग्यहीन पुरुषोंको मंगल देवता—लक्ष्मी आदि छोड़कर चली जाती हैं उसी प्रकार मानहीन पुरुषोंको अभिमान भी छोड़ देता है। क्रोधी भी संमाननीय गुरुको जिस प्रकार शिष्य मानता है। संमाननीय पतिको जिस प्रकार स्त्री मानती है उसी प्रकार संमाननीय महत्वशाली पुरुषको लक्ष्मी बरती है। क्षण एक इस प्रकार विचार कर आदित्याभ नामक कुमारने अपने स्वामी नागेंद्रसे कहा—प्रिय नागेंद्र ! यद्यपि तुम्हारे सामने मेरी याचनाका भंग हुआ है तथापि वह मेरे लिये सुखदायी है क्योंकि जो अधम पुरुष हैं उनमें यदि याचना पूरी भी हो जाय तब भी ठीक नहीं किंतु जो पुरुष महान हैं उनमें वह निष्फल भी चली जाय तब भी ठीक है आप एक उत्तम पुरुष हो मेरी याचना आपने स्वीकार नहीं की तब भी वह मेरे लिये कल्याणकारी है ॥११०॥ इस प्रकार जिस आदित्याभ नामके नागकुमारने जयंतके जीव नागेंद्रके बचनोंकी पुष्टिकी वही आदित्याभ नागकुमार अपने उत्तम उपदेशसे विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र और धरणेंद्रके

कल्याणोंके करनेवाला होगा ॥१११॥ जो मुनिराज संजयंत दिव्य तेजके धारक परम तपस्वी थे। तीव्र पुण्यके उदयसे जो मोक्ष लक्ष्मीके पात्र बने जिनके चरणोंको बड़े बड़े इन्द्र पूजते हैं और बड़े बड़े मुनि जिनकी आराधना करते हैं वे मुनिराज भव्य जीवोंकी रक्षा करें ॥ ११२ ॥

ब्रह्म कृष्णदास विरचित वृहत् विमलनाथ पुराणमें वैजयन्त संजयंत और जयंतका दीक्षा ग्रहण और मोक्ष प्राप्ति वर्णन करनेवाल छठा सर्ग समाप्त।

सातवां सर्ग।

जो भगवान जिनेंद्र जगतके नाथ हैं। लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं। पापोंके नाशक और कल्याणके देनेवाले हैं और जिनकी स्तुति बड़े बड़े इन्द्र करते हैं उन भगवान जिनेंद्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ महान ऋद्धिके धारक आदित्याभ नागकुमारने अपने मित्र नागेंद्रसे कहा—प्रिय नागेंद्र ! तुम मेरे न्याय पूर्वक वचनोंको सुनो तुम जो विद्याधर विद्युद्दन्ष्ट्रके साथ बैर बाँध रहे हो वह बृथा है क्योंकि बैर भव भवमें शल्यके समान दुःख देनेवाला है। इसी बैरके कारण जीव नष्ट होते रहते हैं और आपसमें एक दूसरेको छेदनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। संसारमें भ्रमण करता हुआ यह विद्युद्दन्ष्ट्र क्या तुम्हारा भाई किसी भवमें नहीं हुआ ? अनेक बार हो चुका है, क्योंकि संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवका जन्म जन्ममें कौन तो बंधु नहीं हुआ और कौन अबंधु, बैरी नहीं हुआ। कौन हितकारी नहीं हुआ और कौन अहितकारी नहीं हुआ। कौन तात नहीं हुआ और कौन वेतात नहीं हुआ। कौन माता नहीं हुई और कौन अमाता—स्त्री आदि नहीं हुई। एवं कौन अपना नहीं हुआ और कौन पराया नहीं हुआ ? भाई नागेंद्र ! संसारमें भ्रमण करते हुए ये सब जीव नियमसे अपने सगे हो चुके हैं। तथा जो इस समय शत्रु दीख पड़ते हैं वे भी माता पिता और भाई हो चुके हैं ॥ २ ॥ पूर्व जन्ममें तुम्हारे भाई संजयंत मुनिराजने अपराधी विद्युद्दन्ष्ट्रको क्रुद्ध हो दण्ड दिया था उसी बैरसे मरकर यह विद्युद्दन्ष्ट्र विद्याधर हुआ। मुनिराज संजयंतको देखकर इसे पूर्व जन्मका स्मरण हो गया उसीसे इसने मुनिराज संजयंतको विशेष कष्ट पहुंचाया ॥८॥ यह पापी विद्युद्दन्ष्ट्र चार जन्मोंसे बार बार तुम्हारे भाईका बैरी चला आया है उसी महा बैरके सम्बन्धसे इसने तुम्हारे भाईको मारा है ॥९॥ मैं तो इस भवमें विद्याधर विद्युद्दन्ष्ट्रको मुनिराज संजयंतका परममित्र मानता हूँ क्योंकि इसके द्वारा किये गये उपसर्गको सहकर मुनिराज संजयंतने मोक्ष स्थान प्राप्त कर लिया ॥ १० ॥ जिस किसी भी पापीने किसीको कष्ट पहुंचाया है वह कष्ट उसके लिये

गुणस्वरूप ही हुआ है इसलिये विद्वान लोग उस कष्टको गुण ही मानते हैं दुःख नहीं मानते ॥ ११ ॥ जो पुरुष विद्वान हैं संसारकी वास्तविक स्थितिके जानकार हैं उन्हें कितना भी कष्ट क्यों न पहुंचाया जाय वे उस कष्टसे कष्टायमान नहीं होते—विकृत न होकर उनका स्वभाव ज्योंका त्यों बना रहता है। जिस तरह कि चन्दनको कितना भी काटा छेदा जाय तब भी वह अपना सुगंधित स्वभाव नहीं छोड़ता—जैसा उसे छेदा जाता है वैसा ही वह पासमें खड़े रहनेवालोंके लिये महकता चला जाता है। सज्जनोंका स्वभाव भी चन्दन सरीखा होता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अगरको कितना भी जलाया जाय वह सुगंधि ही छोड़ता जाता है उसी प्रकार दुष्ट पुरुष मुनियोंको भले ही मार डाले तथापि वे मारनेवाले पर क्रोध नहीं करते वे अपने परिणामोंमें समता भाव ही रखते हैं ॥१३॥ जिस प्रकार ईखके पेड़को जितना जितना पेरा जाता है वह मिठास ही छोड़ता चला जाता है—उसमें कोई विकर नहीं उत्पन्न होता उसी प्रकार जो पुरुष विद्वान हैं दुष्टोंसे दुःखित होनेपर भी उनकी बुद्धिमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता वे शांत ही बने रहते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये भाई नागेंद्र! तुम्हारे लिये मेरा यह हितकारी कहना है कि संसारमें तुम एक गुणशाली व्यक्ति कहे जाते हो। विद्युद्दन्ष्ट्रके साथ तुम्हें वैर न बांधना चाहिये। भाई! तुम्हीं सोच लो पूर्व भवमें जो बैर बंध हो चुका है उसका क्या प्रतीकार हो सकता है? वह तो बंध गया सो बंध ही गया ॥ १५ ॥ नागकुमार आदित्याभकी यह बात सुन धरणेंद्रका क्रोध कुछ शांत पड़ गया और विद्युद्दन्ष्ट्रका मुनिराज संजयंतके साथ कैसे वैर बंधा यह कथा जाननेकी उसके मनमें लालसा हो गई इसलिये वह आदित्याभसे इस प्रकार कहने लगा—मुनिराज संजयंत और विद्युद्दन्ष्ट्रके आपसी वैरसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा कृपाकर कहिये! उत्तरमें देव आदित्याभने कहा प्रिय नागराज! मैं सारी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूं विद्याधर विद्युद्दन्ष्ट्रके साथ वैर छोड़कर तुम आनन्द पूर्वक सुनो—

एक लाख योजनके चौड़े इसी जम्बू द्वीपमें एक भरत नामका क्षेत्र है जो कि धनुषकी आकृतिको धारण करनेवाला महा शोभायमान जान पड़ता है। प्रसिद्ध भरतक्षेत्रके अन्दर एक सिंहपुर नामका नगर है जो कि अनेक प्रकारकी शोभाओंसे व्याप्त अत्यन्त शोभायमान है। लक्ष्मीके स्थान बड़े बड़े देवेन्द्रोंको प्यारा है और उत्तम है ॥ १६ ॥ सिंहपुर नगरके अन्दर उस समय सतखण्डे मकान शोभायमान थे एवं लाल लाल ओठोंकी धारक स्थूल स्तनोंसे व्याप्त सदा हंसनेवाली और विलासरस परिपूर्ण स्त्रियां थीं। सिंहपुर नगरमें सारी प्रजा सदाचारिणी थी इसलिये राजाकी ओरसे किसी प्रकारके दण्डका विधान न था। यदि दण्ड था तो चैत्यालयोंके

शिखिर भागोंपर था जिसपर कि ध्वजा फहरातीं थीं। वहां पर किसी बातमें भ्रांति न थी—सब लोगोंको ठीक रूपसे पदार्थोंका निश्चय था। यदि भ्रांति थी तो भगवानको प्रदक्षिणाओंमें थी—लोग घूम घूमकर भगवान जिनेन्द्रकी प्रदक्षिणा करते थे। कठिनता वहांपर स्त्रियोंके स्तनोंमें ही थी अन्य कहीं किसी मनुष्यके हृदयमें कठिनता न थी—सब लोग सरलपरिणामी थे। कर्मपंकजके सिवाय वहांपर किसीको मारने पीटनेकी प्रथा न थी। उस सिंहपुरमें नास्तिकता बौद्ध मंदिरोंकी थी—कोई भी बौद्ध धर्मका अनुयायी न होनेके कारण किसी भी बुद्ध मंदिरकी वहांपर सत्ता न थी परन्तु वहांपर लोग नास्तिक न थे—पर लोक आदि पदार्थोंपर पूर्ण विश्वास रखने वाले थे। वहांपर दांत वा नखोंका जघन और अधर पल्लवोंके ही साथ विरोध था आपसमें किसीके साथ कोई विरोध नहीं रखता था॥ २२॥ सिंहपुरका रक्षण करनेवाला राजा सिंहसेन था जो कि शत्रुओंकी स्त्रियोंके आंसू बहाने वाला था। विशाल सेनाका स्वामी था और सिंहके समान प्रवल पराक्रमी था। वह राजा सिंहसेन चित्र भानु सुधा भानु और चन्द्रमाओंसे भी अधिक प्रभाका धारक था। संग्राममें शत्रुओंको पीठ न दिखानेके कारण वह बलवान खड्गधारी था। धर्मका आचरण करता था। तीन जगतके गुरुकी पूजा करता था शत्रुओंके देशोंको राखमें मिलाता था और याचकोंको विशिष्ट धन प्रदान करता था॥ २५॥ राजा सिंहसेनकी स्त्रीका नाम रामदत्ता था जो कि अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध थी। भोगोंको प्यारा मानती थी और भोग भोगनेके जो भी आसन है उनमें सदा लालायित रहती थी। वह रानी रामदत्ता अपने पतिके अनुकूल चेष्टा करनेवाली थी इसलिये सती थी। सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रति थी। रूपसे रम्भाकी उपमा धारण करती थी एवं उन्नत स्थूल और गोलाकार नितम्बोंसे शोभायमान होनेके कारण मन्द मंदरूपसे गमन करने वाली थी॥ २७॥ राजा सिंहसेनके मंत्रीका नाम श्रीभूति था जो कि अनेक गुणोंका भण्डार था। वेदोंका जानकार था। जातिका ब्राह्मण था और सत्य बोलनेके कारण समस्त लोकका आदरणीय था॥ २८॥ एक दिन श्रीभूतिने छलसे यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं झूठ बोलूंगा तो अपना गला छेद डालूंगा॥२९॥ अपने सत्यवक्ता पानेकेकरण वह श्रीभूति समस्त लोक नगर और राजसभामें प्रख्यात था एवं वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाकी दृढ़ता बतलाकर बहुत थोड़ा बोलने वाला होकर रहने लगा॥ ३०॥ श्रीभूतिकी यह कड़ी प्रतिज्ञा सुन राजा सिंहसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और लक्ष्मी के भण्डार राजा सिंहसेनने हर्ष पूर्वक मंत्री श्रीभूतिका नाम सत्यघोष रख दिया॥ ३१॥

इसी पृथ्वीपर एक पद्मखण्ड नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे इन्द्रपुरीकी समता धारण करता है।

सदा नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है और सदा नाना प्रकारके आनन्दों से व्याप्त रहता है। पद्मखण्ड नगरमें एक सुदत्त नामका सेठ रहता था जो कि विपुल संपत्तिका स्वामी था। अनेक गुणोंका भण्डार था। एवं जिस प्रकार शिष्योंके लिये शिक्षा देनेवाला गुरु होता है उसी प्रकार वह धर्मात्मा पुरुषोंका गुरु स्वरूप था ॥ ३३ ॥ सेठ सुदत्तकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था जो कि अपनी अद्वितीय सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रतिके समाज जान पड़नी थी और भृकुटीरूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी बाण चढ़ाकर वह बड़े बड़े देवों के चित्त व्यथित करनेवाली थी ॥ ३४ ॥ सेठ सुदत्तके सेठानी सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र भद्रमित्र था जो कि सुन्दरतामें इन्द्रके समान जान पड़ता था, समस्त विद्याओं का पारगामी था। युवा और पूर्णरूपसे भोग भोगने वाला था। एक दिनकी बात है कि नगर निवासी समस्त सेठों के पुत्र सिंहपुरके उद्यानमें क्रीड़ा करनेके लिये गये। कुमार भद्रमित्र भी उनके साथ क्रीड़ा करनेके लिये वनमें गया, अवसर पाकर अन्य सेठ पुत्रोंने भद्रमित्रसे कहा—मित्र! अपन बणिक्पुत्र कहलाते हैं। बणिक्पुत्रों का जीवन व्यवसायके आधीन है। व्यवसायके लिये तुम कोई भी उपाय न कर निरर्थक घरमें रहते हो। हम लोग व्यवसायके लिये रत्नद्वीप जाना चाहते हैं तुम्हें भी चाहिये कि हमारे साथ तुम भी व्यापारके लिये रत्नद्वीप चलो। मित्र! जिस प्रकार प्रबल तप तपनेवाले क्रोधी मुनिका विपुल भी तप निरर्थक माना जाता है उसी प्रकार पुत्र भी उत्पन्न हो परन्तु वह धनका उपार्जन करने वाला न होकर उसका क्षय करने वाला हो तो उसका होना भी निरर्थक है। अन्य धनिक पुत्रों की यह बात सुन भद्रमित्र ताली देकर हंसने लगा और हंसते हंसते उसने यह कहा—भाई! तुमने जो मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना की है वह बड़ी हास्य जनक है। उत्तम मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना कैसी! भद्रमित्रकी यह बात सुन सेठ पुत्रों ने कहा—प्रिय भद्र मित्र! इसी विषयमें हमने मुनिराजके मुखसे कथा सुनी है जो कि सर्वथा निश्चय करने योग्य है हम वह कथा तुम्हें सुनाते हैं तुम ध्यान पूर्वक सुनो। इसी पृथ्वीपर एक स्तवकगलुंछ नामका नगर है जो कि सोना चांदी और लोहेके बने तीन परकोटोंसे शोभायमान है इसीलिये तीन तरङ्गोंसे व्याप्त वह समुद्र सरीखा जान पड़ता है।४१। वह स्तवकगलुंछ नगर चतुरता और शोभाकी स्थान स्वरूप स्त्री और पुरुषोंसे सरसरूप था इसलिये वह ब्रह्मा और बृहस्पतिकी भी वर्णनाके अगोचर था ॥ ४२ ॥ स्तवकगलुंछ नगरका स्वामी राजा ऐरावण था जो कि कुबेरके समान दानी था। और चन्द्रमाके समान स्वच्छ यशका धारक था। शत्रुओंके लिये शल्यस्वरूप था और समृद्ध था ॥ ४३ ॥ उस समय राजा ऐरावणके राज्यकालमें प्रचण्ड तेजके धारक अगणित वीरोंकी राजधानियां बाहुबलि

आदिकी राजधानियोंके समान पृथ्वीपर विद्यमान थीं। राजा ऐरावणके छह हजार रानियां थीं जो कि चन्द्रमाके
समान मुखकमलकी धारक थीं विशाल स्तनोंसे शोभायमान कृशोदरी और रतिके समान परम सुन्दरी थीं।४५।
राजा ऐरावणके वीरसेन आदि पांच सौ पुत्र थे जो कि शिकार खेलनेके बड़े शौकीन थे योद्धा थे अतएव संग्राम
सम्बन्धी अनेक कलाओंके जानकार थे ॥ ४६ ॥ जिस समय राजा ऐरावणका किसी शत्रु आदिके प्रति प्रयाण
होता था उस समय उसके आगे आगे एक लाख नगाड़े बजते थे तथा जिस प्रकार एक लाख नगाड़े बजते थे
उसी प्रकार एक लाख ही पटह जातिके बाजे बजते थे। वह ऐरावण नामका राजा जिस समय सिंहासनपर बैठता
था उस समय ऐसा जान पड़ता था कि सूर्यके समान तेजका धारक यह साक्षात् इंद्र है वा शेषनाग और मेरु-
पर्वत है विशेष क्या वह राजा समस्त शत्रुओंके लिये दुर्जय था—कोई भी शत्रु उसे जीतनेके लिये समर्थ न
था ॥४९॥ विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें एक अलकपुर नामका नगर विद्यमान है। इस नगरका रक्षण करने
वाला राजा महाकच्छ था और उसकी पटरानीका नाम दामिनी था। राजा महाकच्छके रानी दामिनीसे उत्पन्न
एक प्रियंगुश्री नामकी कन्या थी जो कि सुन्दर रूपकी सीमास्वरूप थी—उससे बढ़कर संसारमें कोई भी रूपवती
उस समय कन्या न थी जिस समय कन्या प्रियंगुश्रीको यौवनसे मंडित देखा राजा महाकच्छके मनमें यह चिंता
होने लगी—अपने सुन्दर रूपसे कामदेवकी कांतिको फीके करनेवाले किस योग्य राजाके लिये यह कन्या प्रदान
करनी चाहिये ? बस राजा महाकच्छने शीघ्र ही नैमित्तिकको बुलाया और उससे यह जानकर कि इस कन्याका
स्वामी स्तवकग्लुंछ नगरका राजा ऐरावण होगा, शीघ्र ही वह उसको अपने नगरमें ले आनेकी चिन्ता करने लगा
॥ ५२ ॥ अच्छी तरह सोच विचार कर राजा महाकच्छने शीघ्र ही विशाल वक्षस्थल और छोटे छोटे कानोंसे
शोभायमान एक माया मयी घोड़ा बनाया एवं मुक्ताओंकी मालाओंसे शोभायमान स्तवकग्लुंछ नगरकी ओर
प्रयाण कर दिया। स्तवकग्लुंछ नगरका किला एक विशाल किला था। राजा महाकच्छ उसे देखकर विचार करने
लगा कि क्या यह कैलाश पर्वत है वा मेरुपर्वत वा अन्य सुवर्ण मयी पर्वत अथवा कोई देवनगर है ऐसा विचार
करता करता राजा महाकच्छ किलेके दरवाजेके पास पहुंच गया जो दरवाजा हजार स्तम्भोंपर लटकते हुए तोर-
णोंसे शोभायमान था। जिसका मुख पूर्वकी ओर था एवं बीस लाख वीर योधाओंसे सदा रक्षित रहता था
॥ ५५ ॥ इस प्रकार किलेको देखकर वह विद्याधर राजा महाकच्छ शीघ्र हो वनको लौट आया और घोड़ोंपर
सवार हो अनेक प्रकारके कौतूहल करने लगा ॥५३॥ राजा ऐरावणके वीरसेन आदि कुमार भी उसी वनमें क्रीड़ा

करनेके लिये आये। घोड़ेपर चढ़े विद्याधर महाकच्छको देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे इस प्रकार पूछने लगा—भाई! तुम कौन हो? कहांसे आये हो और जिस घोड़ेपर तुम चढ़े हो वह किसका घोड़ा है? उत्तरमें विद्याधर राजा महाकच्छने कहा—मैं अलकपुरसे यहां आया हूँ। मैं विद्याधर हूँ और यह बलवान घोड़ा मेरा है ॥ ५८ ॥ भाई! घंटरियोंके शब्दोंसे शोभायमान और चंचल तुम्हारा यह घोड़ा बड़ा दुर्घट जान पड़ता है। कृपाकर दीजिये हम इसकी चाल ढाल देख लें। यदि हमें जंच गया तो हम मूल्य देकर इसे खरीद लेंगे। जब ऐसा कुमार बीरसेनने कहा तो विद्याधर महाकच्छने उसे घोड़ा दे दिया। बीरसेन घोड़ेपर चढ़ भी लिया ज्यों ही घोड़ेने उसे अपने ऊपर चढ़ा देखा देखते देखते शीघ्र नीचे पटक दिया ॥ ६० ॥ और भी कुमार घोड़ेपर चढ़े परन्तु घोड़ेने एककी भी सवारी नहीं झेली, क्रम क्रमकर सबोंको नीचे पटक दिया जिससे हाथ पैरोंमें चोट आनेसे उन समस्त राजकुमारोंमें हाहाकार मच गया। अपने पुत्रोंका इस प्रकार हाहाकार सुन राजा ऐरावण शीघ्र वहां पर आया एवं अपने तेजसे चन्द्रमाको फीका बनानेवाला महातेजस्वी वह राजा ऐरावण उत्तम गर्दनसे शोभायमान एवं अतिशय भयङ्कर उस घोड़ेपर तत्काल सवार हो लिया ॥६२॥ राजा ऐरावणने पहिले प्रतिदिन कैलास पर्वतपर स्थित भगवान ऋषभ देवको ८ हजार नमस्कार किये ॥६४॥ विद्याधर महाकच्छकी यह इच्छा थी कि मैं घोड़ेके द्वारा राजा ऐरावणको अपनी राजधानी ले जाऊंगा और वहां ले जाकर अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दूंगा परन्तु जब घोड़ा राजा ऐरावणके पैरोंसे कीलित हो गया तब उसकी कुछ भी तीन पांच न चली इसलिये राजा ऐरावणको प्रबल पराक्रमी जान विद्याधर महाकच्छने उसे नमस्कार किया एवं कन्या सम्बंधी जो कुछ भी बात थी विनय पूर्वक सारी कह सुनाई ॥ ६५ ॥ विद्याधर महाकच्छकी यह बात सुन राजा ऐरावणने कहा—मैं तुम्हारी राजधानी जाकर उस कन्याके साथ अपना विवाह नहीं कर सकता यदि मेरे साथ उस कन्याके विवाह करनेकी तुम्हारी इच्छा है तो तुम उस कन्याको यहां ला सकते हो। क्योंकि जो राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए हैं स्त्रीके लिये वह कहीं भी नहीं जा सकते, मैं भी तुम्हारे यहां जाकर अपनी कुल मर्यादाका लोप नहीं करना चाहता ॥ ६७ ॥ राजा ऐरावणके ऐसे बचन सुन विद्याधर महाकच्छ अपने घर लौट आया और राजा ऐरावणके कहे अनुसार वह कन्याको ले ही जा रहा था कि उसी समय यह घटना आकर उपस्थित हो गई।

विद्याधर नगर अलकपुरमें ही विद्याधरोंका चक्रवर्ती एक बज्रसेन नामका भी राजा रहता था कन्या प्रियंगुश्रीको परम रूपवती देख वह उसपर आसक्त हो गया एवं राजा महाकच्छ जैसे ही उसे राजा ऐरावणके साथ

विवाह करनेके लिये ले जा रहा था वैसे ही वह कन्या प्रियंगुश्रीको हरण करनेके लिये राजा महाकच्छके पीछे २ चल दिया ॥ ६६ ॥ राजा ऐरावणकी राजधानीके पास पहुंचते पहुंचते विद्याधर बज्रसेन और महाकच्छकी मुठ-भेंड़ हो गई। दोनों सेनाओंमें रणबाजा बजने लगा और युद्ध होने लगा। रण बाजोंका शब्द राजा ऐरावणके कानतक भी पहुंच गया। वह शीघ्र ही रण क्षेत्रमें आ पहुंचा। विद्याधर बज्रसेनको जीतकर कन्या प्रियंगुश्रीको ब्याह लिया और विषय जनित सुखोंको भोगता हुआ आनन्द करने लगा।

अपमान बड़ा दुःखदायी होता है। राजा ऐरावणसे जब विद्याधर बज्रसेन हार गया तो उसे बड़ी लज्जा आई। लज्जित हो समस्त राज्यका उसने परित्याग कर दिया एवं दिगम्बरी दीक्षा धारण कर वे घोर तप तपने लगे। तप तपते तपते जब पूरे हजार वर्ष बीत गये तब विहार करते करते वे मुनिराज एक दिन राजा ऐरावण की राजधानी स्तवकगुच्छ नगरकी ओर आये और नगरके बाहिर किसी बगीचेमें आकर विराज गये ॥ ७१ ॥ किसी दिन वे मुनिराज पूर्ण ध्यानमें लीन थे कि जहां तहां बनमें क्रीड़ा करनेवाले राजा ऐरावणके पुत्रोंने उन्हें देखा और वे मूर्ख मुनिमुद्राका कुछ भी महत्त्व न समझ हंसी उड़ाते हुए आपसमें इस प्रकार कहने लगे—यह वही दुष्ट बज्रसेन नामका विद्याधर राजा है जिसने प्रियंगुश्रीके विवाहके समय अतिशय पराक्रमी भी हमारे पिताके साथ युद्ध किया था। रे दुष्ट! अब तू कहां बचकर जायगा ऐसा कहकर उन तपस्वी मुनिराजको उन्होंने जकड़ कर पकड़ लिया और उन्हें मारने ताड़ने लगे। कर्मके प्रबल उदयसे मुनिराज बज्रसेनके प्रलय करनेवाला क्रोध उत्पन्न हो गया। क्रोधके कारण उनकी बाईं भुजासे अग्निका फलिंगा निकला जिससे मय प्रजा राजाके समस्त स्तवकगुच्छ नगर जलकर खाख हो गया एवं पापके तीव्र भारसे वह मुनि भी नरकमें गया। इस प्रकार क्रोधी मुनिराजकी कथा सुनाकर श्रेष्ठी पुत्र भद्रमित्रसे उसके मित्र अन्य श्रेष्ठि पुत्रोंने कहा—भाई भद्रमित्र! इसीलिये हमने धन नहीं उपार्जन करनेवाले पुरुषकी और क्रोधी मुनिकी तुलना की थी क्योंकि धन न पार्जन करनेवाला पुरुष और क्रोधी मुनि दोनों हो सञ्चित धनके नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो हजारों वर्ष तपकर क्रोध कर लेता है उसका समस्त तप व्यर्थ चला जाता है और जो पुरुष कुछ भी धन न कमा कर संचित धनको बैठा बैठा खाता रहता है उसका भी धन समय आनेपर समस्त चला जाता है ॥ ७६ ॥ अपने मित्रोंसे इस प्रकार धन न उपार्जन करनेवालेकी निन्दा सुन भद्रमित्र अपने घर लौट आया और अपने पिता सेठ सुदत्तसे इस प्रकार कहने लगा—पूज्य पिता! मैं अपने मित्रोंके साथ धन कमानेके लिये रत्नद्वीप जा रहा हूं। अपने प्रिय पुत्र

यह बात सुन मोही सुदत्तने कहा—प्रिय पुत्र ! हमारे बहुतसा धन विद्यमान है तुम क्यों धन कमानेकी इच्छासे परदेश जा रहे हो ! पुत्र ! तुम मेरे एक ही पुत्र हो तिसपर भी तुम सुन्दर शरीरके धारक छोटी उम्रके हो तुम्हें परदेश भेजकर क्या मैं योगी होकर पृथ्वीपर घूमूंगा ? ॥ ७६ ॥ कुमार भद्रमित्रने अपने पिताके वचनोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया वह मोह तोड़ शीघ्र ही चल दिया एवं जिसमें प्रबल तरंगे उठ रही हैं ऐसे गम्भीर समुद्र को पारकर रत्नद्वीपमें जा पहुंचा ॥८०॥ बराबर बारह वर्ष तक रत्नद्वीपमें रहा। रत्न आदि बहुतसा धन उपार्जन किया और घूमता घूमता वह कुमार भद्रमित्र एक दिन सिंहपुर नामक नगरमें आ पहुंचा। सिंहपुर नामका नगर उस समय अद्वितीय सुन्दरताका स्थान था और उसमें सत्यघोष नामका राजमंत्री निवास करता था। कुमार भद्रमित्र ! आदर पूर्वक मंत्री सत्यघोषसे मिला। बहुतसी उसे भेंट दी और उससे इस प्रकार पूछा—स्वामिन् ! यदि आपका मेरे ऊपर प्रेम हो तो मैं सुख भोगनेकी आशासे इस महामनोज्ञ नगरमें कुछ दिन निवास करूं ! कुमार भद्रमित्रकी यह बात सुन मंत्री सत्यघोष बड़ा प्रसन्न हुआ। कुमारको उसने बड़े सन्मानकी दृष्टिसे देखा और बड़े आदरसे यह कहा—भाई ! तुम्हारे यहां रहनेसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। शीघ्र ही तुम अपने माता पिताको लेकर यहां आइये और रहिये। मन्त्री सत्यघोषकी बातसे कुमार भद्रमित्र बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ। कुमार भद्रमित्रके पास उस समय सात रत्न बहुमूल्यके थे। कुमारने उन्हें मंत्री सत्यघोषको सौंप दिया और वह अपनी जन्मभूमि पद्मखण्ड नगरमें शीघ्र ही आ गया। पद्मखण्ड नगरमें आकर भद्रमित्रने माता पिता भाई पशुगण और धन आदिक सबोंको साथ ले लिया और शीघ्र ही सिंहपुरमें आ गया ॥ ८६ ॥ सिंहपुरमें आकर कुमार भद्रमित्र मंत्री सत्यघोषसे मिला और जो सात रत्न उसे सौंपकर गया था वे उससे मांगे। बहुमूल्य सात रत्नोंके मिलनेसे मंत्री सत्यघोषकी नियति पहिलेहीसे बिगड़ चुकी थी। जिस समय कुमारने सात रत्न मांगे मारे क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये एवं अनेक प्रकारकी ताड़ना करता हुआ भद्रमित्रको इस प्रकार दुर्वाक्य कहने लगा—रे दरिद्री! तू महा पापी है। कह तो तूने मेरे हाथमें कब रत्न दिये थे ! याद रख इस प्रकार झूठ बोलनेसे तेरा काल तेरे शिरपर मड़रा रहा है ॥ ८८ ॥ उत्तरमें भद्रमित्रने कहा—रत्नद्वीपमें जाकर मैं रत्न लाया था वे रत्न मैंने तुम्हें सौंपे थे तुम क्यों भूल रहे हो ! सत्यघोष और भद्रमित्रका यह आपसी झगड़ा देख सत्यघोषके सेवक कहने लगे—जिन मनुष्योंका विपुल धन चला जाता है वे ही संसारमें पागल सरीखे हो जाते हैं इसमें किसी बातका आश्चर्य नहीं ॥ ६० ॥ परदेशी भद्रमित्रकी दुष्ट मंत्रीने एक भी न सुनी। बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रके गलेमें

अर्ध चन्द्र-अर्ध चन्द्रमाके आकार बाण गिरवा दिया। और मुक्कोंकी मार मारकर उसे नगरसे बाहिर निकाल दिया ॥९१॥ अपने द्रव्यके इस प्रकार अपहरण हो जानेसे भद्रमित्रका चित्त भयंकर शोकसे व्याकुल हो गया। उससे और तो कुछ नहीं बना समस्त पुर और राजाकी ड्योढ़ीपर वह रोता चिल्लाता घूमने लगा ॥ ९२ ॥ मंत्री सत्यघोषने भी राजा और पुरवासियोंके सामने सब जगह यही बात स्वीकार की कि जिन मनुष्योंका धन चला जाता है वे निश्चयरूपसे पागल हो ही जाते हैं ॥ ९३ ॥ दुष्ट बुद्धि सत्यघोषसे जब यह पूछा गया कि क्या तुमने इसके रत्न लिये हैं ? तो समस्त शास्त्रोंको पढ़कर भी बज्र मूर्ख महा लालची और नीच उस दुष्टने अपनी शुद्धिके लिये राजाके भी आगे न लेनेकी कसम खाई ॥ ९४ ॥ जिसका धन चला जाता है उसका दुःख वही जानता है विचारे भद्रमित्रको धनके चले जानेसे कल कहां थी उसने प्रति दिनका यह कार्य हाथमें ले लिया कि वह प्रति दिन प्रातःकालके समय वृक्षपर चढ़ जाय और दीन चित्तसे इस प्रकार करुणा जनक चिल्लावे—बिना अपराधके इस दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मेरे रत्न अपहरण कर मुझे ठग लिया है। मैं क्या करूं कहां जाऊं और किसके सामने अपना रोना रोऊं ॥९६॥ रे मंत्री ! महाराज सिंहसेनकी प्रसन्नतासे तुम्हारे सब कुछ है। यह तुम निश्चय समझो छत्र और सिंहासनके बिना सारा राज्य तुम्हारा है—तुझे इस प्रकार पर धन नहीं अपहरण करना चाहिये ॥ ९७ ॥ यह बात बिलकुल सत्य है कि जो मनुष्य किसीकी कुछ वस्तु हरण कर लेता हैं उसके उस अपहरण करने रूप बलवान दोषसे धर्म यश और उच्चपन सब गुण एक ओर किनारा कर जाते हैं अर्थात् अपहरण करने वाला मनुष्य धर्मात्मा यशस्वी और महान् कुछ भी नहीं माना जाता। रे ब्राह्मण मंत्री ! विद्वान होकर भी तू यह घोर पातक क्यों कर रहा है। भाई ! मैं तुम्हारा किसी प्रकारका शत्रु भी नहीं हूँ तथापि न मालूम तुम मेरा क्यों इस क्रूरताके साथ धन अपहरण कर रहे हो। ब्राह्मणोंका जो आचार विचार है नीच कर्मकर तुम क्यों उससे विमुख होते हो ॥ ९९ ॥ एक दिनकी बात है कि वह रात्रिके पिछले पहरमें प्रति दिनकी तरह बड़े जोरसे रो रहा था। राजा सिंहसेनकी रानी जो कि अनेक गुणोंकी भण्डार थी उसके कानमें भद्रमित्रके रोनेकी भनक पड़ी वह भद्रमित्रका इस प्रकार दुःख जनक रोना सुन मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगी—यह जो भद्रमित्र प्रतिदिन मंत्रीको अपने धनका ठगनेवाला कहकर रोता चिल्लाता रहता है इसे लोग पागल कहते हैं, किन्तु यह पागल नहीं कहा जा सकता। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि राज दरबारमें जो कुछ भी न्याय किया गया है वह सर्वथा अन्याय है मुख देखकर ही न्याय किया गया है ॥ १०१ ॥ बस ऐसा अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर रानीने

राजा सिंहसेनसे यह कहा—राजन् ! परदेशी भद्रमित्रका जो न्याय हुआ है वह मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता। आज आप रणवासके अन्दर रहें, मैं स्वयं इस न्यायकी जांच करूंगी। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर बुद्धिमती वह रानी एकांतमें बैठ गई। उसी समय ब्राह्मण मन्त्री सत्यघोष भी वहीं आ पहुंचा। आसन देकर उसका रानीने सन्मान किया। वहीं पर बिठा लिया और उसके साथ जूआ खेलना प्रारम्भ कर दिया ॥ १०४ ॥ रानी रामदत्ता बड़ी ही चतुर थी उसने आनन्दमय मीठे वचनोंसे इस प्रकार सत्यघोष मंत्रीसे कहा—हे विप्रोंके सरदार ! यदि इस जूआमें मैं तुम्हें जीत लूंगी तो कृपाकर कहिये तुम मुझे क्या दोगे ! शीघ्र कहो ! उत्तरमें मंत्री सत्यघोषने कहा—यदि मैं आपके साथ हार गया तो निश्चय समझें मैं घोड़ा धन हाथी और नाना प्रकारके वस्त्र सभी कुछ आपको प्रदान कर दूंगा ॥ १०६ ॥ मन्त्री सत्यघोषकी यह बात सुनकर रतिके समान सुन्दरी रानी रामदत्ताने कहा—भद्र ! हारनेपर जिन चीजोंके देनेका आपने वायदा किया है वे सारी चीजें मेरे यहां विद्यमान हैं। मैं इन चीजोंकी लालसा नहीं रखती मुझे कुछ अपूर्व ही चीज तुम्हें देनी होगी और वह यह है कि हारनेपर आप मुझे अपने नामकी मुद्रिका कटारी और यज्ञोपवीत प्रदान कर दें। ब्राह्मण सत्यघोषकी निर्मल बुद्धिपर भी उस समय बलवान मूढ़ताका आवरण पड़ा हुआ था। रानीके कहे अनुसार उसने सब चीज देनी स्वीकार कर लीं। वह निरंकुश हो सानन्द जूआ खेलने लगा। दुर्भागवश उस मन्त्रीको अपनी चतुरतासे रानी रामदत्ताने जीत लिया। कमलनयनी रानी रामदत्ताने मुद्रिका और कटार दोनों चीजें लेकर धीरेसे निपुणमती नामको धायके हाथमें दे दी और उससे यह कहा—तू शीघ्र ही ब्राह्मण सत्यघोषके घर जा। इसकी पत्नीसे सात रत्नोंवाली पिटारी मांगला और मुझे जल्दी लाकर दे दे। धात्री निपुणमती बड़ी ही प्रियवादिनी थी वह शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषके घर चली गई। अपनी चतुरतासे उसने सात रत्नोंकी पिटारी ले ली। लाकर रानी रामदत्ताको दे दी। रानीने राजाके हाथमें वह पिटारी दे दी। राजा लेकर शीघ्र ही राज सभामें आ गया। वहां आकर उसने कुछ अपने रत्नोंके साथ मिलाकर वे सातों रत्न रख दिये। वैश्यपुत्र कुमार भद्रमित्रको राज सभामें बुलाया और यह कहा—भाई ! तुम अपने रत्नोंकी पहिचान कर लो ॥ ११४ ॥ वैश्य पुत्र भद्रमित्र एक ईमानदार व्यक्ति था। अनेक रत्नोंमेंसे उसने अपने सात रत्न चुनकर ले लिये एवं गुणशाली उस कुमारने अन्य रत्न वहींपर छोड़ दिये। वैश्यपुत्र भद्रमित्रकी यह लोकोत्तर निर्लोभता देख राजा सिंहसेन बड़ा ही प्रसन्न हुआ और मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगा—

यह भद्रमित्र कोई सामान्य पुरुष नहीं किन्तु महान् सत्यवक्ता पुण्यवान निर्लोभ और कुलाचारमें चतुर पुरुष रत्न है अवश्य इस पापी सत्यघोषने इस महापुरुषको ठगा है। यह सत्यघोष महापापी धर्माचारणोंसे विमुख झूठा निर्दयी और वज्र मूर्ख है इसे अवश्य दण्ड देना उचित है ॥ ११७ ॥ राजा सिंहसेनने शीघ्र ही मंत्री सत्यघोषको राजसभामें बुलाया और क्रोधसे आग बबूला हो इस प्रकार सेवकोंको आज्ञा दी—यह ब्राह्मण बड़ा भारी दुष्ट है इसके लिये तीन दण्ड मैं निश्चित करता हूँ। प्रथम दण्ड यह है कि प्राचीन प्रथाके अनुसार इसका सारा धन हरण कर लिया जाय। दूसरा यह है कि वज्र मुष्टि नामक मल्लके तीस मुक्के इसपर पड़ें एवं तीसरा दण्ड यह है कि कांसेके तीन बर्तन ताजे गोबरसे भराये जांय और वह समस्त गोबर इसे खवाया जाय। इन तीन बातोंका प्रबन्ध बहुत शीघ्र कर देना चाहिये और इसे बहुत जल्दी दण्ड देना चाहिये ॥ ११९ ॥ राजाकी आज्ञा पाते ही यमराज सरीखे क्रूरभृत्योंने शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर दिया। ठीक ही है जो भृत्य अपने स्वामीकी आज्ञा मानने वाले हैं बहुत शीघ्र वे अपने पर सौंपे हुये कार्यको कर डालते हैं ॥ १२० ॥ अपराधी सत्यघोषको जब राजाने यह दण्ड दिया तो उसकी आत्माको अपमान जनित नितांत कष्ट हुआ। परिणामोंकी क्रूरतासे राजाके साथ उसने तीव्र बैर बांध लिया एवं आर्त ध्यानसे मरकर वह राजाके भण्डारमें सर्प हो गया ॥ १२१ ॥ ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि सत्यघोषकी यह दुर्दशा देखकर किसी मनुष्यको चोरी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि चोरीका कार्य करनेसे संसारमें किसी प्रकारकी कीर्ति नहीं होती तथा अन्याय पूर्वक दूसरेका धन हरण कर लेना चोरी कहलाता है यह चोरी काम इतना निकृष्ट है कि इससे मनुष्योंकी सज्जनता नष्ट हो जाती है। धन आदिके सम्बन्धमें चोरी करनेवालोंका विश्वास नष्ट हो जाता है। चोरी करनेवालेको जबतक वह जीता है तबतक मित्र बन्धु आदिके साथ सदा उसे आपत्तिका सामना करना पड़ता है। जिस प्रकार सुन्दर फूलोंसे शोभायमान और विकसित लता अग्निसे झुलस जानेपर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार चोरीका कार्य करनेसे अनेक गुणोंको उत्पन्न करनेवाली निर्मल कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। यह सब जानकर भी दुर्बुद्धि सत्यघोषने स्वभावसे ही चोरी कर भद्रमित्रके रत्नोंका अपहरण किया था ॥ १२४ ॥ इस चोरी रूप पापके ही कारण उसे मंत्रीपदसे हाथ धोना पड़ा। उस प्रकारका तीव्र अपमान सहना पड़ा ॥ १२५ ॥ तथा राजा सिंहसेनने संतुष्ट होकर बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रको राजसेठ पद प्रदान किया ठीक ही है जब शुभका उदय होता है तब कौनसी दुर्लभ भी बात नहीं प्राप्त हो जाती ॥ १२६ ॥ राजा सिंहसेनने मंत्री सत्यघोषके दुश्चरित्रपर बहुत समय तक

विचार किया एवं उसकी जगह धम्मिल्ल नामके चित्रको मंत्रिपद प्रदान कर दिया ॥ १२७ ॥

इसी पृथ्वीपर एक भयंकर आसना नामकी अटवी विद्यमान थी जो कि अनेक प्रकारके मृगोंसे व्याप्त थी एवं अनेक गुफाओंके दरवाजोंपर ऊगे हुए दर्भके अंकूरोंसे शोभायमान थी। उस अटवीके अन्दर विमल कांतार नामका बन था जो कि बिस्तीर्ण पृथ्वीतलसे शोभायमान था और कांतार नामका ही उसके अन्दर एक विशाल पर्वत था। उसके अन्दर एक बरधर्म नामके मुनिराज आये और उनका आगमन सुन भद्रमित्र नामका सेठ पुत्र उनको बन्दनाके लिये गया ॥१३१॥ मुनिराज बरधर्मने धर्मका उपदेश दिया। बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रने धनकी असारता जान बहुत सा दान करना प्रारम्भ कर दिया। पुत्रको इस प्रकार धारा प्रवाह दान देते देख उसकी माताको बड़ा क्रोध हुआ। यद्यपि उसने भद्रमित्रको बहुत रोका परन्तु उस समय भद्रमित्रके चित्तमें दान देनेका पूरा उत्साह था इसलिये उसने अपनी माकी एक नहीं सुनी। भद्रमित्रकी उस समयकी इस प्रकार दान परायणता देख भाट लोग इस प्रकार उसकी प्रशंशा करने लगे—जो मनुष्य दानी है उसके लिये धन कोई चीज नहीं। जिनके चित्तमें राग भाव नहीं मोह उनका कुछ भी नहीं कर सकता। जो शूरवीर हैं उनके लिये रण क्या चीज हैं वे निर्भय होकर रणमें जाकर युद्ध करते हैं। भद्रमित्रकी मां अत्यन्त दुर्बुद्धि थी भद्रमित्रके द्वारा दिये गये दानको मारे क्रोधके उसने अच्छा नहीं कहा मरकर वह कर्मके उदयसे उसी आसना नामकी अटवीमें व्याघ्री हो गई। ठीक ही है रौद्रध्यान ऐसी बुरी चीज है कि उससे जींवको व्याघ्र और बिल्ली आदिकी योनियोंमें जन्म धारण करना पड़ता है। सर्प हो जाना पड़ता है इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें चाहिये कि वे रौद्र ध्यानका सर्वथा त्यागकर दें—कभी उसके जालमें न फसें ॥ १३६ ॥ एक दिनकी बात है कि सेठ भद्रमित्र क्रीड़ार्थ वनमें गया। उसकी पूर्वभवकी मां व्याघ्रीकी दृष्टि उसपर पड़ी और उसने पूर्वभवके वैरके कारण भद्रमित्रको खा डाला। यह निश्चय है कि इस दुष्ट लोभके ही कारण क्रोध, माया, धर्म और धनका नाश एवं बैर होता है इसलिये ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसे दुष्ट लोभके लिये धिक्कार है ॥१३८॥ राजा सिंहसेनकी रानी रामदत्ताने भद्रमित्रकी पूर्ण प्रतिष्ठा रक्खी थी इसलिये भद्रमित्र रानी रामदत्तासे विशेष स्नेह रखते थे और उसे अपनी मांसे भी अधिक मानते थे। जिस समय व्याघ्रीके खानेके बाद सेठ भद्रमित्रकी मृत्यु हुई वह पूर्वभवके स्नेहके सम्बन्धसे रानी रामदत्ताके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया। उत्पन्न होनेपर सिंहचन्द्र उसका नाम रक्खा गया जो कि एक उत्तम बुद्धिका धारक था। कुमार सिंहचन्द्रका छोटा भाई एक दूसरा कुमार था जिसका कि नाम पूर्णचन्द्र था एवं वह अपने

सिंहचन्द्र और पूर्णचन्द्र दोनों ही कुमार राजा सिंहसेनको बड़े ही विशाल नेत्रोंसे अत्यन्त शोभायमान था । प्यारे थे ॥१४०॥ इस प्रकार आज्ञाकारी स्त्री और दोनों पुत्रोंको पाकर राजा सिंहसेन लोकोत्तर संसारीक सुखका अनुभव करते थे ठीक ही है लोकमें अद्वितीय सुख पाकर सभी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं ॥ १४१ ॥ एक दिन राजा सिंहसेन अपने भण्डारके देखनेके लिये गये । उसमें रहनेवाली रत्न आदि वस्तु देखकर वे लौटते ही थे कि मन्त्री सत्यघोषके पूर्वभवके जीव अगन्धन सर्पकी दृष्टि उनपर पड़ गई । पूर्व बैरके सम्बन्धसे वह दुष्ट क्रोधसे आग बबूला हो गया । फणां ऊंचेको कर लिया । क्रोधसे दोनों नेत्र लाल कर लिये और सिंहसेनको डस लिया ॥ १४३ ॥ वह सर्प एक अत्यन्त विषमय सर्प था इसलिये जिस प्रकार वज्रसे पर्वत नीचे गिर जाता है । पवनके तीव्र आघातसे वृक्ष उखड़ कर जमीनपर गिर पड़ता है उसी प्रकार राजा सिंहसेन भी सर्पके डसते ही नीचे जमीन पर गिर गये । महाराजकी यह दशा देखकर उसी समय अनेक वैद्य बुलाये गये और उनसे विषके नाश करनेके लिये कहा गया परन्तु उनमेंसे एक भी बिषके नाश करनेके लिये समर्थ न हो सका । अन्तमें गारुड़ दण्ड नामके विष वैद्यको बुलाया गया जो कि सर्पोंके मानको मर्दन करने वाला था मन्त्रोंका जानकार विद्वान और सर्पोंको अपने पास खींच लानेमें बड़ा चतुर था ॥ १४६ ॥ बस वहां आकर उसने अपने मन्त्रका स्मरण किया । जिसके भयसे व्याकुल हो दिशा विदिशाओंमें रहनेवाले समस्त सर्प उसने पास बुला लिये और वे सबके सब आ गये ॥१४७ ॥ जिस समय वे समस्त सर्प आ पहुंचे गारुड़दण्डने उनसे कहा--तुम लोग इस अग्निकुण्डमें प्रवेश कर शुद्ध हो और निर्दोष होकर अपने अपने स्थानोंपर चले जाओ । यदि तुम लोग यह कार्य न करोगे तो याद रक्खो मैं तुम्हें कठोर दंड दूंगा। बस उस विषवैद्यके कहते ही चटपट समस्त सर्प अग्निकुण्डमें गिर गये एवं जिस प्रकार जलसे निकलकर बाहिर आ जाते हैं और किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता उसी प्रकार वे समस्त सर्प अग्निसे निकल आये उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। अगंधन नामका सर्प जो कि बिजलीके समान चंचल जीभका धारक था एवं क्रोधसे उसके दोनों नेत्र जाज्वल्यमान थे ज्योंका त्यों खड़ा रहा। उसने विषवैद्यकी कुछ भी नहीं सुनी। विषवैद्यको मालूम पड़ गया कि यही अपराधी है इसलिये उसने इस प्रकार कड़ककर कहा— या तो तू इस राजाका विष पीकर इसे उज्जीवित कर दे यदि तुझे यह बात मंजूर न हो तो इस अग्निकुण्डमें प्रवेश कर । दोनों मार्गोंमेंसे एक मार्गका तुझे अनुसरण करना होगा । सर्प अगंधनकी आत्मा पूर्वभवके महा-बैरसे पजली हुई थी उसने राजाका विष पीना स्वीकार नहीं किया । वह अग्निकुण्डमें प्रवेश कर खाख हो गया

॥१५१॥ राजा सिंहसेन भी मरकर सल्लकी बनमें अशनिघोष नामका मदोन्मत्त हाथी हो गया ॥ १५२ ॥ राजा सिंहसेनके मरजानेसे रानी रामदत्ताका शरीर शोकाग्निसे दग्ध हो गया। वह करूणाजनक रोना रोने लगी। मारे शोकसे वह हाथोंसे वक्षःस्थल कूटने लगी। जमीनपर पड़ गई। समस्त भूषण बसन उतारकर उसने फेंक दिये। एवं रोते रोते उसके नेत्र फीके पड़ गये। वह इस प्रकार चिल्लाकर रोने लगी—कृपानाथ ? तुम कामदेवके समान सुन्दर थे। प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे। शत्रुरूपी अग्निके लिये मेघ थे। पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे। स्त्रियोंके मुख रूपी कमलोंके भ्रमर थे और रतिकलामें प्रेम करनेवाले थे। प्राण प्यारे ! अभागिनी मुझ अकेलीको छोड़कर आप कहां चले गये ॥ १५६ ॥ मैं क्या करूं कहां रहूँ और तुम्हारे बिना प्राणोंको कैसे राखूं। नाथ ! तुम्हारे बिना यह समस्त राज्य मुझे विषकी ज्वालाके समान भयंकर जान पड़ रहा है। स्वामिन् ! पतिके विद्यमान रहते ही राज्य आदि समस्त पदार्थ सुखकर होते हैं किन्तु उसके मरते ही पराधीन हो जानेके कारण वे सब शत्रुके समान दुःखदायी हो जाते हैं ॥ १५८ ॥ इस प्रकार बहुतसा बिलाप कर बड़ी कठिनतासे रानी रामदत्ता शांत हो पाई थी कि उस समय उसे प्रति बोध देनेके लिये दो आर्यिकाये आईं। दानमती और हिरणमती दोनों आर्यिकाओंके ये दो नाम थे। रानी रामदत्ताको धर्मका उपदेश दे संबोधा। रानी रामदत्ता भी पूर्ण पंडिता थी। द्रव्य क्षेत्र आदिका स्वरूप समझ कर उसने उन्हीं दोनों आर्यिकाओंके समीपमें संयम धारण कर लिया ॥ १६१ ॥ राजा सिंहसेनके मर जानेपर कुमार सिंहचन्द्र राजा बने जो कि शत्रुरूप हाथियोंका मान मर्दन करनेवाले थे एवं उनके छोटे भाई कुमार पूर्ण चन्द्रको युवराज पद प्रदान किया इसलिये इन दोनोंको वर्षका भी समय क्षण सरीखा मालूम पड़ने लग गया ॥ १६२ ॥ राजा सिंहचन्द्रको राज्य करते करते कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि अकस्मात् उनके चित्तमें पिताका दुःख उत्पन्न हो गया। उसी समय एक पूर्णचन्द्र नामके मुनिराज भी वहां पर पधारे थे। राजा सिंहसेन उनका आगमन सुन उनके पास गये। भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। मुनिराजके मुखसे यती और श्रावकका धर्म सुना जिससे उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया ॥१६४॥ राजा सिंहचन्द्रने कुल परंपरासे प्राप्त राज्य अपने छोटे भाईको प्रदान किया एवं मुनिराज पूर्ण चन्द्रके चरणकमलोंमें दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१६५॥ मुनिराज सिंहचन्द्रने जिस समय विकथा कषाय आदि प्रमादोंका नाश किया उस समय वे अप्रमत्त गुणस्थानके पात्र बन गये। वे अनेक प्रकारके तपोंका आचरण करने लगे जिससे तपोंके प्रभावसे उन्हें चारण ऋद्धि प्राप्त हो जानेके कारण वे

चारण ऋद्धिधारी मुनिराज बन गये। तपके बलसे उन्हें मनः पर्यय नामका चौथा ज्ञान प्राप्त हो गया जिससे ढाई द्वीपके अन्दर रहनेवाले शुभ पदार्थोंको वे अच्छी तरह जानने लगे ॥ १६७ ॥ आर्यिका रामदत्ताने मनोहर नामके वनमें तप करते हुए मुनिराज सिंहचन्द्रको देखा इसलिये प्रेम पूर्वक बन्दना करनेके लिये वह उनके पास गई भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया मुनिराज सिंहचन्द्र आर्यिका रामदत्ताके उसी भवके बड़े पुत्र थे इसलिये उन्हें देख पुत्र स्नेहसे उसका हृदय उमड़ आया। एवं मोहसे गद्‌गद् हो वह इस प्रकार स्तुति करने लगी— मुने ! युवा अवस्थामें राज्यका त्याग कर आपने यह मुनि मुद्रा धारण की है इसलिये आपके लिये धन्यवाद है तुम राजा सिंहसेनके वंश रूपी कमलके लिये सूर्य समान हो। विद्वान भव्यरूपी चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमाके समान हो और संसारसे पार होनेवाले महापुरुष हो। बस इस प्रकार स्तुतिकर आर्यिका रामदत्ता मुनिराज सिंहचन्द्रके समीप बैठ गई एवं बार बार आदर पूर्वक उनके तपकी कुशल पूछने लगी तथा उसने इस प्रकार मुनिराजसे कहा—मुनिनाथ ! तुम्हारा बन्धु राजा पूर्णचन्द्र धर्मकी कुछ भी पर्वा न कर राज्य सुख भोग रहा है वह मुझे विषय सुखोंका प्रेमी जान पड़ता है कृपाकर कहिये कि वह पवित्र धर्मको धारण करेगा या नहीं क्योंकि तुम दिव्य ज्ञाननेत्रके धारक महापुरुष हो इसलिये अपने दिव्य ज्ञानके द्वारा यह बात मुझे समझा दीजिये ॥१७३॥ उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा वह नियमसे जैन धर्मको धारण करेगा इस बातमें कोई सन्देह नहीं। रामदत्ताने फिर पूछा—प्रभो ! किस उपायसे वह जैनधर्म धारण करेगा कृपाकर कहिए। उत्तरमें पुनः मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—मैं अपने अवधिज्ञानसे पूर्णचन्द्रके भावोंका वर्णन करता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो और पूर्णचन्द्रको जाकर कह दो। तुम निश्चय समझो जिस समय वह अपने पूर्वभवोंको सुनेगा राज्य सुखमें अतिशय मग्न रहनेपर भी वह नियमसे संसारसे विरक्त हो जायगा और दिगम्बरी दीक्षा धारण करेगा। मुनिराज सिंहचन्द्रसे यह राजा पूर्णचन्द्रके वैराग्यका उपाय सुन आर्यिका रामदत्ता बड़ी प्रसन्न हुई और बड़े आदरसे उसने मुनिराजसे यह कहा—कृपाकर राजा पूर्णचन्द्रके पूर्वभवोंको आप कहिए मैं सुननेके लिये तैयार हूँ। उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—मैं खुलासा रूपसे राजा पूर्णचन्द्रके पूर्वभवोंको कहता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कोशल नामका महादेश है जो कि विद्वान लोगोंसे परिपूर्ण है और सम्पदाका खजाना है। कोशल देशमें एक वृद्धग्राम नामका महामनोहर नगर है जो कि सब बातोंमें वृद्ध पुरवासी जनोंसे भरा था। वृद्धग्राम नगरमें एक मृगायण नामका ब्राह्मणोंका सरदार रहता था। उसकी धर्मपत्नीका

२१

नाम मथुरा था जो कि सोना और चम्पाके रंगके समान महा मनोहर वर्णकी धारक थी और पतिकी अतिशय आज्ञाकारिणी थी ॥ १८० ॥ उन दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणीके एक वारुणी नामकी पुत्री थी जो कि अत्यन्त बुद्धिमती थी कदाचित् काल पाकर उसका पिता मृगायण मर गया ॥ १८२ ॥

इसी पृथ्वीपर एक साकेता नामकी नगरी है जिसका कि निर्माण भगवान ऋषभ देवके समयमें उनकी भक्ति प्रगट करनेके लिए देवोंने किया था और जो बारह योजन पर्यंत पृथ्वीपर विस्तीर्ण है। साकेता नगरीका स्वामी राजा अतिबल था जो कि अपने शत्रु राजाओंके वंशका नाश करनेवाला था। अनेक सामन्तोंसे सेवित था। चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान और महान था ॥ १८४ ॥ राजा अतिबलकी रानीका नाम सुमति था जो कि लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी थी। कोकिलाके समान वचन बोलने वाली थी। श्याम थी। लाल लाल होठोंकी धारक हंसके समान मनोहर गतिसे चलनेवाली गम्भीर वचन बोलनेवाली और प्रशस्त थी ॥ १८५ ॥ मृगायण का जीव ब्राह्म, रानीं सुमतिके गर्भसे हिरणवती नामकी पुत्री हुआ ही है। अति रूपसे भोग बिलास करनेवाला पुरुष भी स्त्री हो जाता है ॥ १८६ ॥ जो पुरुप एकांत मिथ्यादृष्टि और नास्तिक है उनका यह है कि गेहूँ आदि पदार्थोंके समान ही जीव पदार्थकी उत्पत्ति होती है, जीव पदार्थ अनादिनिधन नहीं क्योंकि वे यह मानते हैं कि क्षेत्रमें जिस प्रकार धान्यसे दूसरा धान्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार स्त्रीसे पुरुष पुरुषसे स्त्री पशुसे पुरुष पुरुषसे पशु स्वभावसे ही उत्पन्न हो जाता है ॥ १८९ ॥ ग्रन्थकार इसका उत्तर देते हैं कि तुम्हारा एकान्त मिथ्यादृष्टि वादियोंका कहना कथंचित ठीक है क्योंकि क्षेत्रमें जो धान्य बोया जाता है उसी धान्यकी उत्पत्ति होती है जैन सिद्धांतके अनुयायी पुरुष कर्मको प्रधान मानते हैं। वे कर्म अनेक प्रकारके हैं। बिना उनका फल भोगे करोड़ों कल्पकाल क्यों न बीत जांय उनका क्षय नहीं हो सकता ॥ १९० ॥ यह निश्चय है तत्त्वज्ञानियोंने अपने तत्त्व ज्ञानसे आत्माको क्षेत्र कहा है उसमें जैसा कर्म रूपी बीज पड़ता है वैसी ही उत्पद्धि होती है अर्थात् पुरुषपनेका कारण यदि कर्म उत्पन्न हो तो पुरुप उत्पन्न होगा। और स्त्रीपनेका कारण कर्म होगा तो स्त्री होगी इसलिए यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाती है कि जबतक इस जीवके साथ कर्मका सम्बन्ध रहता है तबतक यह अनेक प्रकारकी योनियोंमें घूमता फिरता है किन्तु जिस समय उस कर्मके सम्बन्धका सर्वथा नाश हो जाता है उस समय जीवको मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है जो मोक्ष एक उत्कृष्ट तेज कहा जाता है ॥१९२॥ बस विशेष कुवि-वादके करनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि खोटे विवादसे वास्तविक धर्मका नाश हो जाता है। जो पुरुष तत्त्व

ज्ञानी हैं वे कभी भी किसी प्रकारका विवाद नहीं करते ॥ १९३ ॥ जिस प्रकार धुवांके रहते दीपकका प्रकाश भदमैला रहता है किन्तु जिस समय धूंवा नष्ट हो जाता है उस समय दीपकका प्रकाश उज्ज्वल हो जाता है उसी प्रकार विवाद करनेसे मनुष्योंमें अज्ञानकी वृद्धि होती है और विवाद न करनेसे ज्ञानकी भले प्रकार सिद्धि होती है ॥ १९४ ॥ मृगायणका जीव कन्या हिरणवती क्रमसे युवति हो गई। उसका समस्त अङ्ग सुडौल मनोहर था। लीला पूर्वक वह गमन करनेवाली थीं। चंचल नेत्रोंकी धारक थी एवं स्थूल स्तन और नितम्बोंके भारसे शोभायमान थी ॥ १९५ ॥ इसी पृथ्वीपर एक सुरम्य नामका देश है जो कि यथार्थ नामका धारक है। सुरम्य देशके अन्दर एक पोदन नामका नगर है जो कि अपनी सुन्दरतासे राजराजपुर-कुबेरपुरी अलकाकी शोभा धारण करता है ॥ १९५ ॥ पोदनपुरका स्वामी राजा पूर्णचन्द्र था जो कि यशस्वी था। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ १९६ ॥ राजा अतिबलने कमल समान लाल लाल चरणोंसे शोभायमान कन्या हिरणवतीका विवाह राजा पूर्णचन्द्रके साथ कर दिया ॥ १९८ ॥ कन्या हिरणवती अपनी प्रौढ़ अवस्थासे शोभायमान थी। कमलके समान कोमल और सुन्दर वर्णकी धारक थी इसलिये राजा पूर्णचन्द्रने चिरकाल तक उसके साथ सुख भोगा ॥ १९९ ॥ बहुत दिन तक भोग विलास करते करते उन दोनोंके एक पुत्री हुई जो कि मधुरा ब्राह्मणीका जीव था वही मधुरा ब्राह्मणीका जीव तू रामदत्ता है ॥ २०० ॥ यह संसारकी बड़ी भारी विचित्रता है कि इसमें जो अपना पति है वह तो माता हो जाता है। स्त्री पुत्री हो जाती है और पुत्री पुत्र बन जाता है इसलिये ऐसे दुःखप्रद संसारके लिये सहस्र बार धिक्कार है ॥ २०१ ॥ मेरा तेरे ऊपर विशेष मोह था इसलिये भद्रमित्र नाम का जो मैं सेठ पुत्र था वह तेरा सिंहचन्द्र नामका मैं पुत्र हुआ हूं जो कि मैं इस संसारसे विरक्त हो मुनि बन गया हूँ ॥ २०२ ॥ पहिले भवमें जो तुम्हारे वारुणी नामकी कन्या थी वही मरकर तुम्हारे उदरसे उत्पन्न मेरा छोटा भाई पूर्णचन्द्र हुआ है ॥२०३॥ तुम्हारा पिता राजा पूर्णचन्द्र जो कि पोदनपुरका स्वामी था समस्त राज-पाटको छोड़ कर मुनिराज भद्रबाहुके समीप दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया था वही अवधि ज्ञानसे शोभाय-मान हमारा गुरु हुआ है। तुम्हारी माताने भी आर्यिका दांतमतिके समीपमें आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये हैं। तुम्हारा पति सिंहसेन जो कि सर्पने डस लिया था अशनिघोष नामका विशाल हाथी हुआ जो कि साक्षात् काला मेघ सरीखा जान पड़ता था। वह इसी वनमें एक दिन मदोन्मत्त हो घूम रहा था कि उसने मुझे देखा एवं एकदम वह मुझपर मारनेके लिये टूट पड़ा। मैं चारण ऋद्धिका धारक था इसलिये मैं आकाशमें अधर

स्थित हो गया एवं मैंने उसे सुन्दर वाक्योंमें पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनाकर प्रतिबोध दिया। जिस समय उसने मुझसे अपने पूर्व भवका वृत्तांत सुना तो वह एकदम प्रतिबुद्ध हो गया और मेरे उपदेशानुसार उसने शीघ्र ही संयमासंयम-देश चरित्र धारण कर लिया ॥ २०८ ॥ वह अशनिघोष हाथी उस दिनसे स्थिर चित्त हो गया। शरीर आदिको असार जान वह एकदम विरक्त हो गया। एकमास तो कभी एक पक्ष आदिका उपवास करने लगा। जीव हिंसाके भयसे सूखे पत्ते खाने लगा इस प्रकार अत्यन्त बलवाल भी वह चिरकाल तक घोर तप तपनेके कारण एकदम कृश हो गया इसीलिये जिस प्रकार जल रहित समुद्र शोभा नहीं पाता उसी प्रकार शक्तिहीन वह हाथी भी शोभायमान नहीं जान पड़ता था ॥ २१० ॥ मन्त्री सत्यघोषका जीव जो मरकर सर्प हुआ था और राजा सिंहसेनको काटनेसे वह उनका बैरी हो चुका था अपनी सर्पकी पर्यायसे मरकर वह चामर मृग हुआ था एवं पुनः वहांसे मरकर क्रोधके कारण वह कुकुंट जातिका सर्प हो गया ॥ २११ ॥

एक दिनकी बात है कि एक मासका उपवासी वह आशनिघोष हाथी यूपकेसरिणी नामक नदीके किनारे जल पीनेकी अभिलाषासे गया। वह एकदम कृश शरीरका था इसलिये उसके गाढ़े कीचड़में फंसकर गिर गया। उसके पूर्वभवका बैरी वह सर्प भी वहींपर उत्पन्न हो गया बस हाथी अशनिघोषको देखते ही पूर्वभवके बैरसे उसका क्रोध उमड़ गया। परम धर्मात्मा उस हाथीके मस्तकपर वह चढ़ गया एवं उसे डस लिया ठीक ही है जो पापी होते हैं वे अपने पापकर्मोंको छोड़ते नहीं ॥ २१४ ॥ हाथी अशनिघोषने सर्पके तीव्र विषके कारण समाधि-मरण पूर्वक अपने प्राण छोड़े एवं वह सूर्यके समान देदीप्यमान सहस्रारविमानमें श्रीधर नामका देव हो गया ॥ २१५ ॥ राजा सिंहसेनका जो धम्मिल्ल नामका मंत्री था वह मरकर उसी वनमें जिसमें कि हाथी अशनिघोष उत्पन्न हुआ था बन्दर हो गया एवं हाथी और उसकी आपसमें गहरी मित्रता हो गई ॥ २१६ ॥ जिस समय बन्दरने अपने मित्र हाथोको सर्पसे डसा देखा मारे क्रोधके उसका हृदय पजल गया। उसने अपने मित्रका बदला लेनेके लिये उस कुकुंट सर्पको मार डाला जिससे वह पापी मरकर तीसरे नरकमें गया एवं राजा सिंहसेनका जीव श्रीधर देव अचरज भरी दृष्टिसे स्वर्गकी लक्ष्मीको देखकर मन ही मन यह विचारने लगा—कहांसे तो ये देवांग-नाओंकी,कतार आई। कहांसे ये विमान आए और अपनी ऊंचाईसे आकाशको स्पर्शनेवाले ये बड़े बड़े महल कहांसे आये ? यह इन्द्रजालका खेल तो नहीं है। देव श्री घरको स्वर्गकी विभूतिसे इस प्रकार आश्चर्यमय देख कर उसकी नियोगिनी देवियोंने कहा—प्राणनाथ ! हम जो देवांगना दीख रही हैं वे आपकी ही स्त्रियां हैं। यह

महल आपका ही है तथा और भी जो चीजें आप देख रहे हैं सब आपकी ही हैं। आप यहांकी विभूति देखकर जो आश्चर्य कर रहे हैं वह व्यर्थ है। आपको इस विभूतिको देखकर किसी प्रकारका भ्रम नहीं करना चाहिये ॥ २२१ ॥ देवांगनाओंके इस प्रकार वचन सुन देव श्रीधरको बड़ा आश्चर्य हुआ एवं वह अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगा—मैंने ऐसा कौनसा ठोस पुण्य किया था जिसके कारण मैं यहां आकर उत्पन्न हुआ हूँ। उसी समय उसके अवधिज्ञान उदित हो गया एवं उसके द्वारा उसने समझ लिया कि मैं जो हाथी था वह कीचड़में फंस जानेके कारण मरकर देव हुआ हूँ ॥ २२३ ॥ बस वह अपने मनमें बड़ा ही प्रसन्न हुआ और बार बार इस प्रकार विचारने लगा—व्रताचरणको धन्यवाद है जिसके कारण तिर्यंच जीव भी देव हो जाता है ॥२२४॥ संसारमें वे गुरु धन्यवादके पात्र हैं जो ज्ञानरूपी समुद्रके अन्दर विद्यमान हैं एवं नावके समान जीवोंको संसार समुद्रसे पार करते हैं और स्वयं भी पार होते हैं एवं जिनके द्वारा व्रतोंकी प्राप्ति होती है ॥२२५॥ श्रीधर देवको जब अच्छी तरह ज्ञान हो गया तब वह उस दिनसे स्वर्गकी सम्पदाको भोगने लगा। असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें जाकर क्रीड़ा करने लगा। वह विपुल ऋद्धिका धारक श्रीधर देव अनेक क्रीड़ा पर्वतोंपर शब्द जनित भोग भोगने लगा। एवं सुन्दर कांतिका धारक वह तपसे जायमान उत्तम फलको पाकर सानन्द क्रीड़ा करने लगा ॥ २२७ ॥ देव श्रीधरका शरीर चार हाथ प्रमाण था जो कि मलमूत्र आदि सात धातुओंसे रहित था। चन्दनके समान महकने वाला चन्द्रमाके समान कांति वाला और पुण्यका समूह स्वरूप था। देव श्रीधरकी आयु अठारह सागर प्रमाण थी। अपने तीव्र पुण्यकी कृपासे वह अठारह हजार वर्ष बाद एक बार मनसे आहार ग्रहण करता था। अठारह पक्षोंके बाद ही वह उच्छ्वास लेता था जो कि अपनी सुगंधि से समस्त दिशाओंको महकानेवाला था एवं वह देव सदा कल्पवृक्षोंसे सुगंधित पुष्पोंसे बनी पुष्पमालाओंको धारण करता था। उसके पद्म नामकी लेश्या थी सदा भगवान जिनेंद्रका वह ध्यान करता रहता था। मेरु आदि की यात्रा करता था। नाना प्रकारके नाट्य रसोंको देखता था इसलिये उस दिव्य सुखमें इस बातका पता ही नहीं लगता था कि मेरा काल कहां बीत रहा है ॥ २३१ ॥ ग्रन्थकार व्रतकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस व्रतहीकी कृपासे जीव देवांगनाओंके मुखकमलका आस्वादनेवाला देव हो जाता है। सुन्दर कलायें और रूपका धारक होता है। भांति भांतिकी सुन्दर स्त्रियोंका भोक्ता होता है। समस्त पृथ्वीका स्वामी मोक्षसुखका स्थान होता है विशेष क्या तीनों लोकमें ऐसी कोई चीज नहीं जो इस व्रतके अगम्य हो अर्थात् व्रताचरणकी कृपासे

जीवोंको सब बातें सुलभ रूपसे मिल जाती हैं। धर्मात्माओंको चाहिये कि वे व्रताचरणसे एक क्षण भी चित्तको विमुख न करें ॥ २३२ ॥

ब्रह्म कृष्णदास विरचित वृहत् विमलनाथ पुराणमें सिंहसेनके जीव श्रीधर देवकी विभूतिका वर्णन करनेवाला सातवां सर्ग समाप्त।

आठवां सर्ग।

जो भगवान ऋषभदेव उत्कृष्ट ज्योतीस्वरूप हैं। समस्त कर्मोंसे रहित सिद्धस्वरूप हैं। समस्त पदार्थोंके जानकार सर्वज्ञ हैं। जगतमें वास्तविक शिक्षाके प्रदान करनेवाले हैं और गोप बड़े बड़े मुनियोंसे स्तुत है उन भगवान ऋषभदेवको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ जिस बनमें हाथी अशनिघोष मरा था उसी बनमें शृंगालवान नामका एक भील रहता था। हाथीको इस प्रकार मरा देख उसे बड़ा हर्ष हुआ। अत्यन्त देदीप्यमान गजमोती और दांत उसने ले लिये और वह राजा पूर्णचन्द्रकी राजधानी सिंहपुरकी ओर चल दिया ॥३॥ सिंहपुरमें उस समय एक धनमित्र नामका सेठ रहता था जो कि राज सेठ था और उत्तम हृदयका था। भीलने दोनों दांत और गजमोती जो कि बहुमूल्य थे उस सेठको जाकर दे दिये ॥४॥ राजसेठ धनमित्रने भी उसे बहुमूल्य वस्तु समझ राजा पूर्णचन्द्रकी भेंट कर दिये उन्हें देखकर पूर्णचन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ क्योंकि वे गजमोती शुक्र विमानके समान देदीप्यमान थे और दोनों दांत परम सुन्दर थे ॥५॥ रति प्रेमी और शोभामें कुवेरकी उपमा धारण करनेवाले राजा पूर्णचन्द्रने उन दोनों दांतोंके तो पलंगके चार पाये बनवालिये और गज-मोतियोंका महामनोहर हार बनवालिया जो कि प्रीतिपूर्वक अपने गलेमें पहिना। ठीक ही है संसारकी यही दशा है ॥७॥ माता ! तुम्हीं कहो संसारकी यह भयंकर दशा देख कौन बुद्धिमान इसमें सन्तोष धारण कर सकता है। एवं धन धान्य पुत्र स्त्री आदि किसके संसारमें हुए हैं ! तुम निश्चय समझो विना स्वार्थके कोई भी किसीसे संसारमें प्रेम करना नहीं चाहता क्योंकि यह संसार असार है और जन्म मृत्यु आदि दुखोंका देनेवाला है ॥९॥ मुनिराज सिंहसेन सबोंकी पूर्व भवाविल सुनाकर चुप हो गये आर्यिका रामदत्ता भी उसे सुनकर मन बचन कायसे एकदम विरक्त हो गई ॥१०॥ मोहसे मोहित हो आर्यिका रामदत्ता अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्रके प्रतिबोध-नेके लिये शीघ्र ही सिंहपुरकी ओर चल दी और राजा पूर्णचन्द्रको अनेक प्रकारसे प्रतिबोधने लगी परन्तु राजा पूर्णचन्द्र संसारमें एकदम लिप्त था इसलिये आर्यिका रामदत्ताके बचनोंका उसपर रंचमात्र भी असर नहीं पड़ा।

जब आर्यिका रामदत्ताने यह समझ लिया कि—यह किसी प्रकारसे प्रतिबुद्ध होना नहीं चाहता तब उसने जो
मुनिराज सिंहचन्द्रने राजा पूर्णचन्द्रके पूर्व भवका वृत्तांत कहा था वह सुनाया ॥१२॥ राजा पूर्णचन्द्र भी भव्य
पुरुष थे जिस समय उन्होंने अपने पूर्व भवका वृत्तांत सुना वे एकदम संसारसे भयभीत हो गये। उसी समय
अपने मनमें संसारकी अनित्यता विचारने लगे एवं परिणामोंमें सदा वैराग्य धारण कर ही राज्य करते रहे ॥१३॥
धर्मात्मा होकर उन्होंने बहुत काल तक राज्यका पालन किया एवं अनेक स्त्रियोंके प्यारे होकर भी उन्होंने अपनी
आत्मा सम्यग्दर्शनसे ही अलंकृत रक्खी ॥ १४ ॥ मृत्युके समय आर्यिका रामदत्ताने मोहवश यह निदान बांध
लिया कि इन पुत्रोंके साथ फिर भी मेरा सम्बन्ध हो। वह मरकर महाशुक्र स्वर्गके भास्कर नामका देव हो गया
जो कि सोलह सागरकी आयुका धारक था। पद्म लेश्यासे शोभायमान था। चन्द्रमाके समान मनोहर था।
सोलह हजार वर्षोंके बाद वह एक बार मनसे आहार ग्रहण करता था। सोलह पक्षोंके बाद उसास लेता था।
विक्रिया शक्तिका धारक था। चार हाथ प्रमाण शरीरका धारक था। अनेक देवांगनाओंसे मण्डित हो असं-
ख्याते द्वीप और समुद्रोंमें यात्रा करता था एवं सूर्यके समान देदीप्यमान था ॥१८॥ राजा पूर्णचन्द्र भी पुण्यके
उदयसे उसी स्वर्गके बैडूर्य नामक विमानमें बैडूर्य नामका देव हुआ था। मुनिराज सिंहचन्द्रने भी घोर तप तपा
और आयुके अन्तमें मर कर वे उर्ध्व ग्रैवेयकके प्रीतिंकर विमानमें जाकर अहमिन्द्र हो गये जोकि इक्कीस सागर
की आयुके धारक थे। छठे नरक तकके पदार्थोंको जाननेकी शक्ति रखनेवाले अवधिज्ञानसे शोभायमान थे।
शुक्ल लेश्याके धारक थे। तुषार—बरफके समान उज्ज्वल थे। डेढ़ हाथ प्रमाण उनका शरीर था एवं वे मुनि-
राज सिंहचन्द्रके जीव प्रीतिकर देव अहमिन्द्र हो मोक्षसे कुछ ही कम उर्ध्व ग्रैवेयकके सुखका आस्वादन करने
लगे। और हृदयमें सदा भगवान जिनेंद्रका ध्यान करते सुखसे वहां रहने लगे ॥२२॥

इसी पृथ्वीके रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणोमें धरणी तिलक नामका मनोहर पुर है जो कि अपनी अद्वितीय
शोभासे पृथ्वीका तिलक हो जान पड़ता है ॥२३॥ धरिणी तिलकपुरका स्वामी राजा अतिवेग था जो कि अनेक
विद्याओंका पारगामी था। राजा अतिवेगकी स्त्रीका नाम सुलक्षणा था। महाशुक्र विमानसे आर्यिका रामदत्ता-
का जीव वह भास्कर देव चया और उसके गर्भमें आकर श्रीधरा नामकी पुत्री हुआ ॥ २५ ॥

उसी रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक अलका नामकी दूसरी पुरी है जो कि नाना प्रकारके रत्नोंका
स्थान है। उस पुरीका रक्षण करनेवाला राजा दर्शक था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था ॥२६॥ जिस

समय कन्या श्रीधरा दृढ़ स्तनी पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान स्थूल नितम्ब और कृश कटिकी धा क पूर्ण युवती हो गई राजा अतिवेगने उसका विवाह अलकापुरीके स्वामी राजा दर्शकके साथ कर दिया ॥ २७ ॥ राजा दर्शक और रानी श्रीधरा दोनों ही सानन्द विषय सुखोंका अनुभव करने लगे। राजा पूर्णचन्द्रका जीव वैडूर्य देव वहांसे चया। रानी श्रीधराके गर्भमें आकर यशोधरा नामकी पुत्री हुआ। जो पुत्री खिलते हुए नवीन यौवनसे शोभायमान थी। पतली कटिकी धारक थी। उसके दोनों नेत्र विशाल थे। विशाल स्तन और नितम्बोंके कारण वह मंद मंद रूपसे गमन करनेवाली थी और चंद्रमाके समान अतिशय शोभायमान थी ॥२९॥

इसी पृथ्वीपर एक भास्कर नामका पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे स्वर्गपुरकी समानता धारण करता है। उस भास्कर पुरका रक्षण करनेवाला उस समय राजा सूर्यवर्त था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था ॥३०॥ जिस समय कन्या यशोधराके पिताको यह ज्ञात हो चुका कि कन्या यशोधरा पूर्ण युवती हो गई है तो उन्होंने उसका विवाह राजा सूर्यावर्तके साथ कर दिया एवं राजा सूर्यावर्त भी जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण क्रीड़ा करता है उसी प्रकार युवती यशोधराके साथ मनमानी रमण क्रीड़ा करने लगा ॥३१॥ राजा सिंहसेनका जीव वह श्रीधर देव स्वर्गोंके अनुपम सुख भोगकर वहांसे आयुके अन्तमें चया और रानी यशोधराके गर्भमें अवतीर्ण हो रश्मिवेग नामका पुत्र हो गया ॥३२॥ एक दिन राजा सूर्यावर्तको मुनिचंद्र नामके मुनिराजके दर्शन हो गये। उनसे मुनिधर्मका उपदेश सुनकर उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया। राज्यका सर्वथा परित्याग कर दिया और दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥३३॥ राजा सूर्यावर्त जब मुनि बन गये तो रानी यशोधराको बड़ा कष्ट हुआ। उसे भी संसारकी असारतासे वैराग्य हो गया एवं संसारके भोग और उनके कारणोंसे विमुख हो उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥३४॥ जमाई और पुत्रीकी दीक्षा का समाचार सुन यशोधराकी मा रानी श्रीधरा भी एक दिन संसारसे विरक्त हो गई और गुणवती आर्यिकाके पास जाकर उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३५ ॥ पिता माताके दीक्षा ले जानेपर कुमार रश्मिवेग राजा बन गये। कामदेवके समान उनकी उस समयकी अद्वितीय शोभा थी। पहिले उपार्जन किये गये पुण्यके फलको भोगनेवाले थे। पुण्यात्मा और प्रसन्न चित्तके धारक थे ॥३६॥

एक दिनकी बात है कि राजा रश्मिवेग सिद्धकूटके जिन मन्दिरोंकी बंदनाके लिये और उनके वनोंमें क्रीड़ा करनेके लिये गये ठीक ही है भव्य जीवोंकी बुद्धि पवित्र हुआ ही करती है। वहांपर एक हरिचन्द्र नामके चारण

ऋद्धि धारी मुनि विद्यमान थे उन्हें देखकर राजा रश्मिवेगने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया ॥ ३८ ॥ प्रणामके बदलेमें मुनिराज हरिचन्द्रने राजा रश्मिवेगको धर्म वृद्धि एवं वे यह कहने लगे—राजन ! मैं भगवान जिनेन्द्रके द्वारा प्रतिपादित, अतिशय हितकारी धर्मका उपदेश देता हूँ, तुम ध्यान पूर्वक सुनो जिस प्रकार रस्सी कूवेंमेंसे घड़ा आदि चीजको बाहर खींच लेती है उसी प्रकार जो धर्म जीवोंको नरक और तिर्यंच गतिसे छुटा दे उसे ही वास्तविक धर्म कहते हैं॥ ४० ॥ जो चीज सवेरे देखनेमें आती है वह शामको देखनेमें नहीं आती इसीलिये विद्वानोंने संसारको अनित्य और दुःखोंका देनेवाला ठहराया है ॥ ४१ ॥ संसारमें रहकर संयोग और वियोगोंसे जायमान प्रचुर दुःख भोगने पड़ते हैं एवं उन दुःखोंसे जिस प्रकार घोड़े के सींगोंमें धर्मकी प्राप्ति नहीं होती, उस प्रकार धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ४२ ॥ राजन् ! संसारमें अनेक संयोग और वियोगोंके कारण दृढ़ रूपसे कर्म बंधते रहते हैं। उन कर्मोंके कारण नरक जाना पड़ता है। समस्त संसारमें घूमना पड़ता है ॥४३॥ स्त्री पुत्र कुटुम्बी राज्य शरीर सुख ये सब बातें मृत्युके समम साथ नहीं चलतीं इसलिये इनके साथ स्नेह करना वृथा है ॥ ४४ ॥ संसारमें वे ही पुरुष धीर वीर हैं वे ही सुखी विद्वान और सुन्दर हैं जो कि इस प्रकार भोगोंका सर्वथा परित्याग कर मोक्षकी इच्छासे दिगम्बरी दीक्षा धरते हैं ॥४५॥ जो मूढ़ पुरुष सदा स्त्रियोंमें आसक्त रहते हैं महा लोभी और महा मानी होते हैं वे सूद्रोंके समान महा निंद्य कीचड़से व्याप्त संसार रूपी कूपमें पड़े रहते हैं। किन्तु जो महापुरुष स्वार्थ परिपूर्ण सुखका सर्वथा परित्याग कर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान करते हैं देखते २ वे अन्तर्मूहुर्तमें समस्त कर्मोंको खिपा देते हैं ॥४७॥ राजा रश्मिवेगने मुनिराज हरिचन्द्रसे जब यह धर्मका स्वरूप सुना तो वह मन ही मन ऐसा बिचारने लगा—बिशाल राज्य और विपुल भोगोंके रहते भी जब संसारमें मरण है तब क्षण भरमें विनश जानेवाले राज्य भोग आदिको अपनाना व्यर्थ है। मैं अब उस परम पावन धर्मका आराधन करूंगा जिससे मुझे फिर संसारमें न घूमना पड़े। बस उसने यह दृढ़ बिचार कर शीघ्र ही सम्यग्दर्शनके साथ संयम धारणकर लिया। दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥ ५० ॥ परिणामोंको विशेष शुद्धिसे उन्होंने उग्र तप तपा। तपके प्रभावसे चारण ऋद्धि प्राप्त हो गई जिससे वे आकाशमें भ्रमण करने लगे ॥ ५१ ॥ एक दिनकी बात है कि विहार करते करते वे मुनिराज रश्मिवेग कांचन नामकी गुफाके पास जा पहुंचे और उसे समाधिके उचित जानकर उसमें विराज गये। वहांपर उन्होंने पर्यंक आसन मार लिया। ध्यानसे दोनों नेत्र निश्चल कर लिये एवं बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी

आकुलतासे रहित वे चिदानन्द चैतन्य स्वरूप परमात्माका ध्यान करने लगे ॥५३॥ मुनिराज रश्मिवेगको कांचन गुफामें इस प्रकार ध्यानारूढ़ सुन श्रीधरा और यशोधरा नामकी दो आर्यिकायें उनके पास आईं और भक्ति पूर्वक बन्दना कर उनके पास बैठ गईं ॥ ५४ ॥ मंत्री सत्यघोषका जीव जो कि अपने प्रबल पापसे नरक गया था वहांके दुःखोंको भोगकर वह वहांसे निकल आया। प्रबल पापके उदयसे वह संसारमें जहां तहां बहुत घूमा और कांचन गुफामें एक विशाल अजगर हो गया ॥५५॥ पूर्व बैरके सम्बन्धसे वह अजगर मुनिराज रश्मिवेगके पास आया और क्रोधसे भबल कर मय दोनों आर्यिकाओंके मुनिराज रश्मिवेगको निगल गया ॥ ५६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगने अन्त समयमें अच्छी तरह आराधनाओंको आराधा जिससे कापिष्ठ स्वर्गके सूर्यप्रभ नामक विमानमें वह सूर्यप्रभ नामके देव हो गये ॥ ५७ ॥ श्रीधरा और यशोधरा नामकी दोनों आर्यिकायें भी कापिष्ठ स्वर्गके रूचक विमानमें जाकर देव हो गईं, दोनों आर्यिकाओंके जीव वे दोनों देव अत्यन्त मनोहर थे। अणिमा आदि विभूतियोंसे विभूषित थे। चौदह सागर प्रमाण आयु थी एवं मनोहर रूप और अनेक भोगोंके खजाने स्वरूप वे पांच हाथ प्रमाण शरीरसे शोभायमान थे ॥ ५८ ॥ मुनिराज और दोनों आर्यिकाओंके निगलनेसे उस अजगरने तीव्र पापका बंध किया था इसलिये आयुके अन्तमें उस तीव्र पापके उदयसे वह अजगर पंकप्रभा नामके नरकमें जाकर नारकी हो गया और अपना किया हुआ पापोंका फल जो कि बचनोंसे कहा नहीं जा सकता भोगने लगा ॥ ६० ॥ अन्य नारकियोंने जिस समय उस अजगरके जीव नारकीको देखा तो उनका एकदम क्रोध उबल उठा एवं वे आपसमें छेदना भेदना शूलीपर चढ़ा देना और गाली गलौज करना आदि कारणोंसे उसे मारने ताड़ने लगे। उस पापी अजगरके जीव नारकीको काक उल्लू बिल्ली घोड़ा बाग बीछूके स्वरूपके धारक नारकियोंने अनेक प्रकारसे मारना पीटना प्रारम्भ कर दिया। ठीक ही हैं कर्मकी गति रोकी नहीं जा सकती ॥ ६२ ॥ इसी जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध भरत क्षेत्रमें एक चक्रपुरी नामकी नगरी है जो कि उत्कृष्ट है और शोभामें इन्द्रपुरीकी उपमा धारण करती है ॥ ६३ ॥ चक्रपुरीका स्वामी राजा अपराजित था। जिसका कि शासन शत्रुओंपर पूर्ण रूपसे चलता था और उसकी सुन्दरी नामकी रानी थी जो कि शोभामें इन्द्राणीका अनुकरण करती थी ॥ ६४ ॥ मुनिराज सिंहचन्द्रका जीव वह अहमिंद ऊर्ध्व ग्रैवेयकसे चया और रानी सुन्दरीके गर्भमें अवतीर्ण हो चक्रायुध नामका पुत्र हो गया ॥ ६५ ॥ अपनी युवावस्थामें कुमार चक्रायुधने पांच सौ राज कन्याओंके साथ विवाह किया और वह सानन्द विषय भोगोंका अनुभव करने लगा ॥ ६६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगका जीव अर्कप्रभ

देव भी अपनी आयुके अन्तमें कापिष्ठ स्वर्गसे चया और राजा चक्रायुधकी चित्रमाला नामकी रानीसे वज्रायुध नामका पुत्र हो गया ॥ ६७ ॥

इसी पृथ्वीपर एक पृथिवी तिलक नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे साक्षात् पृथिवीका तिलक स्वरूप जान पड़ता है। सदा वह उत्तमोत्तम पुरुष रत्नोंसे भरा रहता है और उसके चैत्यालय और मन्दिर सदा अनेक उत्सवोंसे जग मगाते रहते हैं ॥ ६८ ॥ पृथिवी तिलकपुरका स्वामी राजा अतिबल था जो कि समस्त राज लक्षणोंसे शोभायमान था। उसकी रानीका नाम प्रियकारिणी था जो कि अपनी अनुपम शोभासे देवांगना सरीखी जान पड़ती थी ॥ ६९ ॥ श्रीधरा नामक आर्यिकाका जीव रुचक देव कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी प्रियकारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हो कन्या हो गया जिसका कि नाम रत्नमाला था ॥ ७० ॥ एक दिन राजा अतिवेगने पूर्ण यौवनसे शोभायमान राजपुत्री रत्नमालाको देखा। उसे विवाहके योग्य समझकर कुमार वज्रायुधको प्रदान कर दी एवं सूर्यको जिस प्रकार अपनी स्त्री प्यारी है उसी प्रकार वह रत्नमाला कुमार वज्रायुधकी परम प्यारी बन गई ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार रंभाका स्वामी रंभाके साथ रमण करता है नागेन्द्र लक्ष्मीके साथ और चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है उसी प्रकार कुमार वज्रायुध भी सुन्दरी रत्नमालाके साथ रात दिन रमण करने लगा और भोग जन्य सुख भोगने लगा ॥ ७२ ॥ आर्यिका यशोधराका जीव देव भी कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी रत्नमालाके गर्भसे रत्नायुध नामका पुत्र हुआ जो कि मन रूपी कमलको विकास करनेवाले पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था। इस प्रकार आपसमें सम्बन्धके रखनेवाले वे सिंहसेन आदिके जीव बड़े प्रेमसे पुण्यके महाफल स्वरूप सुखका भोग करने लगे ठीक ही है पुण्यके उदयसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है ॥ ७४ ॥ वे सबके सब उत्तम धर्मरूपी कल्पवृक्षके द्वारा समर्पित उत्तम हाथी घोड़े मंत्री सहित समान स्त्रियोंसे जायमान सुखको सानन्द भोगने लगे ॥ ७५ ॥ एक दिनकी बात है कि राजा अपराजितने पिहितास्रव नामके मुनिराजसे धर्मका उपदेश सुना जिससे उन्हें संसार शरीर, भोगोंसे वैराग्य हो गया। धीर वीर राजा अपराजितने अपने पुत्र चक्रायुधको समस्त राज्य प्रदान कर दिया और वह तत्काल दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥ ७६ ॥ अपने कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको पाकर कुमार चक्रायुध अतिशय शोभायमान जान पड़ने लगा। उनने समस्त पृथ्वीको अपने वश कर लिया और पूर्ण रूपसे प्रजाका पालन करने लगे ॥ ७७ ॥ एक दिनकी बात है कि राजा चक्रायुध सानन्द राजसिंहासन पर विराजमान थे और सिंहासनमें लगे हुए दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे

अचानक ही उन्हें अपने मस्तकमें एक कासके फूलके समान सफेद केश दीख पड़ा ॥ ७८ ॥ विशुद्ध बुद्धिका धारक वह राजा अपने मस्तकका सफेद केश देख इस प्रकार विचार लगा—मुझे बुलानेके लिये यह महाराज यमराजका दूत आ पहुंचा है। नियमसे अब मुझे मृत्युका सामना करना पड़ेगा। जिस प्रकार वनमें मालती लताके पुष्पका होना व्यर्थ है क्योंकि वहां उसका आदर करनेवाला कोई नहीं होता उसी प्रकार स्वग और मोक्ष को प्रदान करनेवाले धर्मके बिना मेरा भी समस्त जीवन विफल ही चला गया ॥ ८० ॥ वह राजा चक्रायुध मन बचन काय तीनों योगोंसे संसारसे विरक्त हो गया। अपने पुत्र वज्रायुधको उसने राज्य प्रदान कर दिया और वह सीधा वनकी ओर चल दिया ॥ ८१ ॥ अपने पिता मुनिराज अपराजितसे उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। अभ्यासका सिद्धांतरूपी समुद्रके पारको पहुंच गये। किसी नदीके पास एक विशाल बन था उसके पहाड़की चोटीपर घोर तप तपने लगे ॥ ८२ ॥ अपने पिताके दीक्षित हो जानेके बाद कुछ दिन कुमार वज्रायुधने राज्य किया। कदाचित उन्हें भी संसारसे वैराग्य हो गया। शीघ्र उन्होंने अपने पुत्र रत्नायुधको राज्य दे दिया और वे दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गये। ठीक ही है सज्जन प्रकृतिके मनुष्य जो भी उत्तम कार्य कर डालें थोड़ा है ॥ ८३ ॥ जिस प्रकार धूपसे व्याकुल पुरुष बृक्षकी छाया पाकर शांतिका अनुभव करने लगता है उसी प्रकार मुनिराज चक्रायुधने भी पूर्ण रूपसे अपनी आत्माका ध्यान किया जिससे उन्होंने परमपद मोक्ष पदको पा लिया और वे अविनाशी सुखके भोगनेवाले बन गये ॥ ८४ ॥ मुनिराज वज्रायुध भी ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतोंके अग्र-भागपर तप तपने लगे। शीत ऋतुमें नदियोंके तटोंपर और बर्षा ऋतुमें बृक्षोंके नीचे बैठकर उन्होंने तप तपना प्रारम्भ कर दिया तथा वे प्रति समय भगवान ऋषभदेवके गुणोंका स्मरण करने लगे ॥ ८५ ॥

वज्रायुधका पुत्र कुमार रत्नायुध जिस समय राजा बन गया तो धर्मका सर्वथा परित्याग कर वह प्रति समय भोगोंसे मग्न होने लगा और भोगोंका अति लोलुपी हो उनके सुखोंको भोगने लगा ॥ ८६ ॥ राजा रत्नायुधका एक मत्त हस्ती था जिसके कि गंडस्थलोंसे सदा मद झरता था अतएव वह साक्षात् मेघ सरीखा जान पड़ता था। उसके दोनों कुम्भस्थल पहाड़की चोटी सरीखे थे जिससे वह साक्षात् पर्वत सरीखा जान पड़ता था। एक दिन वह मनोहर नामके वनमें गया वहांपर उस समय एक वज्रदंत नामके मुनिराज आये थे और वे अनेक धर्म स्वरूप लोकानुयोगका वर्णन कर रहे थे। हाथी मेघ विजयको भी धर्मोपदेश सुननेका अवसर मिल गया धर्मो-पदेश सुनते ही उसे पूर्व जन्मका स्मरण हो गया और वह इस प्रकार अपनी निन्दा करने लगा ॥ ८९ ॥

पूर्व पापके उदयसे मैंने यह तिर्यंच गति पाई है। मुझसे बढ़कर पापी कौन है बस इस प्रकार अपनी प्रति-
क्षण निन्दा करने लगा। बनके ताजे फलोंका भी उसने खाना छोड़ दिया ॥ ९० ॥ धर्म तत्त्वका यथार्थ रूपसे
श्रवण करनेवाला वह हाथी मेघ विजय रातदिन संसारकी असारता मानने लगा। बनमें घूमना उसने सर्वथा
छोड़ दिया जिससे वह चाहे भूखा हो चाहे प्यासा हो एक ही जगह वह निश्चल खड़ा रहने लगा ॥ ९१ ॥ जो
पुरुष भव्य जीव हैं उन्हें सत्सङ्गति अवश्य फलके देनेवाली होती है क्योंकि यह बात स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है
कि काली कोयल भी बसंत ऋतुके संसर्गसे मीठे और मनोहर शब्द करनेवाली हो जाती है एवं जिस दर्भ
घासका भगवान जिनेन्द्रके पैरसे स्पर्श हो जाता है वह इन्द्रके मस्तकका भूषण बन जाता है तथा भगवान
अर्हंतके संसर्गसे उनका बचन भी पक्ष दिन मास आदिके भले बुरेका सूचक हो जाता है। इसलिये सत्संगति
का प्रभाव अचिन्त्य है ॥ ९३ ॥ मेघ विजय हाथीकी इस प्रकार दुःखित अवस्था देखकर राजा रत्नायुध एकदम
व्याकुल हो गया और उसने शीघ्र ही मंत्री और वैद्यको बुलाकर इस प्रकार पूछा—वैद्यो ! शीघ्र बताओ हाथी
मेघ विजयको यह क्या विकार उत्पन्न हो गया है जिससे यह एकदम निर्बुद्धि दीख पड़ता है ? वैद्योंको इस
बातका पता लग चुका था कि बनमें मुनिराज बज्रदन्तको देखनेसे इसकी यह दशा हुई है इसलिये उन्होंने कोई
भी विकार न बतलाकर यह कहा—राजन् ! कृपाकर हमारी बात सुनिए। यह हाथी मेघ विजय अत्यन्त दयालु
है। बनमें जाकर इसने किसी मुनिसे धर्मोपदेश सुना है इसलिये इसे जाति स्मरण हो गया है अब यह शुद्ध
मनुष्यसे बनाये गये और घृत आदिसे तैयार किये गये भोजनको ही खा सकेगा अब यह पहिलेके समान फल
फूल आदि नहीं भक्षण कर सकेगा ॥ ९७ ॥ राजा रत्नायुधकी आज्ञासे शीघ्र ही वैसा आहार तैयार हो गया।
तैयार हो जानेपर हाथीके सामने रख दिया गया। हाथी भी उसे शुद्ध जानकर चट खा गया ॥ ९८ ॥ हाथीकी
यह विलक्षण चेष्टा देख राजा रत्नायुधको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मुनिराज बज्रदंतसे सब हाल जाननेके
लिये शीघ्र ही हाथीपर चढ़कर बनकी ओर चल दिया ॥ ९९ ॥ बनमें जाकर उसने अवधिज्ञानी मुनिराज बज्र-
दंतको नमस्कार किया। हाथीका सब हाल कहा एवं इस बातकी प्रार्थना की कि हाथीकी ऐसी दशाका कारण
क्या है ? मुनिराज बज्रदंत भयरूपी कमलोंके लिये सूर्य स्वरूप थे इसलिये उन्होंने यह कहा—राजन् ! मैं सब
हाल कहे देता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—इसी जम्बूद्वीपके सूर्यकी कांतिके समान देदीप्यमान भरत क्षेत्रमें एक
छत्रपुर नामका उत्तम नगर है जो कि रत्नोंकी पंक्तियोंसे सदा शोभायमान रहता है ॥ १०२ ॥ छत्रपुरका स्वामी

राजा प्रीतिभद्र था जो कि शत्रुओंसे सदा निर्भय रहता था। शोभामें इन्द्रके समान शोभायमान था। विशाल वक्षस्थलका धारक था और अनेक गुणोंका समुद्र था ॥ १०३ ॥ राजा प्रीतिभद्रकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि अत्यन्त मीठा बोलनेवाली थी। पतिव्रतापनेमें सती सुन्दरीके समान थी और सुन्दरतामें कामदेवकी सुन्दरी रतिकी उपमा धारण करती थी॥ १०४ ॥ राजा प्रीतिभद्रके रानी सुन्दरीसे उत्पन्न प्रीतिङ्कर नामका पुत्र था जो कि गुणोंमें महान था और अपनी पांडित्य पूर्ण चतुरतासे देवोंको भी रंजायमान करनेवाला था ॥ १०५ ॥ राजा प्रीतिभद्रके मंत्रीका नाम चित्रमति था। उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि कमला लक्ष्मीके समान परम सुन्दर वर्णके धारक शरीरसे शोभायमान थी अतएव वह देवांगना सरीखी सुन्दरी थी ॥ १०६ ॥ मंत्री चित्रमतिका पुत्र विचित्रमति था जो कि ज्ञान विज्ञानोंका पारगामी था। अनेक कलाओंमें कुशल था। कामदेवके समान परम सुन्दर था और चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ १०७ ॥

एक दिनकी बात है कि मंत्रिपुत्र विचित्रमतिके साथ राजपुत्र प्रीतिंकर वनमें क्रीड़ा करनेके लिये गया। वहांपर उस समय धर्मरुचि नामके मुनिराज विद्यमान थे। कुमार प्रीतिंकरने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। सिंहाकार आसनसे उनके सामने बैठ गया एवं पुनः नमस्कार कर वह इस प्रकार पूछने लगा—भगवन्! जो मनुष्य गृहस्थ हैं और व्रतोंके धारण करनेकी परिपूर्ण शक्ति नहीं रखते उन्हें धर्म स्वरूप संपूर्ण व्रतोंमेंसे कौनसा व्रत आचरण करना चाहिये ॥ ११० ॥ मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिंकरको आसन्न भव्य समझ कर यह कहा—प्रिय कुमार! जो मनुष्य धर्मके स्वरूपके जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे पांचों तिथियोंमें निर्मल रूपसे प्रोषधोपवास व्रतको धारण करें और स्त्रियोंके अंगका सर्वथा परित्याग कर दें क्योंकि ऐसा करनेसे सुख प्राप्त होता है और आत्माकी विशुद्धि होती है यदि प्रोषधोपवासके समय स्त्रियोंकी लालसा रक्खी जायगी तो अनाचार माना जायगा ॥ १२ ॥ यह निश्चय है जो पुरुष उत्कृष्ट रूपसे स्त्रियोंके अभिलाषी हैं वे दरिद्री रोगी मूर्ख और धर्मरहित पापी माने जाते हैं ॥ ११३ ॥ देव पूजा गुरुओंकी सेवा स्वाध्याय संयम तप और दान ये गृहस्थोंके छह आवश्यक कर्म बतलाये हैं इनके करनेसे मोक्षकी सीढ़ी स्वरूप धर्मकी सिद्धि होती है ॥ ११४ ॥ यदि किसी पुरुषमें इतनी बातकी करनेकी भी शक्ति न हो तो भगवान जिनेंद्रने वाह्य अभ्यन्तर रूप सात प्रकारका मौन बतलाया है उसे धारण करना चाहिये ॥ ११५ ॥ वह मौन इस प्रकार है—वमिके समय मौन रखना, मैथुन स्नान भोजन मल (मूत्र विष्ठा) का मोचन सामायिक भगवान जिनेन्द्रकी पूजा बन्दना आदिमें मौन रखना।

समस्त मनुष्योंको चाहिये कि वे प्रति दिन इस सात प्रकारके मौनको धारण करें। ऐसा करनेसे उनके ज्ञानावरण आदि कर्मोंका बन्ध नहीं हो सकता ॥११७॥ तथा इस नित्य मौनके सिवाय नैमित्तिक—किसी खास समय-का भी मौन बतलाया है उसका भी विधि पूर्वक आचरण करना चाहिये। उस नैमित्तिक मौनके धारण करनेसे भी परम्परासे मोक्ष मिलती है और इहलोक परलोक दोनों लोकोंका सुधार होता है। मुनिराजसे इस प्रकार गृहस्थके योग्य धर्मका स्वरूप सुनकर धर्मात्मा कुमार प्रीतिङ्करने पुनः उनसे यह पूछा—भगवन्! पहिले यह व्रत किसने पाला था जिससे मुझे यह विभूति इस भवमें प्राप्त हुई है। उत्तरमें मुनिराज धर्मरुचिने कहा—वत्स! मैं यथार्थ रूपसे तुम्हारे पूर्व भवका वृत्तान्त सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो ठीक ही है मुनिगण धर्म शील हुआ ही करते हैं ॥ ११८ ॥

इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कोशल नामका देश है और उसमें कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है। कौशाम्बी पुरीका स्वामी उस समय राजा हरिवाहन था जो कि न्याय मार्गके अनुसार प्रजाका पालन करनेवाला था। उसकी स्त्रीका नाम शशिप्रभा था और उन दोनोंसे उत्पन्न पुत्र सुकोशल था ॥ १२२ ॥ कुमार सुकोशल गुरुका अतिशय विनयी था इसलिये पूर्व पुण्यके उदयसे भगवान जिनेन्द्र प्रति पादित समस्त सिद्धान्तको वह थोड़े ही दिनोंमें पढ़ गया था। जिस समय वह पूर्ण युवा हो गया उसके साथ अनेक कन्याओंका विवाह हो गया परन्तु कुमार सुकोशलके चित्तपर विद्याभ्यासका पूर्ण प्रभाव जमा हुआ था इसलिये परिणामोंमें सदा विरक्तिके कारण वह उनके संग रंचमात्र भी भोगविलास करना पसन्द नहीं करता था। कुमार सुकौशलको यह लोकोत्तर विरक्ति देख उसके माता पिताको बड़ी चिन्ता हो गई। दुःखित हो वे इस प्रकार विचारने लगे—यदि कुमारकी यही वैराग्यमय चेष्टा रही तो यह निश्चय है इसके कोई भी संतान नहीं हो सकती और बिना सन्तानके इसके वंशकी बृद्धि भी असम्भव है ॥१२४॥ एक दिन कौशाम्बी पुरीके उद्यानमें मुनिराज सोमप्रभ आकार विराजे। वनपालके मुखसे उनका आना सुना इसलिये उनकी बंदनाके लिये वह चल दिया ॥ १२५ ॥ मुनिराजके पास पहुंचकर राजा हरिवाहनने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। उन्होंने जो धर्मोपदेश दिया वह सुना एवं इस प्रकार मुनिराजसे कहा—भगवन्! मेरा पुत्र सुकोशल राजनीतिका रंचमात्र भी जानकार नहीं है। अनेक सुन्दरी स्त्रियां उसके मौजूद है तथापि वह उनके साथ भोगविलास करना नहीं चाहता यह क्या बात है? मुझे इस बातकी बड़ी भारी चिन्ता है आप मेरी इस भ्रान्तिको शीघ्र दूर करें क्योंकि भ्रान्तिका दूर करना

सज्जनोंका स्वभाव होता है ॥१२७॥ राजा हरिवाहनको इस प्रकार चिन्तित देख मुनिराज इस प्रकार कहने लगे— इसी कोशल देशमें एक नरकूट नामका विशाल नगर है। उसका स्वामी राजा राणक था जो कि अत्यन्त प्रतापी था और रणमें सदा विजय पानेवाला था। उसी नगरमें एक तुङ्गिल नामका गृहस्थ सेठ भी निवास करता था ॥ १२९ ॥ सेठ तुङ्गिलकी स्त्रीका नाम तुङ्गिला था जोकि सती साध्वी और अपने स्वामीकी आज्ञाकारिणी थी। उन दोनोंसे उत्पन्न तुङ्गभद्रा नामकी पुत्री थी जो कि मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुई थी ॥१३०॥ पूर्व जन्मके तीव्र पापके उदयसे उसके बाप, मा, भाई सभी मर गये। धन भी सब किनारा कर गया जिससे वह भीख मांगकर अपना पेट भरने लगी ॥ ४३२ ॥ जब वह आठ वर्षकी हो गई तब वह दुखित होकर ईंधन ढोने लगी और बड़े कष्टसे अपना पेट भरने लगी ॥ १३२ ॥

एक दिनकी बात है कि वह लकड़ी लानेके लिये वनको गई। वहांपर एक पिहितास्रव नामके अवधिज्ञानी मुनिराज थे। उसके चारों ओर अनेक जन विद्यमान थे इसलिये उनके मध्यमें वे तेजपुंज सरीखे जान पड़ते थे। दीन कन्या तुंगभद्रा भी उनके पास आई। मुनिराजकी भक्ति पूर्वक बन्दना की। नमस्कार किया। हाथ जोड़कर उनके समीप बैठ गई। पुण्यके उदयसे धर्मोपदेश सुना। और विनय पूर्वक मुनिराजसे यह पूछा—स्वामिन्! पूर्व जन्ममें मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिससे मैं महा बदसूरत निन्द्य कार्य करनेवाली और दुःखिनी हुई हूँ। उत्तरमें मुनिराजने कहा—पुत्री! तू किसी बातका अपने चित्तमें दुःख न कर। यह जीव सदा अनेक प्रकारके पाप करता ही रहता है और उनका दुःखदायी फल भोगता रहता है ॥१३७॥ प्रीतिंकरके ये बचन सुन तुंगभद्राने कहा—कृपानाथ इसमें कोई संदेह नहीं मैंने अवश्य दुष्कर्मोंका उपार्जन किया है। अब यह बतलाइये कि किस उपायसे मेरे इन सब पापोंका नाश होवे। उत्तरमें ध्यानशील अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा—पुत्री! तुम स्वर्ग और मोक्ष सुखके देनेवाले मौन ब्रतको धारण करो। मौन ब्रतके धारण करनेसे तुम्हारा यह सब संकट टल जायगा। मुनिराजके मुखसे यह बात सुनकर तुंगभद्राने पूछा—प्रभो! मौन ब्रत कैसे और किस मासमें किया जाता है और उसके करनेकी क्या विधि है! कृपाकर आप बतलाइये उत्तरमें मुनिराजने कहा— नित्य और नैमित्तिकके भेदसे मौनब्रत दो प्रकारका है। तुम सुनो हम उसका स्वरूप वर्णन करते हैं—पुत्री! अपने आत्माकी विशुद्धिके लिये तुझे भोजन वमि स्नान मैथुन और मलमोचनमें सदा मौन ब्रत धारण करना चाहिये यह नित्य मौन ब्रत है। तथा पूस मासकी वदी एकादशीके दिन खासकर तुझे मौन धारण करना चाहिये यह

नैमित्तिक मौन व्रत है। नैमित्तिक मौनव्रतकी विधि इस प्रकार है—पूस बदी एकादशीके दिन सोलह प्रहर पर्यंत मौन सहित तुम्हें प्रोषध व्रत करना चाहिये। उस दिन मौन व्रतके समय तुम्हें हाथसे किसी प्रकारका इशारा न करना होगा। हुंकार भी न करना होगा। मुखसे भी किसी प्रकारका इशारा न करना होगा। खासी खखारका शब्द हुंहू शब्द दांत मीचकर बोलना हंसना आंखोंसे इशारा करना शरीरका कंपाना और जिनालय के अन्दर बैठकर दिनरात सोना भी न होगा। पुत्री! यह व्रत अत्यन्त सरल है। तुझे अपने कर्मोंके खिपानेके लिये यह व्रत अवश्य करना चाहिये। तुंगभद्राने मुनिराजके वचन प्रमाणीक मान लिये और वह व्रत लेकर अपने घर चली आई। जबतक वह जीती रही विधि पूर्वक उस व्रतका आचरण उसने किया आयुके अन्त समय में पंचपमेष्ठिका स्मरण कर उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया वही तुंगभद्राका जीव यह कुमार सुकोशल हुआ है॥ १४७॥ राजन्! यह कुमार सुकोशल तीव्र तपोंको तपकर नियमसे इसी भवमें मोक्ष जायगा। इसमें किसी प्रकारका संदेह मत समझो। मुनिराजके मुखसे इस प्रकार सुकोशल कुमारका पूर्वभव सुनकर राजा हरिवाहनको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया। वह मुनिराजके पाससे सीधा राजमहल लौट आया। अपने पुत्र सुकोशलको राज्य प्रदान किया एवं मुनिराज पहितास्रवके चरणोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥ १४९ ॥ राजा हरिवाहनकी इस प्रकार धीर वीरता देख सौ राजा उसके साथ और भी दीक्षित हो गये। ठीक ही है शत्रुओंपर सदा विजय पानेवाले रधी वीर पुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा हुआ करती है ॥ १५० ॥ कुमार सुको-शल अपने पिताके मुनि हो जानेपर यद्यपि राजा बन गये परन्तु परिणामोंमें वैराग्य रहनेके कारण उनका चित्त राजकी ओर कम झुकता था तथापि वे मंत्रीकी प्रेरणासे बराबर राज्यका कार्य सम्हालते थे किन्तु उनका शास्त्रों का अभ्यास सदा चलता रहता था। और स्त्रियोंके अन्दर उनकी सदा अनिच्छा रहती थी ॥ १५१ ॥

राजा सुकोशलका मन्त्री बड़ा दुष्ट था एक दिन उसने अपने पुत्र श्रुतसागरको एकान्तमें बुलाया और उस पापीने इस प्रकार उससे कहा—पुत्र! राजा सुकोशल अभी बालक हैं। किसी प्रकारकी राजनीतिका जानकार नहीं तुम्हें चाहिये कि तुम किसी भी उपायसे इसे मार डालो ॥ १५३ ॥ तुम युवा और राजके योग्य हो तुम निश्चय समझो यह सारा राज्य मैं तुम्हें दूंगा और मैं तुम्हारा मन्त्री बनकर रहूँगा बस फिर राज्य हमारा ही हो जायगा ॥१५४॥ मन्त्रिपुत्र श्रुतसागर अपने पिताके इस प्रकार स्वामी द्रोह सूचक वचन सुनकर चित्तमें बड़ा दुःखित हुआ। उसने अपने स्वयं पिता मन्त्रीकी कुछ भी पर्वा न की, शिर पटकता हुआ वह शीघ्र ही राजाके

पुरा० १७७

पास चला गया। सज्जन पुरुषोंपर सदा प्रेम रखनेवाले मन्त्रीपुत्र श्रुतसागरने शीघ्र ही राजाको बुलाया और जो उसके पिता मन्त्राने कहा था सब ज्योंका त्यों राजाको कह सुनाया ॥१५६॥ श्रुतसागरके बचनोंपर राजा सुकोशलने पूर्ण ध्यान दिया। दुर्बुद्धिके धारक उस मन्त्रीको तिरस्कार पूर्वक देश नगर और राज दरबारसे तत्काल बाहिर निकाल दिया ॥१५७॥ एक दिन राजा सुकोशलने क्या देखा कि बिजलीके गिरनेसे दो हँस मर गये हैं बस एकदम उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया और मुनिके समान राज वैभवको उन्होंने मन्त्री श्रुतसागरको समझा दिया ॥ १५८ ॥ राज्य भारके योग्य उन्होंने मन्त्री श्रुतसागरको समझा इसलिये समस्त राजपाट उसे सौंप दिया एवं पुण्यवान वे राजा सुकोशल अपने पिताके पास दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गये ॥ १५९ ॥ मन्त्री मतिसागर जिसे कि राजा सुकोशलने उसके दुष्ट भावोंके कारण राज्यसे तिरस्कार पूर्वक निकाल दिया था वह जहां तहां पृथ्वीपर घूमता फिरा एवं अन्त समयमें उस स्वामीद्रोही मूर्ख और दुष्टने यह निदान बांधा—मैं जो इस राजा सुकोशलने अनादर पूर्वक निकाला गया हूँ उससे मैं ऐसा हूं जो इससे कष्ट पूर्वक मरूं बस ऐसा महादुष्ट निदान बांधकर वह मन्त्री मरा और मुद्गल पर्वत पर वह लाल लाल बालोंका धारक सिंह हो गया ॥१६२ एक दिनकी बात है कि पिता पुत्र वे दोनों मुनि जहां तहां विहार करते करते मुत्गल पर्वतपर आये और उसकी विस्तीर्ण शिलापर योग धारण कर स्थित हो गये। जहांपर ये योग धारण कर विराजे थे वह सिंह भी वहांपर आया। पूर्व जन्मके तीव्र बैरके कारण मारे क्रोधके उसके नेत्र लाल हो गये एवं तीव्र नख और दांतोंसे दोनों मुनियोंका शरीर विदारण कर वह दुष्ट भक्षण कर गया ॥ १६४ ॥ वे दोनों ही मुनिराज परम धीरवीर थे अपने परिणामोंकी विशुद्धिसे वे क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ हो गये एवं केवल ज्ञानको प्राप्त कर मोक्ष शिलापर जा विराजे ॥ १६५ ॥ मौनव्रतका महात्म्य बतलानेवाली यह कथा सुनाकर मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिङ्करसे कहा—कुमार ! मौनव्रतका यह विशिष्ट फल है इसलिये नित्य नैमित्तिकके भेदसे जो दो प्रकारका मौन बतलाया है वह अवश्य आचरण करना चाहिये। यद्यपि यह व्रत देखनेमें अति सुलभ जान पड़ता है तथापि वह महान् पुण्यका कारण है इसलिये यह अवश्य आचरण करने योग्य है ॥१६६॥ मुनिराज धर्मरुचिसे यह मौनव्रतका विशेष माहात्म्य सुन राजपुत्र प्रीतिङ्करने मन्त्री पुत्रके साथ शीघ्र ही मौनव्रतकी प्रतिज्ञा लेली। भक्ति पूर्वक दोनोंने मुनिराजको नमस्कार किया और वे अपने नगरकी ओर चल दिये ॥१६७॥ जिस समय वे अपने नगरकी ओर लौट रहे थे उस समय मार्गमें क्या देखते हैं कि अपनी हिरणीके साथ आनन्द विषय भोग

करते हिरणको सिंहने मार डाला है। बस हिरणकी वैसी दशा देखकर उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया और वे मन ही मन यह विचारने लगे—जिस प्रकार अपनी स्त्रीमें तीव्र तृष्णा रखनेवाले इस हिरणको इस सिंहने मार डाला है उसी प्रकार कालरूपी सिंह भी हमे नियमसे हनेगा—उसके भी पंजेसे बचना हमारा अत्यन्त कठिन है। बस शीघ्र ही उन दोनों कुमारोंने वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया। परिणामोंमें अत्यन्त कोमलता धारण कर ली एवं बनमें मुनिराज धर्मरुचिके पास जाकर शीघ्र ही दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गये ॥ १७० ॥ अत्यन्त कृश शरीरके धारक दयाके समुद्र महामुनि प्रीतिङ्करके घोर तपके कारण क्षीरस्राव नामकी ऋद्धि प्राप्त हो गई ॥ १७१॥

विद्वान समस्त पापोंके नाश करनेवाले एवं शुद्ध मुनिराज प्रीतिङ्कर विहार करते करते एक दिन साकेत नगरके बनमें जा पहुंचे। किसी दिन जब वे आहारके लिये नगरमें गये और और बुद्धिषेणा नामकी वेश्याने जब उन्हें चर्या पूर्वक अपने मकानके समीपसे निकलता देखा तो वह शीघ्र ही उनके पास आई और इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन करने लगी—भगवन्! मैं हीन निन्दनीक और दानके योग्य कुलसे रहित हूँ इसलिये तपके भंडार आप मेरा दिया आहार तो ग्रहण कर ही नहीं सकते? उत्तरमें मुनिराजने कहा जिस कुलमें शराब और मांसका स्पर्श स्वप्नमें भी न होगा और जहांपर किसी प्रकारका अनाचार न दीख पड़ेगा योगीन्द्र लोग उसी कुलका आहार ग्रहण कर सकते हैं ॥१७५॥ जो मुनि मांसका भक्षण करते हैं वे दोनों ही आश्रमों से भ्रष्ट हैं अर्थात् न वे गृहस्थ ही कहे जाते हैं और न मुनि ही कहे जाते हैं क्योंकि वे अनाचारी हैं। अतएव वे भीलोंके समान निन्दनीक हैं ॥ १७६ ॥ मुनिराजके ऐसे बचन सुनकर बुद्धिषेणाने पुनः यह पूछा—प्रभो! जीवोंको उच्च गोत्र उच्च कुल सुन्दर रूप और कीर्त्ति किस प्रकार प्राप्त होती है कृपा कर आप खुलासा रूपसे यह बतलाइये। उत्तरमें मुनिराजने कहा—जो मनुष्य मद्य मांस और मधुके त्यागी हैं और अपनी आत्मामें ब्रह्मचर्यका बल रखते हैं उन्हींके उच्च गोत्र वा उच्च कुल आदिकी प्राप्ति होती है अन्यको नहीं ॥ १७८ ॥ बस इस प्रकार बुद्धिषेणाको समझा कर मुनिराज प्रीतिङ्कर बनमें लौट आये उन्हें कुछ बिलम्बसे लौटते देख मुनि-राज विचित्र मतिने कहा—मुने! इतनी देर तक आप किस स्थानपर ठहरे रहे थे। देव! जो पुरुष मुमुक्षु है—मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये सदा बनमें ही रहना उचित बतलाया गया है। मुनिराज विचित्र मतिकी यह बात सुन मुनिराज प्रीतिंकरने आदिसे अन्त तक वेश्या बुद्धिषेणाका समस्त वृत्तान्त कह डाला जिसे

सुनकर मुनिराज विचित्र मतिको अति आनन्द हुआ ॥१७६॥ दूसरे दिन मुनिराज विचित्र मति भी आहारके लिये गये एवं दुर्भाग्यवश वे वेश्या क्षुद्राके घरमें प्रवेश कर गये वेश्याने उन्हें भी मुनिराज प्रीतिङ्करके समान जानकर वन्दना की। और धर्मोपदेश सुननेकी लालसा प्रगट की परन्तु उसे देख मुनिराजका चित्त चंचल हो गया इसलिये वे धर्म कथाकी पर्चा न कर दुर्बुद्धि हो इस प्रकार काम कथा कहने लगे—सुन्दरी ! तुम उन्नत स्तनोंसे शोभायमान हो। गोरे अंगकी धारक हो। तुम्हारे दोनों नेत्र हिरणीके समान मनोहर हैं तुम चन्द्रमुखी और प्रौढ़ उम्रकी हो धर्मके विषयमें तुम क्या पूछना चाहती हो ? देखो यह यौवन चला जाता है और बुढ़ापा आ धमकता है। तुम्हारा यह सुन्दर शरीर भोगविलासोंके लिये है सो तुम भोगविलास न कर क्यों इस महा मनोहर शरीरको निरर्थक खो रही हो और किस कार्यके लिये इसका लालन पालन कर रहीं हो ॥१८५॥ मुनिराज विचित्रमतिकी यह बात सुनकर वेश्या बुद्धिषेणा मुस्कराने लगी एवं मुस्कराते हुये उसने यह उत्तर दिया—मुने ! काचके लिये उत्तम मणि और गधाके लिये हाथीको छोड़ता मैंने कोई नहीं देखा है। भोगविलास काच और गधाके समान हैं एवं धर्माचरण उत्तम मणि और हाथीके समान हैं। धर्माचरण छोड़कर भोगविलासोंसे शरीरको नष्ट करना व्यर्थ है। मुनि विचित्रमतिकी काम वासना प्रज्वलित हो चुकी थी। वेश्याकी बातका उनके चित्तपर जरा भी असर नहीं पड़ा एवं कामसे अत्यन्त पीड़ित हो वे इस प्रकार कहने लगे—सुन्दरी ! तुम देवांगनाके समान मनोहर रूपसे शोभायमान हो इसलिये मेरे लिये तो तुम्हीं उत्तम मणि और उत्तम हाथी हो तुम्हें देखकर धर्माचरणकी ओर चित्त नहीं जा सकता ॥ १८७ ॥ बुद्धिषेणाका कार्य यद्यपि वेश्याका था परन्तु वह धर्मको कुछ समझती थी। इस लिये वह पुनः मुनि विचित्रमतिको समझाने लगी—मुने ! विषय जनित थोड़ेसे सुखकी लालसासे बिलकुल पासमें आये हुए मोक्ष सुखको कोई छोड़ता नहीं सुना। मोक्षका प्रधान कारण तुमने दिगम्बर लिङ्ग धारण कर रक्खा है, मोक्षका सुख बिलकुल तुम्हारे समीप है, तुम्हें निन्दित विषय भोगोंकी लालसा कर उसे न छोड़ देना चाहिये ॥ १८८ ॥ मूढ़ मुनिपर उसके बचनोंका कब प्रभाव पड़ सकता था। विचित्रमतिने अपने मुनिलिङ्गकी कुछ भी पर्वा न की वह एकदम मूढ़ बनकर इस प्रकार कहने लगा—सुन्दरी मुझे इस समय तो तुम्हारे संसर्गसे जगमान सुख ही रुच रहा है। जो सुख इन्द्रियोंके गोचर नहीं वह नित्य हो चाहे अनित्य वह वैसा ही रहे। मुनिके इन निर्लज्ज बचनोंसे वेश्या बुद्धिषेणको यह मालूम पड़ चुका कि यह धर्माचरणसे भ्रष्ट है, इसलिये उसे बड़ा क्रोध आया और उसका घोर तिरस्कार किया जिससे मुनि

विचित्रमतिको गाढ़ अपमान मान बड़ा कष्ट हुआ। सीधा वह बनको चला गया एवं मनमें किसी प्रकारका धर्माचरण न रख ढोंगसे वह एक एक वा दो दो मासके बाद पारणा करने लगा जिससे राजा पर भी उसका प्रभाव पड़ गया और वह विचित्रमतिका अनन्य भक्त बन गया ॥ १६१ ॥ जिस समय विचित्रमतिका अनन्य भक्त राजा हो गया, उस समय बुद्धिषेणा अपने मनमें बार बार विचारने लगी, जब इस मुनिके वश राजा हो गया है तब अवश्य ही यह कोई महान पुरुष है। बस मारे भयके बुद्धिषेणा भी मुनिके वश हो गई। मोहसे अन्ध हो मुनिराजने भी उसकी संगति करनी प्रारम्भ कर दी और तपसे अपना मुंह मोड़ लिया ॥ १६३ ॥ जिस किसी मनुष्यका जिस किसीके साथ बैर वा स्नेह होता है वह पूर्व भवके बैरके सम्बन्धसे होता है इसमें किसी-का दोष नहीं इसलिये किसीको बुरा भला कहना व्यर्थ है ॥१६४॥ मोहकी प्रबलतासे जीवको तिर्यंच योनिके अन्दर तिर्यंच होना पड़ता है।

राजन वज्रायुध! वह विचित्रमति मुनिका जीव मरकर तुम्हारा यह हाथी हुआ है। तीन लोकका स्वरूप सुनकर इसे अपना जाति स्मरण हो गया इसलिये मारे शोकके इसने खाना पीना छोड़ दिया ॥ १९६ ॥ राजा रत्नायुधने मुनिराज बज्रदन्तके मुखसे जब इस प्रकार हाथीके पूर्व भवका वृत्तांत सुना तो उसने लक्ष्मी राज्य स्त्री जनित सुख आदिको बहुत धिक्कारा। वह उनसे विरक्त हो गया। राज्य भार अपने पुत्रको प्रदान किया एवं अपनी माता रत्नमालाके साथ संयम धार लिया ॥१६८॥ तपके आचरणका जो आश्रम बतलाया गया है यदि उस आश्रमकी कुछ भी पर्वा न की जाय तो वह तपा हुआ तप भी व्यर्थ चला जाता है। यदि तप करते भी चित्त गृहस्थाश्रममें ही फंसा रहे तो वह तप नाशक बन जाता है ॥ १६६ ॥ वे मुनिराज रत्नायुध सूर्यकी ओर टकटकी लगाकर घोर तप तपने लगे और अन्तमें समाधिपूर्वक प्राणोंको त्याग कर अच्युत स्वर्गमें जाकर देव हो गये ॥ २०० ॥ आर्यिका रत्नमालाने भी घोर तपके भावसे स्त्रीलिंगको छेद दिया। अच्युत स्वर्गमें जाकर वह अच्युत नामका देव हो गई जो कि देव सुखरूपी समुद्रकी वृद्धिके लिये चन्द्रमा स्वरूप था। वे दोनों देव बाईस सागर प्रमाण आयुके धारक थे। परम सुखी थे। बाईस हजार वर्षोंके बाद एक बार मनसे आहार ग्रहण करते थे। बाईस पक्षोंके बाद अपनी सुगन्धिसे समस्त दिशाओंको महकानेवाला सुगन्धित उसास लेते थे और अनेक देवांगना और देव उनकी सेवा करते थे ॥२०३॥ शुक्ललेश्याके धारक थे। तीन हाथके शरीरसे शोभायमान थे और पद्मराग मणिके समान प्रभाके धारक थे ॥ २०४ ॥

मंत्री सत्यघोषका जीव जो अजगरकी पर्यायसे चौथे नरकमें गया था। वह वहांसे अपनी आयुके समाप्त हो जानेके बाद निकला एवं अनेक योनियोंमें घूमनेके कारण उसने बहुत दुःख भोगा ॥ २०५ ॥ पद्मपुर नगरमें एक दारुण नामका भील रहता था जो कि काजलके समान काला था और साक्षात् पाप स्वरूप था ॥ २०६ ॥ उसकी स्त्रीका नाम मंगिया था जो कि काजलका पिंड स्वरूप थी एवं ऐसी जान पड़ती थी मानो यह जगतमें ब्रह्माने अन्धकारकी माला रच दी है। भीलिनी मंगीके मंत्री सत्यघोषका जीव वह नारकी अतिदारुण नामका पुत्र हुआ जो कि महाभयंकर था। डरपोकोंको भय प्रदान करनेवाला था दुष्ट था और मृत आदि दीन पशुओंका नाशक था। छत्रपुरका एक प्रियंगुखण्ड नामका बन था जो कि हिंसक जीवोंसे महा भयंकर था। जहां तहां विहार करते करते मुनिराज बज्रायुध वहां पर आये। गहन निर्जन स्थानमें कायोत्सर्ग मुद्रा धारण कर वे विराज गये और सिद्धोंके स्वरूपका चिन्तवन करने लगे। मुनिराज बज्रायुधका शरीर घोर तपोंके तपनेके कारण एकदम कृश था इसलिये वे आधे जले मुर्दे सरीखे जान पड़ते थे एवं उनके शरीरकी प्रभा एकदम नष्ट हो गई थी। मृगोंके पकड़नेकी खोजमें भील पुत्र अतिदारुण भो घूमता घूमता वहां आ पहुंचा एवं मुनिको देखकर पूर्व बैरके सम्बन्धसे उस दुष्टने वाण धनुष पर चढ़ा लिया। हाथमें मारनेके लिये पत्थर ले लिये एवं मारनेके लिये घुमाता हुआ वह इस प्रकार दुर्वचन कहने लगा—तू कौन है! और इस जनशून्य मेरे वनमें तू कहांसे और क्यों आया है? किसका पुत्र और तेरा क्या नाम है? जल्दी बता यदि तू जल्दी न बतायेगा तो बाण पत्थर और मुक्कोंसे तुझे अभी यमराजके मन्दिरमें पहुंचा दूंगा ॥ २१३ ॥ परम ध्यानी मुनिराज ऐसे कब भयभीत होनेवाले थे वे मेरुपर्वतके समान निश्चल सिंहके समान धीर वीर समुद्रके समान गंभीर हो गये। चित्तमें उत्तम कोटिकी शांति धारण कर वे रंचमात्र भी ध्यानसे न चिगे। मुनिराजका इस प्रकारका मौन देख उस दुष्टका क्रोध एकदम उबल उठा एवं पूर्वबैरके सम्बन्धसे वह उन्हें पत्थरोंसे मारने लगा ॥ २१५ ॥ कण्ठपर्यन्त उस पापीने मुनिराजको पत्थरोंकी मार मारी परन्तु वे ध्यानरूपी मजबूत भीतिके सहारे खड़े थे इसलिये वे जमीनपर न गिर पाये। २१६। मुनिके गलेमें दुष्टने धनुष डाल दिया और दोनों भुजाओंसे उन्हें खींचने लगा तथापि वे मुनिराज रंचमात्र भी चल विचल न हुए ॥ २१७ ॥ अन्तमें दुष्टने क्या किया दोनों भुजाओंसे धनुषको पकड़ लिया एवं तीक्ष्ण बाणों से मुनिराजका मस्तक छेदने लगा। यह विघ्न वास्तवमें विद्वानोंके वचनके अगोचर था। मुनिराज बज्रायुधने अपने ऊपर तीव्र उपसर्ग समझकर बारह भावनाओंका चिन्तवन करना प्रारम्भ कर दिया। वे रंचमात्र भी उस

विघ्नसे विचलित न हुये ठीक ही है ध्यान और तप वही प्रसस्त माना गया है जो विघ्नके उपस्थित हो जानेपर मनुष्यको विचलित न होने दे ॥२१६॥ वे मुनिराज चित्तके अन्दर इस प्रकार भावना भाने लगे—संसारमें जितने धन धान्य आदि पदार्थ दीख पड़ते हैं सब अनित्य हैं तथा पिता पुत्र कुटुम्ब आदि पदार्थोंमें भी कोई अविनाशी नहीं दीख पड़ता ॥ २२० ॥ छह खण्डके स्वामी अनेक देवोंसे सेवित चक्रवर्ती आदि राजा भी कालरूपी सर्पके द्वारा डसे जानेके कारण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट हो गये हैं ॥२२१॥ देव, आर्यखण्डकी पृथ्वीके स्वामी, दृष्टि गोचर उत्तमोत्तम पदार्थ, धरणेंद्र पर्वत, वृक्ष तारा ग्रह दैत्य देवेन्द्र इष्ट और अनिष्ट रूपी चीजें और पापके कारण पुद्-गल सभी कालके द्वारा नष्ट हो जाते हैं। कालका प्रतीकार किसीके पास नहीं—उसे कोई वश नहीं कर सकता ॥ २२३ ॥ इस प्रकार संसारमें समस्त पदार्थ अनित्य हैं इस संसार रूपी वनमें जीव रूपी मृगको कालरूपी सिंह नियमसे खाता ही है। जिस समय इस जीवपर कालरूपी सिंह कुपित हो जाता है उस समय इसकी कोई भी उससे रक्षा नहीं करता ॥ २२३ ॥ विशेष क्या ! रे मन ! इस संसारमें जिस समय इस जीवको कालरूपी सिंह जकड़कर पकड़ लेता है उस समय पिता और माता, पुत्रकी रक्षा नहीं कर सकते। एवं पुत्र, पिता माताको नहीं बचा सकता ॥ २२५ ॥ इस प्रकार इस जीवका संसारनें कोई अपना नहीं है। इस संसारमें कोई किसीका नहीं है, समस्त जगत मतलबी है स्वार्थ रहनेपर एक दूसरेको चाहता है ॥ २२६ ॥ इस प्रकार संसार बड़ा ही स्वार्थी है। निश्चय नयसे यह जीव नित्य है। सिद्ध बुद्ध और निरंजन है। किसीके द्वारा छेदा जानेवाला न होनेके कारण अछेद्य हैं। अनादि है। चैतन्य स्वरूप है। ध्यान करने योग है और समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित निर्द्वंद्व है ॥ २२७ ॥ इस प्रकार यह जीव अकेला ही है। पुत्र स्त्री आदि इसका कोई भी नहीं। जीवसे यह पुद्गल भिन्न है। पुद्गलसे जीव भिन्न है मन भी जीवसे भिन्न है इसलिये विनाशीक कर्मके साथ अविनाशीक जीव की कोई भी मित्रता नहीं है ॥२२८॥ इस प्रकार यह जीव कर्मसे अन्य हैं। यह देव मेद मज्जा आदि सप्त धाते स्वरूप है। विष्टा और मूत्रसे व्याप्त हैं। अपवित्र हैं। हड्डियोंसे व्याप्त है। रोग रूपी सर्पोंका बिल है और अनेक प्रकारसे पोषा जानेपर भी नष्ट ही होता जला जाता है इसलिये कृतघ्नी है ॥ २२६ ॥ यह शरीर चारों ओरसे चामसे वेष्टित है। महानिन्द्य दुर्गन्धिका खजाना है इसलिये कर्मोंके कारण इस शरीरका विद्वान लोग ध्यानके लिये ही पोषण करते हैं विषय भोगके लिये नहीं ॥२३०॥ इस प्रकार यह शरीर अपवित्र है। मिथ्यात्व अवि-रति त्रास प्रमाद कषाय और विषय आदिके द्वारा इस जीवकेसदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है। उससे यह

जीव नरकमें जाकर अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार इस जीवके मिथ्यात्व द्वारा सदा कर्मों का आस्रव होता रहता है। आस्रवके दो भेद माने हैं। एक द्रव्यास्रव दूसरा भावास्रव । जिसके द्वारा दोनों प्रकारके कर्मों का निरोध हो वह संवर कहा जाता है। इस संवर तत्वकी प्राप्ति गुप्ति समिति धर्म व्रत आदिके द्वारा होती है इसलिये व्रत और धर्म आदिका करनेवाला जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार दोनों प्रकारके आस्रवका रुक जाना संवर कहा जाता है और संवर तत्त्वका चिन्तवन संवरानुप्रेक्षा कही जाती है। सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जराके दो भेद माने हैं। स्थितिके पूरे होनेपर प्रति समय कर्मों का खिरता रहना सविपाक निर्जरा है और तप आदिके द्वारा जबरन कर्मों का खिपा देना अविपाक निर्जरा है। व्रतियोंके अविपाक निर्जरा होती है क्योंकि वे तप आदिके द्वारा जबरन कर्म खिपाते हैं और अन्य सबोंके सविपाक निर्जरा होती है ॥२३३॥ इस प्रकार एक देश रूपसे कर्मों का खिपना निर्जरा है। यह समस्त लोक अनादि निधन है न इसकी आदि है और न इसका अन्त है। यह जीव अजीव आदि द्रव्य स्वरूप है। विशाल है। किसीके द्वारा बनाया हुआ नहीं है तथा यह उन्नत पुरुषाकार हैं ॥ २३५ ॥ ध्यानकी सिद्धिके लिये योगी लोग लोकके आकारका चिंतवन करते हैं क्योंकि मनके स्थिर करनेसे ध्यान हो सकता है तथा लोकका आकार चिन्तवन करनेसे मन स्थिर होता है और मनकी स्थिरतासे परमपद मोक्ष पदकी प्राप्ति होती हैं ॥ २३५ ॥ इस प्रकार लोकके स्वरूपका चिन्तवन करना लोकानुप्रेक्षा हैं। समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति संसारमें बड़ी कठिन है क्योंकि इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा जीवोंको आत्मरूपी तेजका स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो जाता है। तथा वह सम्यग्ज्ञान कर्मरूपी वृक्षके लिये फरसा है। मनरूपी पर्वतके भेदनेमें वज्र है और अज्ञानरूपी अन्धकारके नाशके लिये सूर्य है इसलिये सम्यग्ज्ञानका हृदयसे ध्यान करना आवश्यक है। इस प्रकार संसारमें सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है ॥२३७॥ भगवान जिनेन्द्रने जो भावव्रत आदि स्वरूप धर्म बतलाया है वह बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये धर्मात्माओंको चाहिये कि वे प्रयत्न पूर्वक धर्मका चिंतवन करते रहें ॥ ॥ २३८ ॥ इस प्रकार धर्मके स्वरूपका चिंतवन करना धर्मानुप्रेक्षा है। इस प्रकार बारह भावनाओंके चिंतवन करनेवाले मुनिराज वज्रायुधने दुष्ट अति दारुण भील द्वारा किया गया समस्त उपसर्ग बड़ी शांतिसे सह लिया। जितेन्द्रिय मुनिराज धर्म ध्यानमें लीन हो गये। प्राणोंका परित्याग कर सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर अहमिन्द्र हो गये। एवं वहांका सानन्द सुख भोगने लगे ॥ २४० ॥ मुनिराज वज्रायुधके जीवके शुक्ल लेश्या थी। एक

हाथका सुन्दर शरीर था। वह तेजका खजाना था। तेतीस सागरकी आयु थी। किसी प्रकारकी उनके साथ विशेष उपाधि न थी एवं भ्रांत ज्ञानसे वे रहित थे॥ २४१ ॥ शास्त्रमें सर्वार्थ सिद्धिके देवोंके अन्दर इतनी अद्भुत शक्ति बतलाई है कि यदि वह चाहे तो निमेषका जितना प्रमाण बतलाया है उसके अठारहवें भागमें ही अर्थात् देखते देखते वह लोकाकाशको उलटा कर सकता है॥ २४२ ॥ मुनिराज वज्रायुधको कष्ठ देने-वाला वह अति दारुण भील पापके तीव्र उदयसे मरकर सातवें नरक गया। सातवें नरकका इतना भयङ्कर दुःख है कि उसे भगवान जिनेन्द्रके सिवाय कोई नहीं कह सकता ॥२४३॥

मुनिराज वज्रायुध पर जब समस्त सुखोंकी स्थान और कठिनतासे प्राप्त होनेवाली सर्वार्थ सिद्धिरूपी स्त्री भी आसक्त हो गई तब संसारकी स्त्रियोंका मुग्ध होना कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि जो शांति स्वरूप संयमी हैं उनको स्थिर ध्यानसे मोक्ष सुख भी प्राप्त हो जाता है तब अन्य सुखोंका प्राप्त होना आश्चर्यकारी नहीं ॥२४४॥ जिन महापुरुषोंने इन्द्रियोंको विजय कर लिया है उनके मोक्ष स्थान स्वर्ग और नरेन्द्रोंका सुख दुर्लभ नहीं किन्तु जिन्हें इन्द्रियोंने ही जीत लिया है उनके लिये मोक्ष सुख और नरेन्द्र सुख सभी कुछ दुर्लभ हैं ॥२४५॥

श्रीकृष्णदास द्वारा विरचित वृहत् विमलनाथ पुराणमें रानी रामदत्ताके जीव सर्वार्थसिद्धि गमन वर्णन करनेवाला आठवां सर्ग समाप्त ॥८॥

नवमा सर्ग।

जो भगवान ऋषभदेव मोक्षके प्रदान करनेवाले हैं। पृथ्वीके रक्षक है। आदि अन्तसे रहित है सार स्वरूप है और कल्याण स्वरूप हैं उन भगवान ऋषभ देवको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूं॥ १ ॥ इसी पृथ्वीपर धातुकी खण्ड द्वीपके पूर्व भागमें विदेह नामका क्षेत्र है जोकि अपनी अद्वितीय शोभासे उत्तम और स्वर्ग नगर सरीखा जान पड़ता है ॥२॥ विदेह क्षेत्रमें एक गंधिल नामका प्रसिद्ध नगर देश है जो कि धर्मात्मा पुरुष और धन धान्य आदिसे सदा व्याप्त बना रहता है और विद्वान मुनियोंके चरण चिह्नोंसे सदा अंकित रहता है॥ ३ ॥ गंधिल देशमें एक अयोध्या नामकी नगरी है जो कि शोभामें स्वर्ग पुरीकी उपमा धारण करती है। अयोध्या नगरीका संरक्षक उस समय राजा अर्हद्दास था जो कि शोभा और क्रीड़ाओंमें इन्द्रके समान जान पड़ता था ॥४॥ राजा अर्हद्दासकी रानीका नाम सुव्रता था जो कि रति सम्बन्धी अनेक प्रकारके विलासोंकी करनेवाली थी एवं उसका शरीर केसरके रङ्गका सदा शोभायमान रहता था इसलिये वह बिजलीके समान सुन्दर जान पड़ती

थी ॥५॥ रानी रामदत्ताका जीव जो कि रत्नमाला होकर अच्युत स्वर्गमें जाकर देव हुआ था राजा अर्हद्दासके रानी सुव्रतासे उत्पन्न वीतभय नामका कुमार हुआ जो कि बुद्धिमान था उग्र तेजका धारक था। राजा पूर्णचन्द्र का जीव रत्नायुध जो कि मरकर अच्युत स्वर्गमें ही देव हुआ था आयुके अन्तमें वहांसे चयकर उसी राजा अर्हद्दासके जिनदत्ता नामकी रानीसे उत्पन्न विभीषण नामका पुत्र हुआ था ॥ ६-७ ॥ इन दोनों कुमारोंमें कुमार धारक वीतभय बलदेव था और विभीषण नारायण था। ये दोनों ही बलदेव और केशव पदवियोंके कुमार समस्त भयोंसे रहित थे। कवियोंके भूषण थे और पूर्व पुण्यके उदयसे सानन्द राज्यका भोग करते थे ॥८॥ राजा विभीषण जो कि नारायण पदका धारक था मरकर अनेक प्रकारके आरम्भोंसे जायमान घोर पापोंके द्वारा दूसरे नरकमें जाकर नारकी हो गया ॥ ९ ॥ नारायण विभीषणके मरनेसे बलदेव वीतभयको बड़ा दुःख हुआ। मोहके तीव्र उदयसे भाईके मर जानेके बाद उसने राज्यका परित्याग कर दिया और संयम धारण कर लिया ॥१०॥ पुण्यात्मा वीतभय बलदेवने घोर तप तपा जिससे वह लांतव स्वर्गके आदित्याभ नामक विमानमें आदित्याभ नामका उत्तम देव हो गया ॥११॥ प्रिय जयन्त मुनिके जीव नागेन्द्र वही मैं आदित्याभ नामका इस समय देव हूँ। अपने पूर्व जन्मके भाई नारायण विभीषणको नरकमें अवधिज्ञानके द्वारा दुःखी देख एक दिन मैंने यह विचार किया—मैं तो स्वर्गमें आकर अनेक क्रीड़ाओंका स्थान देव हो गया हूँ और अनेक प्रकारके सुख भोग रहा हूँ परन्तु मेरा भाई विभीषण नरकमें पड़ा पड़ा महादुःख भोग रहा है मुझे चाहिये कि मैं समस्त असुरोंको बज्रसे छिन्न भिन्न कर शीघ्रही अपने प्राण प्यारे भाईको नरकसे निकाल ले आऊं बस मैं ऐसा विचार कर मोहसे व्याकुल हो शीघ्र ही दूसरे नरक गया। अपने भाईको पूर्व भवका वृत्तांत सुना सम्बोधा एवं जो असुर कुमार जातिके देव स्वभावसे ही नारकियोंको पीड़ा पहुंचानेवाले थे उन्हें शक्तिभर धमकाया डराया ॥१६॥ प्रिय नागेन्द्र ! अपने भाईको नरकसे निकालनेके लिये मैंने बहुत उपाय किये परन्तु उनसे उसे उलटा घोर दुःख होने लगा। जब मैंने देखा कि इसके निकालनेके लिये जो उपाय किये जाते हैं उनसे इसे दुःख ही होता है, तो मैंने उसके निकालनेका विचार स्थगित कर दिया। सीधा मैं भगवान श्रीमन्धरके पास गया। मैंने उनसे सब बात पूछी। उन्होंने तुम्हारे पूर्व भवोंका वर्णन किया जिसे मैंने रुचि पूर्वक सुना। प्रिय नागेन्द्र ! भगवान श्रीमन्धरके द्वारा सुना गया तुम्हारे पूर्व भवका वृतान्त मैं तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक अयोध्या नामकी पुरी है जो कि खाई और किलोंसे महा शोभायमान

जान पड़ती है। अयोध्यापुरीका स्वामी उस समय श्रीधर्मा था और उसकी रानीका नाम सुशीला था ॥ २० ॥ नारायण विभीषणका जीव नारकी अपनी आयुके अन्तमें नरकसे निकला एवं राजा श्रीधर्माके रानी सुशीलासे उत्पन्न सुधर्म नामका पुत्र हुआ जो कि अनेक गुणोंका समुद्र था और स्त्रियोंके भोगोंमें प्रेम रखनेवाला था ॥२१॥ एक दिन मुनिराज अनन्तसे उसने धर्मका स्वरूप सुना जिससे उसे संसारसे वैराग्य हो गया। शीघ्र ही उसने मुनिराज अनन्तके पासमें संयम धारण कर लिया। घोर पत तपा जिससे तपके प्रभावसे वह ब्रह्म स्वर्गमें उत्तम ऋद्धिका धारक देव हो गया ॥२२॥ वहांपर पुण्यके उदयसे उसे सब सामग्री प्राप्त हुई वह देवांगनाओंके साथ आलिङ्गन चुम्बन आदि क्रियाओंमें एवं उत्तमोत्तम गायन और नाटकोंके देखनेमें इतना मग्न होने लगा कि उसे यह भी नहीं जान पड़ने लगा कि उसकी आयुके दिन वहां बीत रहे हैं ॥२३॥ राजा बज्रायुधका जीव अहमिंद्र जो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर देव हुआ था वह अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया एवं महाशक्तिका धारक और योगोंका निरोध करनेवाला संजयन्त नामका महापुरुष हुआ जो कि तुम्हारा भाई था। मेरे भाई नारायण स्वयंभूका जीव जो ब्रह्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ था उसने वहांके बहुत काल पर्यन्त दिव्य सुख भोगे। आयुके अन्तमें वहांसे चया और संजयन्तका छोटा भाई जयन्त हुआ जो कि निदानसे मरकर तू धरणेंद्र हुआ है इस समय तुम्हारा सम्यग्दर्शन मोहसे मलिन हो गया है ठीक है माहको वश करनेवाले संसारमें विरले ही पुरुष हैं ॥ २६ ॥ मन्त्री सत्यघोषका जीव वह नारको अपनी आयुके अन्तमें सातवें नरकसे निकल सर्प हुआ। वहांकी जघन्य आयु धारण कर मरा फिर तीसरे नरकका नारकी हुआ वहांसे निकल कर त्रस स्थावर रूप तिर्यंच हुआ। इसी भरतक्षेत्रकी पृथ्वीपर एक भूतरमण नामका बन है। उसके अन्दर एक ऐरावती नामकी नदी है उसके तटपर एक गोश्रृङ्ग नामका तपस्वी रहता था। शंखिका नामकी उसकी स्त्री थी जो कि अत्यन्त रूपवती और पतिकी प्राण प्यारी थी वह सत्यघाष मन्त्रीका जीव तपस्विनी शंखिकाके गर्भसे मृगशंख नामका पुत्र हुआ और प्रति दिन पंचाग्नि तप तपने लगा। एक दिनकी बात है कि दिव्य तिलकपुरका स्वामी अंशुमाली नामका विद्याधर आकाश मार्गसे जा रहा था। उसकी दिव्य विभूतिपर मृगशंख तपस्वी मोहित हो गया दुर्बुद्धि हो उसने यह निदान बाधा—जिस प्रकार यह विद्याधर अत्यन्त रूपवान दानी प्रतापी और विशाल राज्यका स्वामी है उसी प्रकार मैं भी होऊं बस, मैं अपने किये हुए तपका यही फल चाहता हूं ॥३१॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन बल्लभ नामका नगर है जो कि विशाल है और अनेक रचनाओं-

हृदयके धारक पापी विद्याधर अन्य मुनियोंको भी मारेंगे ॥ ४५ ॥ इस विद्याधर पर्वतपर मुनिराज संजयन्तको एवं उसकी स्त्रीका नाम विद्युत्प्रभा था वह दुष्ट मृगशृङ्ग नामका तपस्वी अपनी आयुके अन्तमें मरा और रानी विद्युत्प्रभाके गर्भसे विद्युद्दंष्ट्र नामका पुत्र हुआ। पूर्व जन्मके वैरसे इसी दुष्टने तुम्हारे भाई संजयन्तको मारा है ॥ ३३ ॥ इसने मुनिराज संजयन्तके मारनेसे घोर कर्मोंका बंध किया है जिससे इसने यह कष्ट प्राप्त किया है और करेगा। भाई धरणेंद्र ! यह जीव इसी प्रकार कर्मोंके जालमें फसकर इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है ॥३४॥ देखो भाई ! इस संसारमें पिता तो पुत्र हो जाता है पुत्र माता हो जाता है। माता भाई बन जाता है और भाई सास बन जाता है इसलिये तुम निश्चय समझो इस संसारमें न कोई वास्तवमें किसी बंधुका है और न बैरी है अतः प्रिय नागेन्द्र ! तुम्हें कभी इस विद्याधरके साथ बैर नहीं बांधना चाहिये ॥ ३५ ॥ देखो इस संसारमें कौन तो किसका अपकारी नहीं और कौन किसका उपकारी नहीं अर्थात् हरएक दूसरेका अपकारी और उपकारी इसलिये इसके साथ वैर बांधकर तुम वृथा पाप बांध रहे हो ॥३६॥ प्रिय धरणेंद्र ! तुम इस विद्याधरके साथ बैर मत बांधो इसे छोड़ दो बस इस प्रकार आदित्याभके बचन सुनकर धरणेंद्रका क्रोध शांत हो गया उत्तरमें उसने यह कहा—प्रिय आदित्याभ ! मैं भी यह मानता हूँ कि जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर हंसको आनन्द होता है उस प्रकार उल्लूको आनन्द नहीं होता उसी प्रकार सत्य बोलनेसे सज्जनोंको ही परमानन्द प्राप्त होता है दुर्बुद्धि दुष्टको नहीं ॥ ३८ ॥ भाई आदित्याभ ! मैं तुम्हारे बचनोंसे परम पावन जैन धर्मका श्रद्धान करता हूँ परन्तु इस दुष्ट विद्युद्दंष्ट्रने अपनी विद्याका घमण्ड कर यह दुष्पाप किया है इसलिये मैं कुल परम्परासे प्राप्त इसकी समस्त विद्याका उच्छेदन करूंगा। धरणेंद्रकी यह बात सुनकर विद्याधर आदित्याभने कहा—भाई धरणेंद्र ! मेरे अनुरोधसे तुम्हें इसकी विद्यायें नहीं छेदनी चाहिये। आदित्याभके इस प्रकार बचन सुनकर पुनः धरणेंद्रने कहा—

यदि तुम इसकी कुल परम्परा प्राप्त विद्याओंके छेदनेको मना करते हो तो मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु मैं यह शाप देता हूँ कि इस विद्युद्दंष्ट्रके कुकर्मके कारण इसके जितने वंशके पुरुष हों उन्हें मुनिराज संजयन्तको बिना आराधना किये किसी भी विद्याकी सिद्धि मत हो तथा जिस चतुर्दशीको मेरे भाईने मोक्ष प्राप्त की है उस तिथिको बिना आराधे किसीको भी मोक्ष पदकी प्राप्ति मत हो, मालूम होता है इसीलिये चतुर्दशीको विशिष्ट पर्वका दिन माना है। भाई ! इस शापके देनेका मेरा तात्पर्य यह है कि यदि मैं ऐसा शाप न दूंगा तो ये क्रूर

नाथके मुखसे अपने पूर्वभवोंका वृत्तांत सुन राजा मेरु और मंदरको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया। जो
कष्ट पहुंचाया गया है इसलिये यह भी लज्जाका स्थान है अतः उस पर्वतका उस दिनसे ह्रीमन्त (लज्जावान)
नाम रख दिया गया ॥४६॥ धरणेंद्रने अपने भाई संजयन्तकी पांचसौ धनुष ऊंची प्रतिमा तैयार कराई। सैकड़ों
महोत्सवोंके साथ प्रतिष्ठाकर वहीं उसे विराजमान कर दिया और भक्तिपूर्वक उसे नमस्कार किया ॥ ४७ ॥
धरणेन्द्रने पापी विद्याधर विद्युद्दन्ष्ट्रको छोड़ दिया। आदित्याभ देवका परिपूर्ण आदर सत्कार किया। उसके
हृदयमें जो विद्याधर विद्युद्दन्ष्ट्रके मारनेके कलुषित विचार थे सब निकाल दिये और सानन्द अपने स्थान चला
गया ॥ ४८ ॥ इतनी कथा सुनाकर गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कहा—प्रिय राजन्! अब आदित्याभने देखा
कि नागेंद्र वैरका सर्वथा परित्याग कर अपने स्थान चला गया है तब वह भी अपने स्थानको चला गया ठीक ही
है जो मनुष्य दूसरोंके हितकी इच्छा रखनेवाले और सज्जन प्रकृतिके होते हैं वे अवश्य ही दूसरोंका आपसमें
वैर मिटा देते हैं ॥ ४९ ॥ ह्रीमन्त पर्वतसे जिसके कि दो खण्ड हो रहे हैं ऐसे इसी जम्बूद्वीपके अन्दर भरतक्षेत्र
है जो कि छह खण्डोंसे शोभायमान है एवं गंगा सिन्धु नामकी दोनों नदियोंकी तरंग रूपी भूषणोंसे शोभा-
मान है ॥ ५० ॥ प्रलयकालके अन्तमें जब भरत क्षेत्रके किसी एक खण्डका प्रलय होता है उस समय ह्रीमन्त
पर्वतका स्वामी देव हरएक गर्भज जीवके बहत्तर बहत्तर जोड़ा लेकर उस ह्रीमन्त पर्वतकी गुफामें रखता है तथा
और बहुतसे जीव मारे भयके उस समय गंगा नदीके तटपर जाकर रहने लगते हैं ॥५२॥ भरत क्षेत्रके अन्दर
एक आर्य खण्ड है जो कि शोभामें स्वर्ग खण्डके समान जान पड़ता है आर्य खण्डकी उत्तर दिशामें मथुरा
नामकी नगरी है। उस समय मथुरापुरीका स्वामी राजा अनन्तवीर्य था जो कि सिंहके समान पराक्रमी था।
उसकी रानीका नाम मेरु मालिनी था जो कि चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी। उसकी दूसरी स्त्रीका
नाम मितवती था जो कि रोहिणीके समान परम सुन्दरी थी। चकोरके समान उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी
इसलिये वह साक्षात् देवांगना सरीखी जान पड़ती थी ॥ ५५ ॥ आदित्याभ नामका देव अपनी आयुके अन्तमें
स्वर्गसे चया और रानी मेरुमालिनीके गर्भसे मेरु नामका पुत्र हुआ जो कि कांतिसे अत्यन्त देदीप्यमान था
और अपने वंशरूपी पर्वतपर उदित होनेवाला सूर्य स्वरूप था ॥५६॥ धरणेन्द्रका जीव भी अपनी आयुके अन्तमें
वहांसे चया और रानी मितवतीके गर्भमें अवतीर्ण हो मन्दर नामका पुत्र हुआ जो कि बड़ा भारी यशस्वी था
इस तरह वे दोनों कुमार सूर्य और चन्द्रमाके समान सानन्द रहने लगे ॥ ५७ ॥ बस इस प्रकार भगवान विमल

से शोभायमान है। गगन वल्लभ नगरका स्वामी राजा वज्रदन्त था जो कि शोभामें इन्द्रकी तुलना करता था उनका राज्य अगणित गज हस्ती और उत्तमोत्तम घोड़ोंसे शोभायमान था और अनेक दुर्घट सामन्त जिसकी सेवा करते थे उस राज्यको उन्होंने जीर्णतृणके समान तत्काल छोड़ दिया और भगवान विमलनाथके चरणोंमें तत्काल दिगम्बरी दिक्षासे दीक्षित हो गये ॥ ५६ ॥ भगवान विमलनाथको उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं एक मास दो मास तीन मास चार मास पांच मास और छह मास तकका उपवास धारण कर वे नदीके तट और पर्वतोंपर घोर तप तपने लगे ॥ ६० ॥ वर्षा ऋतुमें धीर वीर वे दोनों मुनिराज पर्यंक आसन मारकर और कायोत्सर्ग मुद्रा धारण कर दो सिंहोंके समान बृक्षोंके नीचे रहने लगे ॥६१॥ जिस शीतकालमें बनके बृक्ष दग्ध हो जाते हैं। रोंगटे ठर्रा निकलते हैं और कमलोंके बनके बन दग्ध हो जाते हैं उस समय विशाल शरीरके धारक और मेरु पर्वतके समान निश्चल दोनों मुनिराज मोक्ष प्राप्तिको अभिलाषासे चौपटेमें निवास करते थे और तीखी पवनके झकोरे सहते थे। वे दोनों मुनि अंजन पर्वतके समान काले पड़ गये थे। उनका समस्त शरीर कृश हो गया था इसलिये उस समय उनके मस्तकके केश दाव घासके समान रूखे और बिखर गये थे ॥६४॥ जिस शीतकालमें तालाबोंका जल नीरस होकर सूखकर पत्थरके समान बरफ बन जाता है उस समय मनुष्यों की तो बात ही क्या है ! ॥ ६५ ॥ ग्रीष्म ऋतुके समय जब कि पृथ्वीतल अग्निके समान दहकता रहता है उस समय वे दोनों मुनिराज सूर्यके सामने खड़े होकर पहाड़ोंपर तप तपते थे और हृदयमें 'सिद्ध' इस बीजाक्षर स्वरूप मंत्रका ध्यान करते थे। वे दोनों मुनिराज अग्निसे तपाये गये कड़ाहोंके समान जाज्वल्यमान अग्निकी ज्वालासे भी महा भयंकर और अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त ग्रीष्म ऋतुको वर्षा ऋतु सरीखो समझते थे जिस वर्षाकालमें चारों ओर महा भयंकर मेघोंकी गर्जना होती रहती है। कानोंको फाड़ देनेवाले मींडकोंके भयंकर शब्दोंसे समस्त जीव त्रस्त रहते हैं। बिजलियोंके गिरनेसे बृक्षके वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उस वर्षाकालमें वे दोनों मुनिराज निर्भय हो अपने आत्म स्वरूपका चिन्तवन करते थे। उस समय उनके चरण दाब घासके अंकुरोंसे व्याप्त रहते थे। समस्त शरीर सर्प और लताओंसे वेष्ठित रहता था तथापि उन्हें किसी बातका भय न था। तथा वर्षाकालकी अंधियारी रातोंमें जब कि पृथ्वी पर्वत और वृक्ष कुछ भी नहीं दीख पड़ते थे उस समय वे मुनिराज मेरुके समान निश्चल और ध्यानमें लीन रहते थे ॥ ७० ॥ तपके घोर रूपसे आचरनेपर मुनि-राज मेरु और मन्दिरको सातों ऋद्धियां और चौथा मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया और वे निर्भय हो पृथ्वीपर

शुद्ध समाधि—अपने आत्म स्वरूपमें निश्चल हैं। केवल ज्ञानरूपी लोचनके धारक हैं और जो स्वयं भी ब्रह्मासे
वे भगवान विमलनाथ साढ़े पांचसौ केवलज्ञानी मुनियोंके साथ विहार करते हुए अत्यन्त शोभायमान जान
पड़ते थे ॥ ७३ ॥ भगवान विमलनाथकी सेवा असंख्याते देव करते थे और वे केवलज्ञान रूपी सूर्यसे दैदीप्य-
मान थे। भगवान विमलनाथने मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस प्रकार संघोंके साथ पृथ्वीपर विहार करना
प्रारम्भ कर दिया ॥ ७४ ॥ उन भगवान विमलनाथने मोक्षाभिलाषी भव्य जीवोंके सम्बोधनेके लिये अंग बंग
तेलंग मगध सिंधुदेश विराट कर्णाटक कुंकण पुरु महा भोट भोट काश्मीर लाट गौड़ मेढ पाट फारस मालवा
आदि देश जो कि पहाड़ और बनोंसे सघन थे उनमें भ्रमण किया॥ ७५ ॥ जब भगवान जिनेन्द्रकी एक मासकी
केवल आयु अवशेष रह गई वे तो सम्मेदाचल पर्वतपर आ विराजे और समवसरणको विभूतिसे रहित हो गये
॥ ७६ ॥ आषाढ़ मासकी वदी अष्टमीके दिन जब कि उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान था उन्होंने केवल समुद्घात
मांडा। सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती नामक शुक्ल ध्यानको आश्रय किया। समता योगसे उन्होंने अयोग गुण स्थानमें
पदार्पण किया एवं जिस प्रकार रोगके नाश हो जानेसे रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है उसी प्रकार वे भगवान
विमलनाथ भी स्वस्थ हो गये भगवान विमलनाथ आषाढ़ वदी अष्टमीको मोक्ष पधारे थे इसलिये उसी दिनसे
उस अष्टमीका नाम कालाष्टमी पड़ गया और लोग उसे पूजने लगे ॥ ७८ ॥ घाति अघाति दोनों कर्मोंके नाश
हो जानेपर सर्वज्ञ जिनेन्द्र वे भगवान विमलनाथ मोक्ष शिलापर जाकर विराजमान हो गये और बड़े बड़े देवेंद्रों
की पूजाके स्थान बन गये ॥ ७९ ॥ जो भगवान विमलनाथ जीवोंको संसार रूपी समुद्रसे पार करने वाले हैं।
कर्मरूपी अग्निको बुझानेके लिये मेघ स्वरूप हैं। देवेन्द्रोंके मस्तकोंमें लगी हुई नील मणियोंसे व्याप्त चरणोंसे
शोभायमान हैं और कामदेवके जीतनेवाले हैं वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें ॥८०॥ जिस प्रकार सूर्य
अन्धकारका नाश करनेवाला है उसी प्रकार भगवान विमलनाथ भी कर्मरूपी अन्धकारके नाश करनेवाले हैं।
जिस प्रकार सूर्य ऋषिगणोंसे सेवित रहता है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी मुनि आदिके गणोंसे सेवित
हैं। जिस प्रकार सूर्य, प्रभासे मंडित है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी केवल ज्ञानकी प्रभासे मण्डित हैं
एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको खिलाकर अस्ताचलपर अस्त हो जाता है उस प्रकार भगवान विमलनाथने भव्य
रूपी कमलोंको खिलाकर सम्मेदाचलसे मोक्ष प्राप्त की है इसलिये सूर्यके समान भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा
करें ॥ ८१ ॥ जिन भगवान विमलनाथने समस्त जीव लोकको संबोधा। जो मोहरूपी पर्वतके लिये बज्र स्वरूप

विहार करने लगे ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार अनेक ताराओंसे व्याप्त चन्द्रमा शोभायमान जान पड़ता है
अर्चित हैं उन भगवानने परमपद प्राप्त कर लिया अतः वे हमारे कल्याणके कर्त्ता हैं ॥ ८२ ॥

इति श्रीवृहद्विमलनाथ पुराणमें राजा मेरु और मन्दरकी दीक्षाका गृहण और भगवान विमलनाथका विर्वाण गमन वर्णन करनेवाला नवां स

दसवां सर्ग ।

भगवान विमलनाथके निर्वाण प्राप्त कर लेनेपर उनके कल्याणके उत्सव मनानेके लिये लालायित समस्त इन्द्रादि देव अपने विमानोंपर चढ़कर शीघ्र ही सम्मेदाचलकी ओर चल दिये ॥१॥ उस समय चारों ओर जय २ शब्द करते हुए चारों निकायोंके देव एक साथ इन्द्रके पीछे पीछे चल दिये ॥२॥ ऐरावत हाथीपर चढ़कर सबोंके सामने इन्द्र चलने लगा। उस समय ऐरावत हाथीके सामने अपने नाचसे समस्त लोकको मोहित करता हुआ देवांगनाओंका समूह नाचता चला जाता था ॥३॥ ग्रन्थकार आश्चर्य प्रगट करते कहते हैं कि यद्यपि वे आकाश में चलते थे परन्तु कहां पैर रखते थे और कहां नहीं रखते थे ! सूझ नहीं पड़ता था ॥४॥ भगवानके निर्वाण कल्याणके उत्सव मनानेके लिये आनेवाले देवोंमें बहुतसे देव अपने हाथोंमें माला लिये थे बहुतसे शक्ति धनुष तलवार पाश त्रिशुल बन्दूकके धारक थे इस रूपसे तो असुर जातिके देव चलने लगे तथा इसी प्रकार दिशाओं में रहनेवाले व्यन्तर लोग भी चलने लगे ॥५-७॥ कल्पवासी देवोंमेंसे बहुतसे देव अपने द्वारा रचे गये विमानोंमें सवार हो लिये। बहुतसे हाथोंमें माला धारण किये हंसोंपर चढ़ लिये। बहुतसे हाथोंमें हथियार लेकर गरुड़ शुक और मयूरोंके आसनोंपर चढ़कर आकाश मार्गमें चलने लगे। यद्यपि देव असंख्याते थे तथापि इन्द्रने उन्हें पांच श्रेणियोंमें विभक्त कर रक्खा था और हरएक पांचों बाणोंके अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे शोभायमान थे ॥१०॥ जिस समय देवोंने सम्मेदाचल पहाड़को देखा भक्तिमें गद्गद् हो वे शीघ्र ही अपने अपने वाहनोंसे उतर गये ठीक ही है जो पुरुष धर्मात्मा होते हैं वे भक्तिमान होते ही हैं॥ ११ ॥ इन्द्रने भगवान विमलनाथकी स्फटिकमयी प्रतिमाका शीघ्र ही निर्माण किया और बड़ी भक्तिसे उसका पूजन किया। निर्मल चित्तके धारक इन्द्रने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उनके परोक्ष रहते भी वह इस प्रकार निर्मल भावोंसे स्तुति करने लगा—हे भगवन् ! आप आठों कर्मों के जीतने वालों के स्वामी हैं। समस्त जगतके पति हैं। तपोनिधि और दयाके समुद्र हैं। मोक्षरूपी लक्ष्मीके प्यारे हैं। मोहके जीतनेवाले केवल आप ही हैं। सर्वज्ञ और कल्याणों के प्रदान

करनेवाले हैं। कर्मोंके नाश करनेवाले चिदानन्द चैतन्य स्वरूप और भव्यरूपी कमलोंको प्रसन्न करनेवाले सूर्य हैं इसलिये हे भगवन्! आप संसारमें जयवंते रहें ॥ १५ ॥ प्रभो! देवोंके देव इन्द्र आदि भी तुम्हारा आराधन कर संसाररूपी समुद्रको तरकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। उत्तम भावरूपी अमृतसे पान करनेवाले इन्द्रने इस प्रकार भगवान विमलनाथकी स्तुति की। कपूर अगुरु कल्प वृक्षोंके फूल और भी नाना प्रकारकी सुगन्धित चीजोंसे विनय पूर्वक भगवानके शरीरका दाह संस्कार किया एवं भक्तिसे गद्गद् हो नृत्य किया ॥१८॥ सम्मेदाचल पर्वतके चारों ओर अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ श्रेणिरूपसे समस्त देव नृत्य करने लगे एवं मिलकर भगवान विमलनाथकी जय उच्चारने लगे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार कल्पवृक्ष पवनसे झकोरे खाती हुई लताओंसे विशेष शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार उस समय देव रूपी कल्पवृक्ष भी लाल २ हाथोंसे शोभायमान नृत्यकालमें चलती फिरती देवांगनाओंसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ २० ॥ सुन्दर शरीरोंकी धारण एवं उन्नत स्थूल नितम्बोंसे शोभायमान किन्नरी जातिकी देवांगना अनेक प्रकारकी राग, रागिनियोंसे युक्त एवं हाव भाव रस चाल ढालोंसे मिश्रित अपने मनोहर कंठोंसे भगवान विमलनाथके गुणोंको बखानने लगीं ।२२। उस समय मृदङ्ग और नगाड़ोंके शब्दोंसे कोमल देवांगनाओंके शब्दोंसे एवं इंद्रोंके द्वारा किये गये जय जय शब्दोंसे गूंजता हुआ समस्त आकाश अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥ २३ ॥ भगवान विमलनाथके चरणोंसे पवित्र सम्मेदाचलको देवेन्द्रोंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं सबके सब अपने अपने स्थानोंपर चले गये ॥२४। ग्रन्थकार सज्जनोंकी प्रशंसामें कहते हैं कि—महान पुरुषोंकी संगति उत्तम फल प्रदान करती है देखो भगवान जिनेन्द्रके चरणोंके सम्पर्कसे ही सम्मेदाचल पर्वत समस्त लोकका वंदनीय बन गया ॥ २५ ॥ जो महानुभाव मौनव्रत और ब्रह्मचर्यव्रतसे भूषित हो सम्मेद शिखरकी यात्रा करते हैं उन्हें संसारमें अद्भुत विभूति की प्राप्ति होती है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ श्रीसम्मेदशिखरके आश्रयसे जब तिर्यंच भी, देव पद प्राप्त कर लेते हैं तब उत्तम तपके आचरणसे मनुष्य तो परम पद प्राप्त कर ही लेते हैं, यह बात बिलकुल निश्चित है। यह सम्मेदशिखर तीर्थ सबसे उत्तम तीर्थ है अनादि निधन है इसलिये देवगण रात्रि दिन इसकी बन्दना करते हैं तथा वह नियम है कि श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा करने वालोंको तिर्यंच गतिका दुःख नहीं भोगना होता ॥ २८ ॥ भगवान पुष्पदन्तके तीर्थकालमें विद्याधर मेघेश्वरने मेघदेवका साधन किया था उसी दिनसे वर्षाका प्रारम्भ माना है वह दिन अष्टमीका था इसलिये उस अष्टमीका नाम भांडाष्टमी पड़ गया जो कि वेर्ष मानी

जाती है और उसमें अनेक प्रकारके उत्सव हुआ करते हैं तथा उस दिन ठीक आधी रातके समय सुभिक्ष होगा वा दुर्भिक्ष होगा इस बातकी जांच की जाती है इसलिये संगति बड़ी चीज है ॥ ३० ॥

एक दिनकी बात है कि मुनिराज मेरु, पर्वतके अधोभागमें प्रतिमायोग धारण कर चिदानंद चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान कर रहे थे। उस समय वे समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित थे और निस्पृह थे। आधी रातके समय वे परमात्माके स्वरूपका चिन्तवन कर ही रहे थे कि विद्युन्माली नामका विद्याधर अनेक पर्वतोंपर क्रीड़ा करता हुआ और आकाशमें विचरता हुआ मुनिराजके ऊपरसे निकला। यह नियम है जहांपर ऋद्धिधारी मुनि विराजते हैं उनके ऊपरसे किसीका विमान नहीं निकलता। विद्याधर विद्युन्मालीका विमान विशाल था छोटे छोटे घंटियोंसे शोभायमान था ज्योंही वह ठीक मुनिराजके ऊपरसे आया धातुकी कीलोंसे जैसे अटका दिया जाता है वैसे ही अटक गया विमानकी यह दशा देख विद्याधर विद्युन्मालीको बड़ा क्रोध आया एवं वह विमानको पैरोंसे बार बार चलाता हुआ अपने मनमें इस प्रकार बिचारने लगा—यह मेरा विमान अनेक महाविद्याओंसे रचित है। बैरियोंको भय प्रदान करनेवाला है किस बलवान पापीने मेरे विमानको रोक दिया है ॥ ३६ ॥ आश्चर्य है जिस प्रकार हंसको व्याध पकड़ लेता है उसी प्रकार भाई! तुझ किस शत्रुने मेरा विमान पकड़कर बांध लिया है ॥ ३७ ॥ मैं अभी तुझ पापी बैरीको खोज करता हूँ। मैं तुझ दुष्ट बुद्धिको शस्त्रोंके घातोंसे और पत्थरोंसे अभी प्राण रहित कर दूंगा। बस इस प्रकार दृढ़ विचार कर शीघ्र ही उसने धनुष हाथमें ले लिया एवं मारे क्रोधके सर्पके समान भयङ्कर हो बलवान उस विद्याधरने शीघ्र ही धनुषपर बाण चढ़ा लिया। लक्ष्य बांधकर वह नीचेको फैंकता ही था कि उसकी स्त्रीने उसका हाथ पकड़ लिया एवं वह अपने पति विद्याधरको इस प्रकार समझाने लगी—प्राणनाथ! मेरे हितकारी बचन सुनिये जो मनुष्य सभ्य और बुद्धिमान हैं उन्हें बिना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये ॥४१॥ जो मनुष्य अपनी शक्तिको न जानकर बिना बिचारे ही बलकर बैठते हैं वे मूर्ख कहलाते हैं एवं अग्निमें गिरकर जिस प्रकार पतंग खाख हो जाता है उसी प्रकार वे भी मृत्युके कवल बन जाते हैं ॥ ४२ ॥ स्वामिन्! जरा बिचारो तो जिसने तुम्हारा यह विमान रोक दिया है वह यदि तुमसे अधिक बलवान हो तो जिस प्रकार सर्पसे गरुड़का जीता जाना कठिन है उस प्रकार तुमसे उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥ ४३ ॥ यदि तुम शत्रुको न जीत सकोगे तो तुम्हारी कीर्ति नष्ट हो जायगी। कीर्तिके नष्ट हो जानेसे मनुष्य तेज रहित हो जाता है फिर उसका जीवन ही विफल माना जाता है ॥ ४४ ॥ बुद्धिमान

मनुष्योंको चाहिये कि वे चार बातोंके करनेमें जल्दी न करें विचार पूर्वक ही हरएक कार्यको करें क्योंकि जो पुरुष विचार शील हैं लक्ष्मी उन्हें आपसे आप आकर बर लेती है ॥ ४५ ॥ विद्वानोंसे भी जल्दी नहीं कहे जानेवाले एवं हितकारी अपने स्त्रीके बचन सुन विद्याधर विद्युन्मालीने कहा—रतिके समान परम सुन्दरी भ्रमरोंकी पंक्तिके समान काले कटाक्षोंसे शोभायमान मृगलोचनी प्रिये ! तुमने कहा है कि विद्वानोंको चार कार्य जल्दी नहीं करने चाहिये तो वे चार कार्य कौन हैं विद्याधर विद्युन्मालीकी स्त्री बड़ी गम्भीर और बुद्धिमती थी अपने स्वामीको उसने इस प्रकार उत्तर दिया—प्रथम बात तो यह है कि मनुष्योंको जहां कहीं भी जाना चाहिये असमयमें नहीं जाना चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो गोष्ठी—संगति विषम हो उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहिये सत्सङ्गति ही करनी चाहिये। तीसरी बात यह है कि जो कुमित्र हैं उनके साथ किसी प्रकारका सहवास नहीं करना चाहिये और चौथी बात यह है कि जो मनुष्य अपने कल्याणके आकाक्षी हैं उन्हें चाहिये कि वे परस्त्रियोंसे किसी प्रकारका अपना काम न सटता देख रंचमात्र भी उनसे क्रोध न करें ॥ ४९ ॥ इसी सम्बन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है। एकाग्र चित्त हो ध्यान देकर सुनो मैं कहती हूँ।

इसी पृथ्वीके महाभोट देशमें एक कुमारपाल नामका सेठ निवास करता था जो कि छप्पन दीनारोंका स्वामी था। उसकी स्त्रीका नाम प्रियंगु सुन्दरी था और उससे चित्र विचित्र नामके दो पुत्र उत्पन्न थे ॥ ५२ ॥ दोनों पुत्रोंमें चित्र नामका पुत्र बड़ा ज्वारी था। वह ज्वारियोंको प्रतिदिन घरसे निकालकर धन दिया करता था। पिताको बड़ा कष्ट देता था और सदा पागलके समान बड़ २ करता रहता था ॥५३॥ पुत्रको इस प्रकार जूआका व्यसनी देख सेठ कुमारपालने उसे कुछ धन देकर जुदा कर दिया तथापि उस दुष्टने जुआ खेलना नहीं छोड़ा ॥ ५४ ॥ छोटा पुत्र विचित्र बड़ा ही सुशील और अच्छा था और धनमें विशेष प्रेम रखता था इसलिये अपने पिता माताको नमस्कार कर वह एक दिन सिंहलद्वीपकी ओर व्यापारके लिये चल दिया ॥ ५५ ॥ विशाल समुद्रको तरकर वह अपने विशिष्ट पुण्यके उदयसे सिंहलद्वीप जा पहुंचा और बारह करोड़ दीनारोंसे उसने व्यापार प्रारम्भ कर दिया ॥५६॥ बड़ा पुत्र चित्र देशमें ही था। उसने धन खा पीकर बिगाड़ डाला जब उसका सारा धन नष्ट हो गया उस समय वह अपने मनमें विचारने लगा—जो पुरुष सोना रूपा आदि धातुओंका बनाने वाला हो यदि मैं उसके पास थोड़े दिन रहूँ तो मैं गुटिका विद्या (सोना आदि बनानेकी विद्या) शीघ्र सीख लूं बस ऐसा विचार कर वह बैठा ही था कि उसी समय कालन्द नामका एक कापालो श्मसान भूमिमें आ पहुंचा जो कि

अङ्गमें भभूति रमाये था। चित्रने भी कापालीके आनेका समाचार सुना। शीघ्रही मिष्टान्न लेकर वह उसके पास गया। नमस्कार किया एवं वस्त्र पुष्प फल भेंट कर दिये ॥ ६० ॥ चित्रकी यह चेष्टा देख कापालीने समझा कि यह बड़ा भक्त है इसलिये उसे बड़े आव आदरसे बिठाया ठीक ही है जिससे स्वार्थ सटता है वही मनुष्यों का प्यारा होता है क्योंकि स्वार्थही प्यारा और हितकारी माना है ॥६१॥ उस दिनसे लेकर चित्र प्रतिक्षण योगीकी टहल चाकरी करने लगा। वह कापाली छह मास तक ठहरा। छह मासके बाद उसने चलनेका विचार कर लिया। कापालीको इस प्रकार जाते देख चित्रने प्रेमसे गद्गद् हो उससे इस प्रकार विनय पूर्वक प्रार्थना की—प्रभो! आप कामदेवके समान सुन्दर हो। दीनोंके स्वामी हो एवं मन्त्रसे महासुरको बुला देनेवाले हो। स्वामिन् मुझे कोई ऐसा मन्त्र दीजिये जिससे मैं अपना जीवन सुखसे बिता सकूं ॥६४॥ कापाली तो चित्रकी भक्तिसे अत्यंत प्रसन्न था ही। उसने शीघ्र ही उसे सुवर्ण बनानेवाली विद्या प्रदान कर दी और सेठपुत्र चित्रसे यह कहा—प्रिय बच्चा! ठीक आधी रातके समय तुम इस मन्त्रकी विधि पूर्वक साधना क्योंकि विद्याकी सिद्धि गुण गुरुसे ही होती है बस इस प्रकार मंत्र देकर कापाली अपने अभीष्ट स्थानको चला गया। सेठ पुत्र चित्रने उसके पीछे अनेक रसोंमें तामे और हंसपाक रसका सोना बनाना प्रारम्भ कर दिया। इस रूपसे उसने पांच बार जाज्वल्यमान और उत्तम सोना बना लिया सोनेके इस प्रकार तैयार होनेपर उसका तृष्णा समुद्र बराबर बढ़ने लगी इसलिये एक दिन उसने अपने मनमें यह विचार किया—जिस पर्वतपर बहुत सी लतायें हों वहांपर जाकर मुझे बहुतसा सोना तैयार कर लेना चाहिये एवं पीछे आनन्दसे घरमें रहना चाहिये ॥ ६९ ॥ एक दिन हाथमें उसने बाण चढ़ाया हुआ धनुष ले लिया एवं ठीक रात्रिके समय उसका छोटा भाई विचित्र जो कि अत्यन्त बुद्धिमान था बारह वर्ष बाद लौटकर अपने देश आया एवं अपना नगर नामका पुर बहुत ही समीप समझकर केवल दश सेवकोंके साथ उस मार्गसे अपने पुरकी ओर जाने लगा। जिस समय वह महेंद्र पर्वतके पास आया और चित्रने उसे देखा शीघ्र ही उससे इस प्रकार पूछा—

अत्यन्त अंधियारी रातमें यह कौन जा रहा है। शीघ्र उत्तर दो। चित्रके इस प्रकार पूछने पर विचित्रने भयभीत हो इस प्रकार उत्तर दिया—तुम्हीं बतलाओ तुम कौन हो। शीघ्र बतलाओ नहीं अभी चक्रसे तुम्हारे दो खण्ड किये देता हूँ ॥७४॥ विचित्रकी इस प्रकार निष्ठुर वाणी सुन चित्र भी भयभीत हो गया। एवं अपने भाई विचित्रको अपनी अजानकारीसे बैरी मान उसके मारनेकी इच्छासे उसने यह विचार किया। यदि दुर्जनपर

विश्वास कर लिया जाता है तो वह नियमसे पुरषको मार डालता है मुझे भी इसकी बातपर विश्वास नहीं करना चाहिये इसलिये जब तक वह शस्त्र मेरे ऊपर न छोड़े उसके पहले ही मुझे इसपर शस्त्र छोड़ देना चाहिये बस ऐसा विचार चित्रने शीघ्र ही विचित्र पर बाण छोड़ दिया। विचित्र भी उधर क्रोधायमान था जब चित्रसे उसने कोई जवाब नहीं पाया तो उसने चित्रके समान अपने मनमें दृढ़ बिचार कर चित्रपर चक्र छोड़ दिया ॥७७॥ देखो कर्मोंकी विचित्रता उसी समय चित्रके बाणसे विद्ध होकर तो विचित्र गिरकर मर गया और उसी समय विचित्रके चक्रसे कटकर चित्र जमीन पर गिरकर मर गया इस प्रकार दोनों ही मृत्युके कवल बन गये ॥७८॥ यह कथा सुनाकर विद्युन्मालीकी स्त्रीने अपने स्वामी विद्याधरसे कहा—इसलिये मैं कहती हूँ कि रात्रिके गाढ़ अन्धकारमें दूसरे मनुष्यका ज्ञान तो होता नहीं इसलिये तुम्हारे सरीखे बुद्धिमान पुरुषको बिना विचारे रात्रिके समय शस्त्र न छोड़ना चाहिये ॥ ७९ ॥ तथा जो पुरुष बुद्धिमान हैं उन्हें रात्रिमें गमन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि रात्रिमें गमन करनेसे अनेक प्रकारके अनिष्टोंका सामना करना पड़ता है तथा जिसमें अनिष्ट जान पड़ते हैं बुद्धिमान लोग उस कार्यको सर्वथा छोड़ ही देते हैं ॥ ८० ॥ नीच पुरुषके साथ पर स्त्री आदिकी कथा करना विषम गोष्ठी कही जाती हैं विद्वान लोग ऐसी गोष्ठीका आश्रय नहीं करते ॥८१॥ कुमित्रकी संगतके विषयमें एक किंवदन्ती कथा है और वह इस प्रकार है—

एक हँस अनेक तरंगोंसे शोभायमान मानसरोवरमें क्रीड़ा करता था एक दिन क्रीड़ा करते करते उसने अपनी प्यारी हंसिनीसे कहा—मोतियोंसे शोभायमान प्रिय ! अपना ऐसा भी कोई स्वामी है जिसके साथ अपने मित्रता कर सकें ॥ ८३ ॥ उत्तरमें हंसिनीने कहा—मेरी सुनो समस्त पक्षियोंमें तुम मान्य और गुणोंके स्थान हो। जलमें तुम रहते और कमलदण्ड खाते हो तुम्हीं कहो तुमसे बढ़कर राजा कौन हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ उत्तरमें हंसने कहा—तुमने कहा सो तो ठीक परन्तु जब संसारमें सबोंका कोई न कोई स्वामी माना जाता है तब हमारा भी कोई स्वामी हो सकता है। संसारमें गुरु राजा धन स्त्री और ज्ञानके बिना मनुष्योंका जीवन विफल है। बिना स्वामीके समस्त जन न्याय मार्गपर नहीं चलते। चोरी करनेवाले हो जाते हैं एवं धर्मायतनोंमें जानेकी लालसा नहीं रखते ॥ ८८ ॥ इसलिये मैं अपने सुखकी आशासे स्वामीको पहिचानना चाहता हूँ हमारा स्वामी कौन है। तुम जल्दी बतलाओ ॥ ८९ ॥ अपने स्वामी हंसका जब यह अति आग्रह देखा तो उसने यह उत्तर दिया—सह्य पर्वत पर रात्रिमें घूमता हुआ तुम्हारा स्वामी रहता है ॥९०॥ शामके समय हंस

अपने स्वामीको खोजने चला यद्यपि हंसिनीने बहुत मना किया परन्तु उसने एक न सुनी। वह पर्वतके ऊपर पहुंचा ही था कि उसी समय जिसको उसका स्वामी बनाया गया था वह भी वहां आ गया ॥ ९१ ॥ उल्लूको हंसका स्वामी हंसिनीने बतलाया था। उल्लूने जिस समय हंसको देखा—इस प्रकार पूछना प्रारम्भ कर दिया—तुम कौन हो कहांसे आये हो कहां तुम्हारा स्थान है और यहां किस लिये आये हो जल्दी बोलो ! उल्लूके ऐसे बचन सुन हंसने कहा—राजन् ! मैं आपका सेवक हूँ आपकी सेवाके लिये यहांपर आया हूँ। हंसके इस प्रकार बचन सुन उल्लू बड़ा प्रसन्न हुआ और भयंकर बनमें पर्वतकी गुफामें बड़े आदरसे लिवा गया ॥९४॥ एक दिन उल्लूने हंससे पूछा भाई तुम बड़े सुन्दर और कोमल जान पड़ते हो कहो तो तुम खाते क्या हो ! उत्तरमें हंसने कहा—स्वामिन् ! मेरा घर मानस सरोवर है वहां मैं मृणाल दण्ड खाया करता हूँ ॥९६॥ उल्लूने कहा भाई! तुम्हारा घर मान सरोवरमें कैसा है हमें भी दिखा दीजिये भोला हंस उसकी बातोंमें आ गया और उसे मान सरोवर पर ले आया ॥९६॥ रात्रिके घोर भी अन्धकारमें उल्लूको तो सब दीखता ही है। जिस समय सारे हंस तो सो रहे थे और उल्लू जग रहा था उस समय यह घटना उपस्थित हो गई—

जहांपर हंस रहते थे उसी मार्गसे एक हंसराज नामका धनुर्धारी मनुष्य निकला। धनुर्धारी मनुष्यकी ठीक दाईं ओर उल्लू बैठा था। धनुर्धारीको देखते ही वह चिल्लाने लगा। धनुर्धारीने अपना अपशकुन समझ उसपर बाण छोड दिया दुष्ट उल्लू भाग गया ! बाणके घावसे हंस बिचारा मर गया इसलिये यह निश्चित है दुष्ट मित्रके साथ की गई मित्रता धन धान्य, पशु आदि, लज्जामान गौरव प्रेम और जीव सबकी नाशक होती है ॥१०२॥ हे स्वामिन् ! बुद्धिमान मनुष्योंको कभी भी कुमित्रकी संगति नहीं करनी चाहिये क्योंकि बुद्धि विद्या और कुशलता सभी कुमित्र संगतिसे नष्ट हो जाते हैं ॥ १०३ ॥ उस समय अधिक रात्रि जानकर विद्याधर विद्युन्मालीकी स्त्रीने पर स्त्रीके क्रोधसे क्या फल प्राप्त होता है यह कथा कहनी प्रारम्भ कर दी जो कि मनुष्योंके चित्तको वैराग्य उत्पन्न करनेवाली थी। वह कथा इस प्रकार है—

गन्धार नामके महा देशमें एक रुद्र नामका व्यापारी रहता था जो कि दानी तो था परन्तु महा विषयी था। उसी देशमें एक श्रीपाल नामका भी सेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि ऐसी जान पड़ती थी कि यह कामदेवकी स्त्री रति है या कोई देवांगना है ॥१०५॥ एक दिन व्यापारी रुद्रने चकोर नयनी एवं नितंब और स्तनके भारसे मन्द मन्द चलनेवाली सेठानी सुन्दरीको देख लिया। पापी वह मोहसे मूर्छित हो विकल

हो गया एवं किसी न किसी बहानेसे प्रति दिन उसको देखनेके लिये उसके घर जाने लगा ॥ १०७ ॥ उसने बहुत चाहा कि सुन्दरी सीधे साधे मेरे कावूमें आ जाय परन्तु वह न फंसी इसलिये एक दिन रुद्रने उसे जबरन पकड़कर आलिङ्गन कर लिया एवं इस प्रकार अनुनय विनयके बचन कहने लगा—सुन्दरी ! मेरी बात सुन और उसे स्वीकार कर ले। मैं तेरा बड़ा कृतज्ञ हूंगा। सुन्दरी बुद्धिमती थी उसने एक भी बात रुद्रकी न सुनी एवं पकड़कर जबरन घरसे निकाल दिया। रुद्र तो दुष्ट था ही। सुन्दरीके द्वारा अपना यह घोर अपमान देख उसे बड़ा रोष आया। सेकड़ों गाली बकी झकीं एवं यह कहकर कि अच्छा तुझे देख लूंगा। यदि तेरे सैकड़ों अनर्थ न कर डालूं तो मेरा नाम रुद्र नहीं, चलने लगा ॥१०९॥ रुद्रके इस दुर्व्यवहारसे सुन्दरीने अपनी कीर्तिपर धब्बा लगता देखा इसलिये शांत हो प्रिय बचनोंमें इस प्रकार रुद्रसे कहने लगी—स्वामिन् ! मेरी बात सुनो। मैं अपने पतिसे डरती हूँ। यदि मुझे उनका डर न होता तो मैं नियमसे तुम्हें पति बना लेती। तथा ऐसा कहकर उसने शीघ्र ही रुद्रको अपने घरके भीतर बुला लिया। उसी समय उसका पति श्रीपाल भी महलके दरवाजे पर आ गया। महलके भीतर रत्नोंकी जड़ी एक बहु मूल्य संदूक थी। अपने स्वामीके भयसे सुन्दरीने रुद्रको उसके भीतर छिपा दिया और बाहिरसे ताला जड़ दिया ॥ ११२ ॥ एवं अपने स्वामीके सामने उसने यह शांतिमय बचन कहा—स्वामिन् ! अपने घर राजाके सेवक आये थे। अपने घरमें जो केसरके समान रंगकी रत्न जड़ी सन्दूक है राजा उसे मांगता है तुम शीघ्र उसे राजाकी सेवामें भेज दो ॥११४॥ राजाकी आज्ञासे श्रीपाल डर गया वह शीघ्र ही राज सभाकी ओर सन्दूक लेकर चल दिया एवं राजाके सामने रखकर मनोहर स्पष्ट और गंभीर बचनोंमें उसने इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! मणियोंसे शोभायमान लोचनोंको प्यारी और अभीष्ट यह सन्दूक मैं सिंहलद्वीपसे लाया था उसे मैं आपकी भेंट कर रहा हूँ क्योंकि देव मन्दिर वा राजमन्दिरमें ही इसका होना युक्त है राजाने उसे सिंधुराज नामक व्यक्तिको दे दिया वह भी राजाकी आज्ञासे उसे लेकर चतुरङ्ग सेनाके साथ अपने घरकी ओर चल दिया एवं आगनमें आकर वह सन्दूक उसने रखवा दी, उस समय भेरुण्ड नामका पक्षी आकाशमें उड़ रहा था उसने वह सन्दूक मांसका लोदा जान कर वह चोंचसे उठाकर आकाशमें उड़ा ले गया। सिन्धुराजाके नौकरोंने बड़ी कठिनतासे उसे छुटाया तथापि वह समुद्रके अन्दर जाकर पड़ गई। सेवक जब उसे निकालने लगे तो उसके भीतरसे यह शब्द निकला—"रुद्रके सिवाय सभी मनुष्य संसारमें कृतार्थ हैं धन्य योगी पण्डित बुद्धिमान तत्वोंके जानकार और स्त्रियोंके जालमें नहीं फंसनेवाले हैं केवल रुद्रही

इनसे विपरीत और दुष्ट हैं" सन्दूकके भीतरसे इस प्रकार शब्द सुनकर राजाके जितने भर भी सेवक थे मारे भयके व्याकुल हो गये दौड़ते दौड़ते शीघ्र ही वे राजाके पास पहुंचे और इस प्रकार कहने लगे—स्वामिन्! जिस सन्दूकको हम ले गये थे वह सन्दूक बोलती है ॥ १२२ ॥ सेवकोंसे यह समाचार सुन राजाको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। इसलिये शीघ्र ही उसने पूछा- सन्दूक क्या बोलती है? सेवकोंने जो गाथा उसके भीतरसे सुन पड़ी थी कह सुनाई। राजा सुनकर अवाक् रह गया। और तो उससे कुछ नहीं बना। यही उसने सेवकों को आज्ञा दी—सुनो भाई! किसी विद्वान पुरुषका उसपर अधिकार है इसलिये तुम शीघ्र ही समुद्रसे उसे ले आओ। राजाकी आज्ञानुसार भृत्य उसे लेनेके लिये गये वे समुद्रके पास पहुंचे ही थे कि एक विशाल मच्छने उसे लील लिया इस रूपसे बिना कारण रुद्र मृत्युका कवल बन गया ॥ १२५ ॥ इस प्रकार पर स्त्रीके क्रोधसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाकर विद्याधरीने अपने पति विद्याधरसे कहा—प्राणनाथ! जो मूर्ख संसारमें पर स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखता है वह रुद्र व्यापारीके समान नियमसे मृत्युका पात्र बनता है। स्वामिन्! आप बुद्धिमान हो। वंशरूपी आकाशके लिये चन्द्रमा एवं चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्त्तिके धारक हो आप सरीखे मनुष्योंको शुभ अशुभ विचार कर ही कार्य करना चाहिये। किसी कार्यको जल्दी नहीं कर डालना चाहिये ॥१२७॥ विद्याधरोंके स्वामी विद्याधर विद्युन्मालीका होनहार अच्छा न था। हितकारी भी अपनी स्त्रीके बचनोंपर उसने रञ्च मात्र भी ध्यान नहीं दिया उत्तरमें यही कहा—जो पुरुष स्त्रियोंके कहनेमें चलते हैं वे मूढ़ कहलाते हैं मैं तुम्हारी बात कभी भी नहीं मान सकता। अपने स्वामीके ऐसे बचन सुन फिर भी विद्याधरीने कहा—स्वामिन्! जो पुरुष विद्वान हैं उन्हें यदि हितकारी स्त्रियोंका भी बचन हो तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये और यदि अहितकारी विद्वानोंका भी बचन हो तो उसे कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। मेरा यदि बचन युक्त हो तो आपको उसे स्वीकार करनेमें कुछ भी आपत्ति न करनी चाहिये ॥ १२६ ॥ विद्याधर विद्युन्मालीने अपनी स्त्रीके बचनोंका रंचमात्र भी आदर न किया। शीघ्र ही उसने चारों दिशाओंमें बाण छोड़ दिये जिससे उनके भयङ्कर शब्दोंसे बहुतसे बनके जीव त्रस्त हो गये। यद्यपि विद्याधर विद्युन्माली लडी बद्ध बाण छोड़ता रहा और उनका भयङ्कर शब्द होता रहा परन्तु तपके समुद्र मुनिराज मेरु, मेरुपर्वतके समान निश्चल बने रहे। पर्वत के समान कठिनता धारण कर अपने योगसे कुछ भी चाल विचाल नहीं हुए ॥ १३० ॥ जब विद्याधरकी कुछ भी तीन पांच न चली तो उसने धारिणी नामकी विद्याका स्मरण किया जो कि बत्तीस मुख और बत्तीस भुजाओं से

युक्त थी दुष्ट विद्याधर विद्युन्मालीने उस धारिणी विद्याके बलसे मुनिराज मेरुको उठा लिया एवं अनेक दुर्बचन कहकर उन्हें त्रास देता हुआ और अपनी विद्यासे कम्पित करता हुआ आकाश मार्गसे ले चलने लगा। उसी समय वैडूर्य नामक ज्योतिषी देवका आसन कम्पायमान हुआ जो कि समस्त ज्योतिषियोंको आश्चर्य करनेवाला था। देव वैडूर्यने शीघ्र ही अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगाया। महामुनि मेरुपर विघ्नका होना जान लिया एवं तत्काल खड्ग लेकर विद्युन्मालीके पास आ झपटा ॥ १३५ ॥ मुनिराज पर अत्याचार करते देख देव वैडूर्य विद्युन्मालीके ऊपर मेघके समान गर्जा, अनेक दुस्सह बचनोंको कहकर तर्जा एवं मारनेके लिये हाथमें खड्ग तैयार कर लिया। देव वैडूर्यका यह भयङ्कर रूप देख विद्याधर विद्युन्माली डरा। मुनिराजको छोड़कर वह दो तीन ही कदम भागकर गया था कि क्रोधसे लाल लाल नेत्रोंके धारक देव वैडूर्यने मजबूत सांकलसे उसे मजबूतीसे बांध लिया ॥ १३७ ॥ इधर वैडूर्य देवने तो विद्याधर विद्युन्मालीकी यह दशा की उधर मुनिराज मेरुको केवल ज्ञान हो गया जो कि लोक अलोकके समस्त पदार्थोंको निर्मल रूपसे प्रकाश करनेवाला था और सर्वगत था ॥१३८॥ मुनिराज मेरुके केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका हाल इन्द्र आदि देवोंको भी ज्ञात हो गया। जिससे जय जय शब्दोंके साथ उन्होंने सानन्द मुनिराजके केवल ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञानुसार तिखने सिंघासनसे शोभायमान गन्धकुटीकी रचना कर दी गई। उसमें विराजमान मुनिराज मेरुको सुर असुर किन्नर और राजा आदि महापुरुष नमस्कार करने लगे। महामनोहर गद्योंमें मुनिराजकी स्तुति की। चरणकमलोंकी बन्दना की एवं जिस प्रकार क्षीर समुद्रके चारों ओर हंस आकर विराज जाते हैं उस प्रकार वे मुनिराजके चारों ओर बैठ गये ॥ १४० ॥ मुनिराज मेरुके अचलपनेपर ध्यान देकर ध्यानकी सिद्धिकी कारण एक सौ आठ मनकोंकी माला तैयार की एवं समस्त देव और विद्याधरोंके सामने मेरुके समान अपनेमें निश्चलता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रने उसे अपने गलेमें पहन लिया—

इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न पल्लवपुरका स्वामी एक उग्रसेन नामका राजा था। मुनिराज मेरुको केवल ज्ञानी सुनकर वह उनकी बन्दनाके लिये आया। मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेश सुना एवं यह उपसर्ग कैसे उपस्थित हुआ यह जाननेकी इस प्रकार उसने इच्छा प्रगट की ॥ १४४ ॥ प्रभो! आप ज्ञानके समुद्र हैं कृपाकर कहिये विद्याधर विद्युन्मालीके साथ आपका पूर्व भवमें कैसे बैर बन्धा! और देवने इसे कैसे बांधा! उत्तरमें मुनिराज मेरुने कहा—भाई तुम ध्यान पूर्वक सुनो, मैं कहता हूं—

धातुकी खण्डद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक किष्किन्धापुर नामका नगर है जो कि नगर निवासी लोगोंसे सदा शोभायमान रहता है। किष्किन्धापुरका स्वामी राजा सिंहरथ था जो कि शूर वीर था। किष्किन्धापुरमें ही उस समय एक माधव नामका सेठ रहता था जो कि विपुल धनका स्वामी था। सेठ माधवके सात पुत्र थे जो कि अत्यन्त रूपवान और विद्वान थे। किसी समय वर्षाकालमें भाग्यके उदयसे सेठ माधवको भरा खजाना हाथ लग गया। रात्रिके समय उसने अपने पुत्रोंके साथ खजानेको जमीनमें खुदवाकर रखवा दिया एवं इन्द्रके समान सुख भोगता हुआ वह सुखसे रहने लगा ॥ १४९ ॥ माधवके सबसे बड़े पुत्रका नाम अरिंजय था। एक दिन उसने अपने मनमें बिचार किया कि पिताके मर जानेपर धनके सात भाग होंगे और उसमेंसे मुझे सातवां भाग मिलेगा। बस ऐसा बिचारकर उस पापीने जमीनसे भरे खजानेको निकाला और अन्यत्र जाकर गाड़ दिया। मा! इस लोभके लिये धिक्कार है क्योंकि यह दुर्गतिमें ले जानेवाला है ॥ १५१ ॥ थोड़े दिन बीत जानेपर सेठ माभवने अपना रत्न भरा खजाना देखा जब उसने वहां उसे न पाया तो उसे सीमान्त दुःख हुआ एवं उस तीव्र दुःखसे उसे मूर्छा आ गई। जमीनपर गिरकर मर गया एवं मोह कर्मके उदयसे मरकर वह उसी खजानेपर सर्प हो गया। एक दिन सेठपुत्र अरिंजय धन लेनेके लिये खजानेमें गया जहांपर वह खजाना गड़ा था धीरे धीरे वहांकी उसने पृथ्वी खोदना प्रारम्भ कर दी। सर्पने ज्योंही अरिंजयको देखा उसे डस लिया। जिससे वह विषसे मूर्छित हो जमीनपर गिरकर मर गया। सर्पकी यह चेष्टा देख अरिंजयको भी क्रोध आ गया था उसने भी सर्पके दो टुकड़े कर दिये इस रूपसे वे दोनों उसी समय मृत्युको प्राप्त हो गये।

इसी भरतक्षेत्रकी उत्तर दिशामें एक मथुरा नामकी नगरी है। उसमें एक बणिक रहता था अरिंजय और सर्प दोनोंके जीव उसके दो पुत्र हो गये जो कि महादुष्ट थे मैले कुचैले थे दरिद्र और निर्लज्ज थे एवं दोनोंका नाम भद्र और हर था ॥१५६॥ एक दिन वे दोनों मगध राज्यमें व्यापारके लिये गये उस समय पापी और ठग सर्पका जीव भद्र अपने मनमें यह बिचारने लगा—रात्रिके समय जब हर सो जाय उस समय मुझे हरको मार देना चाहिये और सारा धन अपने घर ले जाना चाहिये। बस ऐसा पूर्ण बिचारकर वह ठीक आधी रातके समय उठा। हरके धोकेमें एक दूसरे पथिकको मार डाला एवं वह मूर्ख अपने घर चला गया। प्रातःकाल होते हर उठा। अपने पासके मनुष्यको मरा देख वह एकदम भयभीत हो गया। एवं इस प्रकार मनमें बिचारने लगा— अवश्य मेरे भ्रमसे मेरे भाईने इस पथिकको मारा है, यदि मैं ठहरूंगा तो लोग मुझे ही इसका मारनेवाला

समझेंगे जिससे संसारमें मेरा ही अपवाद होगा। यह नियम है कि दुष्टोंके साथ सम्बन्ध करनेपर मनुष्यकी चिरकालसे संचित भी कीर्त्ति नष्ट हो जाती है तथा बन्धन ताड़न विशेष क्या मृत्युका भी सामना करना पड़ता है। बस ऐसा विचार कर शीघ्रही वहांसे चल दिया एवं बुद्धिमान वह इस प्रकार अपने मनमें सोचने लगा— धर्म और अधर्मके जानकार किस महापुरुषसे मैं अपना यह हाल कहूँ। वह सीधा मेरे पास आया क्योंकि मैं राजा था और सारा वृत्तांत उसने मुझसे कह सुनाया। मैंने पापी भद्रको बुलाया कठिन दण्ड दिया और नगर-से बाहिर निकाल दिया ॥१६२॥ मेरे द्वारा दिये गये दण्डसे भद्रमित्रको बड़ी लज्जा आई। बनमें जाकर किसी मुनिराजके समीप भद्रने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। मुनि बन वह क्रोध पूर्वक संयमको आराधने लगा। आयुके अन्तमें वह मरा और विद्याधर विद्युन्माली हो गया ॥ १६३ ॥ पहिले भवमें जो उसने मुझे दण्ड दिया था उसीसे जायमान बैरके सम्बन्धसे इसने मेरे ऊपर यह उपसर्ग किया है इसलिये बैरका यह भयंकर फल देख किसीको किसीके साथ बैर नहीं करना चाहिये ॥१६४॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर दिशामें एक श्रीपुर नामका नगर है जो कि महामनोहर स्त्रियोंसे शोभायमान और शोभामें गन्धर्व नगरकी उपमा धारण करता था जो कि अपने तेजसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाला था। उस-की रानीका नाम ललांगी था जो कि उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इन दोनों राजा और रानीके एक 'रुर्वक्षी' नामकी कन्या थी जो कि महामनोहर थी। तपे सोनेके समान रंगकी धारक, सुवर्णके घड़ोंके समान स्तनोंसे शोभायमान और संघनके भारसे मन्द मन्द गमन करनेवाली थी। विद्याधर विद्युद्दन्ष्ट्र जो कि महाविद्याका स्वामी था। धर्माचरणोंसे सर्वथा विमुख था और आदित्याभके भवमें जिसे मैंने धरणेंद्रसे बचाया था कन्या रुर्वक्षीपर मोहित हो गया और उसके पिता राजा भूपालसे उसने हठ पूर्वक मांगा परन्तु भूपालने उसे प्रदान नहीं की। भूपालका यह घमण्ड देख राजा विद्युद्दन्ष्ट्रने उसके साथ संत्राम ठान दिया। दुर्भाग्यवश संग्राममें विद्युद्दन्ष्ट्रको हार खाना पड़ी। अपनी हारसे विद्युद्दंष्ट्र लज्जित हो गया। राज्य छोड़ तपसी बन मिथ्या तप करने लगा। आयुके अन्तमें मरा एवं ज्योतिलोकमें तुम जाकर ज्योतिषी देव हुये हो तुम्हारे ऊपर जो मैंने उप-कार किया था उसके बदले प्रत्युपकार करनेके लिये तुमने इस उपसर्गकी शान्ति की है। इस प्रकार पूर्व भवका सम्बन्ध सुन राजा उग्रसेन और विद्याधर विद्युन्मालीको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया एवं नमस्कार पूर्वक मुनिराज मेरुसे ही उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली।। ज्योतिषी देवने भी चित्तमें प्रसन्न हो मुनि-

राज मेरुकी स्तुति की एवं उन्हें नमस्कार कर अपने स्थानपर चला गया। ठीक है सज्जन लोग किये उपकार भूलते नहीं ॥ १७६ ॥ पुन्नाग बृक्षको कितना भी पेरा जाय वह विकृत नहीं होता तथा रसीला ईखका बृ अत्यन्य पिड़ित होनेपर भी मधुर ही रस छोड़ता है उसी प्रकार सज्जनको कितनी भी पीड़ा पहुंचाई जाय व शान्त ही रहता है। संसारमें कपिचु मन्दक आदि नामोंके धारक बहुतसे बृक्ष हैं पर सभी चन्दन नहीं। तथा सभी उल्लू पक्षी सफेद पंखोंके धारक नहीं कोई कोई ही होते हैं उसी प्रकार संसारमें दुष्ट ही बहुत हैं सज्जन बहुत नहीं। परम पावन उन मुनिराज मेरुने एक हजार वर्ष पयन्त अनेक देशोंमें विहार किया। अन्तमें उन्होंने मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया—

सम्मेदाचल पर्वतके समीपमें एक पद्मकंवल नामका नगर था। उसमें यशोधर नामका सेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम यशस्विनी था। सेठानी यशस्विनीको एक दिन सर्पने डस लिया उसे मरी समझ श्मसान भूमिमें उसकी दाह क्रियाके लिये लोग ले गये। वहांपर मुनिराज मन्दर विराजमान थे। उनके पवित्र शरीरसे स्पर्शी गई पवनसे सेठानी यशस्विनीका जहर दूर हो गया जिस समय सेठानी जीती जागती उठ बैठी उस समय सबके सब इस प्रकार बिचारने लगे—इस मुर्दाके शरीरमें भूत प्रविष्ट हो गया जान पड़ता है बस सबके सब लोग भयसे आकुलित हो गये। उन्हें आकुलित देख करोड़ों मांस भक्षी राक्षस वहां आ गये। राक्षसोंको इस प्रकार देखकर वे भयसे कम्पायमान हो गये एवं वे सबके सब भयभीत हो मुनिराजके चरणोंके पास चले गये। मुनिराजके प्रभावसे बनदेवीने तीन प्रकारोंका कोट रच दिया एवं प्रातःकाल सबोंको लक्ष्यकर उसने यह कहा—मुनिराज मंदरके लिये धन्यवाद है। इन्हींके आश्रयसे सेठानी यशस्विनीका विष दूर हुआ है। ज्यों ही सेठ यशोधर और सेठानी यशस्विनीने यह बात सुनी उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया एक मुनिराज मंदरके समीपमें ही वे संयमसे दीक्षित हो गये ॥ १८५ ॥ मुनिराज मन्दरने भी महा ध्यानके बलसे घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया एवं देव पूज्य वे मुनिराज मोक्षके स्वामी बन गये ॥ १८६ ॥ महोदय मुनिराज उग्रसेनने भो घोर तप तपा एवं आयुके अन्तमें मरकर वे सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिंद्र हो गये ॥१८७॥ विद्याधर विद्युन्मालीने भो शक्तिके अनुसार तप किया एवं आयुके अन्तमें मरकर वे पांचवें स्वर्गमें देव हो गये। ललित उनका नाम हुआ और अनेक देवांगना उनकी सेवा करने लगी ॥ १८८ ॥ ग्रन्थकार तपकी महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि—जो महानुभाव तप आचरण करते हैं उन्हें अद्भुत लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

स्वर्ग उनके घरमें आंगनमें प्राप्त हो जाता है और कामधेनु किंकरी बन जाती है ॥ १८६ ॥ भगवान विमलनाथ के पाच सौ तो गणधर थे। ग्यारह सौ पूर्वधारी मुनि थे। अड़तीस हजार पांच सौ शिष्य थे। अड़तालीस सौ देशावधि आदि अवधिज्ञानके स्वामी थे। पचपन सौ केवलज्ञानी, छत्तीस सौ वादी मुनिराज, अड़सठ हजार संयमी मुनि, एक लाख तीन हजार आर्यिका दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविका, नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच हजार पांच सौ मनःपर्यय ज्ञानी और असंख्याते देव इस प्रकार सबोंसे युक्त भगवान विमलनाथ अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ १६२ ॥

जो भगवान विमलनाथ वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं। कल्याणके प्रदान करनेवाले हैं जीवोंके हितकारी हैं। कर्मरूपी कीचड़को सुखानेके लिये सूर्य स्वरूप हैं। उन भगवान विमलनाथको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ ॥१६३॥ पद्मसेन नामके जो राजा थे वे बारहवें स्वर्गके देवोंके स्वामी सहस्रारेंद्र हो गये। केवल विभूतिके नायक वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें। जो भगवान विमलनाथ भव्य रूपी कमलोंके लिये सूर्य समान हैं। मोहरूपी हस्तीके लिये सिंह स्वरूप हैं एवं देव इन्द्र स्वरूप चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमा स्वरूप हैं अर्थात् हृदयका उत्ताप मिटानेवाले हैं प्रिय भव्य जीवो! उन भगवान विमलनाथकी कल्याणकी प्राप्तिकी अभिलाषासे तुम्हें सदा सेवा करनी चाहिये ॥ १६४ ॥

प्रशस्ति।

जो काष्ठासंघ समस्त पृथ्वीपर प्रसिद्ध है तीनोंलोकके स्वामी जिसकी स्तुति करते हैं। जिसमें अगणित मुनि हो चुके हैं एवं जिसमें अनेक विद्याओंका समारोह रहा है उसमें एक रामसेन नामके भट्टारक हुए जो कि आचार्यों में राजा स्वरूप थे सिद्धान्त रूपी समुद्रके पारगामी थे। चन्द्रमाके समान कीर्तिसे शोभायमान थे। ध्यानरूपी जलके प्रवाहसे पाप रूपी संतापके दूर करनेवाले थे और अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप थे ॥ १६५ ॥ उसी काष्ठासंघमें आचार्य रामसेनके बाद भट्टारक सोमकीर्ति हुए जो कि मुनि आदिके गण रूपी पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे। मनुष्य रूपी चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमा स्वरूप एवं जिनकी कीर्तिका गान नागकुमारियां करतीं थीं। आचार्य सोमकीर्तिके पदपर विजयसेन नामके भट्टारक हुए जो कि समस्त जनोंको वास्तविक ज्ञान प्रदान करनेवाले थे। कीर्ति कांति रूपी लक्ष्मीके लिये समुद्र स्वरूप थे और कुबुद्धियोंके विजेता थे ॥१६७॥ भट्टारक विजय-

सेनके पदपर आचार्यों में प्रदान श्री यशःकात नामके देव हुए जो कि समस्त गुणोंके भण्डार थे। भट्टारक यशःकीर्तिके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप एवं अखण्ड चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान वादी नागेंद्र सिंह नामके भट्टारक हुए। उनके शिष्य उदयसेन नामके भट्टारक हुए जो कि सिद्धान्तके पूर्ण ज्ञाता और व्याख्याता थे उनके बाद आर्य उदयसेनके चरण कमलोंके सेवक एवं तीनों लोकमें जिनकी महिमा गाई जाती थी ऐसे भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति हुए ॥१९८॥ भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्तिके शिष्य भट्टारक रत्नभूषण हुए जो कि पृथ्वीतलपर चन्द्रमाके समान स्वच्छ प्रकाशके धारक थे। भट्टारक त्रिभुवन कीर्त्तिके पट्टरूपी उदयाचल पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे। तर्क नाटक आदि शास्त्रोंके रहस्यके पारगामी थे और विषयोंमें राजा स्वरूप थे ॥१९९॥ इसी पृथिवी पर लोहाकर नामका एक पुर है उसमें एक हर्ष नामके महानुभाव रहते थे जो कि पुरवासियोंमें प्रधान माने जाते थे। महानुभाव हर्षकी स्त्रीका नाम वीरिका था जो कि एक सज्जन स्वभावकी थी अनेक गुणोंकी स्थान थीं एवं साध्वी थी माता वीरिकाका पुत्र मैं (ग्रन्थकार) कृष्णदास था जो कि सुन्दरतामें कामदेवके समान था। पूर्ण ब्रह्मचारी था सुन्दर कीर्तिका धारक था एवं भगवान ऋषभदेवके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप था ॥ २०० ॥ मेरे छोटे भाईका नाम मंगलदास था जोकि चंद्रमाके समान कांतिसे शोभायमान थे ब्रह्मचारी थे उनकी सहायतासे यह कल्याण प्रदान करनेवाला ग्रन्थ रचा गया है। सज्जन विद्वानोंसे यह प्रार्थना है कि जहां इसमें त्रुटियां रह गई हो उन्हें शुद्धकर पढ़ें और पढ़ावें ॥ २०१ ॥ गुजरात देशमें एक कल्पबल्ली नामका नगर है उसी नगरमें बैठक बढ़ती हुई कीर्तिसे शोभायमान और गुरुके चरण कमलोंके भक्त मैंने इस ग्रन्थका बड़े आदरसे निर्माण किया है ॥ २०२ ॥ जबतक संसारमें मेरुपर्वत नक्षत्र समुद्र तारे समुद्र पृथिवी सूर्य आदि पदार्थ विद्यमान रहें तबतक यह ग्रन्थ भी विद्वानोंके हृदयका अलंकार बन सदा शोभायमान रहे ॥ २०३ ॥ तीन हजार छयालीस श्लोकोंसे शोभायमान यह ग्रन्थराज विमलनाथ पुराण पूर्ण विद्वान पंडितोंको अवश्य लिखाकर देना चाहिये ॥ २०४ ॥ श्रावण बदी एकादशी संवत् १६७४ सोलह सौ चौहत्तर जब कि मृगक्षर्य योग नित्य रूपसे विद्यमान उस समय यह ग्रन्थ पूरा हुआ ॥ २०५ ॥

प्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप ब्रह्मचारी मंगलदासकी सहायतापूर्वक ब्रह्मचारी कृष्णदास विरचित वृहत् बिमलनाथ पुराणमें भगवान विमलनाथका निर्वाण कल्याण मुनिराज मेरुका ध्यान और उपसर्ग एवं मेरुमंदरका निर्माण कल्याण वर्णन करनेवाला दशवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ १० ॥